जैनागम संस्कार

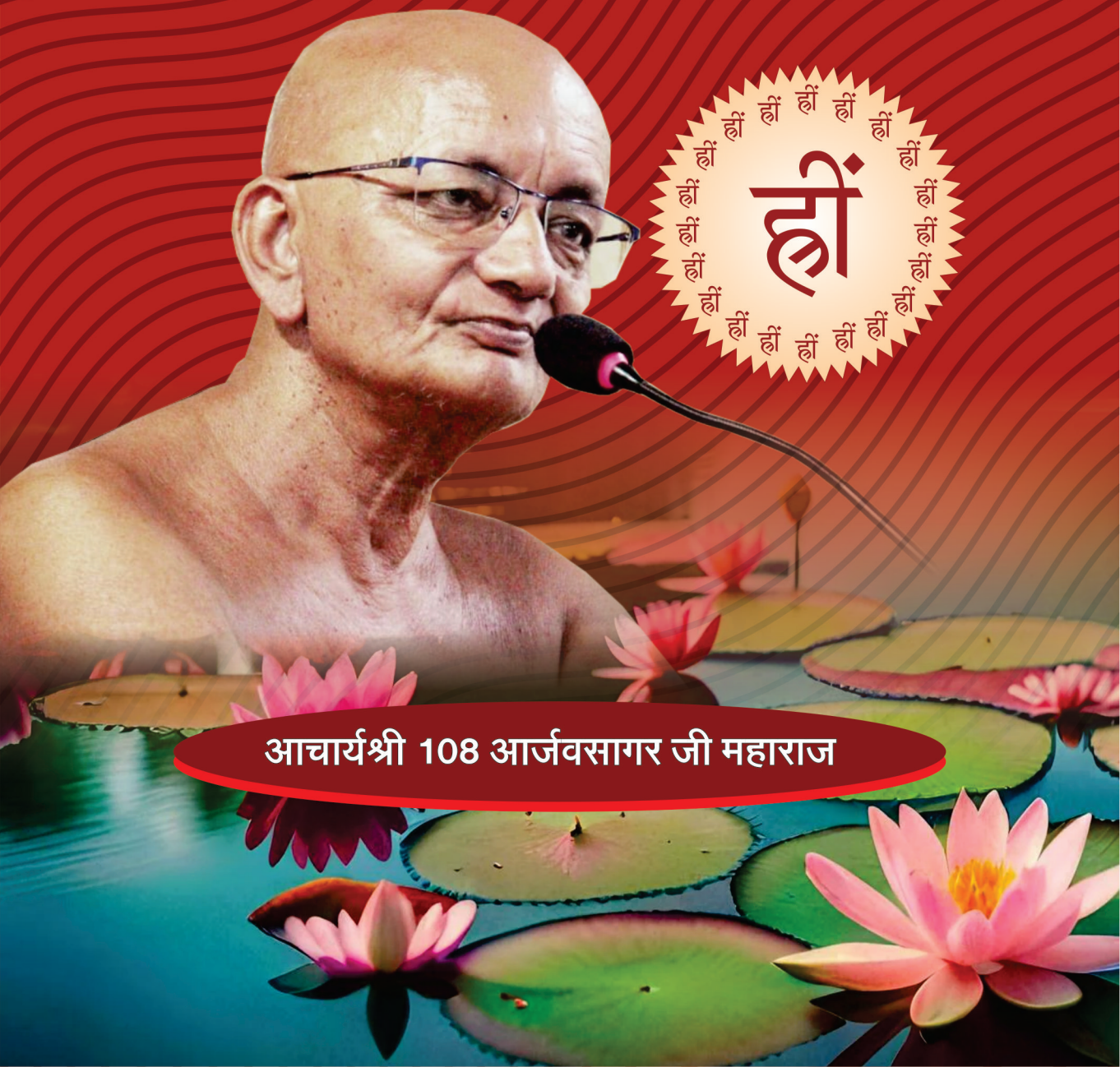

आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज

आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज के

40 चातुर्मास स्थल

1	सिद्धक्षेत्र अहार जी (मध्यप्रदेश)	1985
2	अतिशय क्षेत्र पपौराजी (मध्यप्रदेश)	1986
3	अतिशय क्षेत्र थूबोनजी (मध्यप्रदेश)	1987
4	मढ़िया जी जबलपुर (मध्यप्रदेश)	1988
5	सिद्धक्षेत्र कुण्डलपुर (मध्यप्रदेश)	1989
6.	सिद्धक्षेत्र मुक्तागिरि (मध्यप्रदेश)	1990
7.	कोपरगाँव (महाराष्ट्र)	1991
8.	सांगली, नेमिनाथ नगर (महाराष्ट्र)	1992
9.	श्रवणवेलगोला (कर्नाटक)	1993
10.	दावणगेरे (कर्नाटक)	1994
11.	पोन्नूरमलै (तमिलनाडु)	1995
12.	पोन्नूरमलै (तमिलनाडु)	1996
13.	कन्नलम् (तमिलनाडु)	1997
14.	विशाखाचार्य तपोनिलय (तमिलनाडु)	1998
15.	नल्लवन पालैयम (तमिलनाडु)	1999
16.	विशाखाचार्य तपोनिलय (तमिलनाडु)	2000
17.	आरनी (तमिलनाडु)	2001
18.	शिमोग्गा (कर्नाटक)	2002
19.	कोपरगाँव (महाराष्ट्र)	2003
20.	टी.टी. नगर, भोपाल (मध्यप्रदेश)	2004
21.	अशोकनगर (मध्यप्रदेश)	2005
22.	राँची (झारखण्ड)	2006
23.	दमोह (मध्यप्रदेश)	2007
24.	ग्वालियर (मध्यप्रदेश)	2008
25.	सोनी-नसिया-अजमेर (राजस्थान)	2009
26.	कीर्ति नगरजयपुर (राजस्थान)	2010
27.	रामगंजमण्डी (राजस्थान)	2011
28.	अहुरानगर-सूरत (गुजरात)	2012
29.	गोयलनगर-इंदौर (मध्यप्रदेश)	2013
30.	खातेगाँव (मध्यप्रदेश)	2014
31.	सिद्धक्षेत्र तारंगा जी (गुजरात)	2015
32.	मण्डीदीप (मध्यप्रदेश)	2016
33.	पुरवा, जबलपुर (मध्यप्रदेश)	2017
34.	शान्तिनगर-बण्डा (मध्यप्रदेश)	2018
35.	अशोका गार्डन, भोपाल (मध्यप्रदेश)	2019
36.	अ.क्षेत्र श्री भ.पार्श्वनाथ क्षेत्रपाल ललितपुर (उ.प्र.)	2020
37.	लखनादौन (मध्यप्रदेश)	2021
38.	ईसरी-पारसनाथ (झारखण्ड)	2022
39.	अशोक नगर (मध्यप्रदेश)	2023
40.	पिड़ावा (राजस्थान)	2024

जैनागम संस्कार

(प्रश्नोत्तर मालिका)

(शिक्षण शिविर एवं पाठशालाओं के लिये बहु उपयोगी कृति)

लेखक

परमपूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज से दीक्षित

प.पू. आचार्यश्री १०८ आर्जवसागर जी महाराज

प्रकाशक

आर्जव-तीर्थ एवं जीव संरक्षण-ट्रस्ट

4, लार्ड्स कैम्पस, लक्ष्मी परिसर, नहर के पास बावड़ियाकलाँ, भोपाल-462039

मो. : 7049004653, 9425011357, 9425601161, 9425601832, 7222963457

जैनागम संस्कार

- कृति : जैनागम संस्कार
- लेखक : आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी महाराज
- संस्करण : नवम्, 2024
- आवृत्ति : 1000 प्रतियाँ
- पावन संदर्भ : पावन वर्षायोग 2024
- अर्थ सौजन्य : 1. स्मृतिशेष श्री वीरेंद्र कुमार जैन, श्रीमती लक्ष्मी जैन, श्रीमती मोनिका जैन, करैरा जिला शिवपुरी (म.प्र.)
  2. बा.ब्र. संजीव भैया जी, ब्र. रूबी दीदी, श्रीमान् कैलाशचंद अशोककुमार, प्रदीपकुमार समस्त विद्याश्री दालमील परिवार अशोक नगर
  3. श्रीमान रमेश चंद जी, नीरज कुमार, आशीष कुमार जैन ईसागढ़ परिवार अशोकनगर
- मूल्य : स्वाध्याय
- मुद्रक/कम्पोजिंग : पारस प्रिन्टर्स, भोपाल
  फोन : 0755-4260034, 9826240876

© सर्वाधिकार सुरक्षित प्रकाशकाधीन

- प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान : आर्जव तीर्थ एवं जीव संरक्षण ट्रस्ट
  4, लार्ड्स कैंपस, लक्ष्मी परिसर,
  ई-8, एक्स बावड़ियाकलाँ भोपाल (म.प्र.)
  फोन : 0755-4902433
  मो.: 9425601161, 9425011357

कुण्डलपुर के बड़ेबाबा

अनुक्रम

	संस्कार की भूमिका	: आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज	xv
	पावन प्रेरणा	: इंजी. शोभित जैन दमोह	xi
	जैनागम संस्कार एक अभिप्राय	: प्रो. जीवंधर कुमार जैन	xii
	गुरु उपकार मन भाया	: डॉ. विमलचन्द जैन	24
1.	**णमोकार मन्त्र माहात्म्य**		3
	मंगलपद की		3
	अरहंत परमेष्ठी और उनके गुण		4
	सिद्ध परमेष्ठी और उनके		6
	आचार्य परमेष्ठी और उनके		6
	उपाध्याय परमेष्ठी और उनके		7
	साधु परमेष्ठी और उनके		7
	णमोकार मंत्र का		8
	अरहंत, अरिहंत और अरुहंत का		9
	मंगलाक्षर में पञ्च		9
2.	**तीर्थङ्कर**		11
	तीर्थङ्कर का स्वरूप		11
	पञ्चकल्याणक का स्वरूप		11
	पञ्चकल्याणक की तिथियाँ		14
	वर्तमान सम्बन्धी तीर्थङ्करों के माता- पिता एवं स्थान परिचय		16
	तीर्थङ्करों के वैराग्य उत्पत्ति के कारण,		17
	समवसरण का विस्तार, प्रमुख गणधरों के नाम, गणधरों की संख्या		17
	एवं समवसरण में रहने वाली प्रमुख आर्यिकाओं के नाम		17
	चौबीस तीर्थङ्करों की ऊँचाई, आयुकाल, चिह्न और मोक्ष स्थान के नाम		18
	भूतकाल और भविष्यकाल में हुए तीर्थङ्करों के नाम		19
	चौबीस कामदेव एवं उनके समय तीर्थङ्करों का तीर्थकाल		20
	तीर्थङ्करों के चिन्हों का महत्व		20
	तीन-तीन पदवियों के धारक तीर्थङ्कर		21
	एक से अधिक नाम वाले तीर्थङ्कर		21
	विदेह क्षेत्र के 20 तीर्थङ्कर		22
	हुण्डा अवसर्पिणी काल की विशेषताए		22
	तीर्थक्षेत्र की परिभाषा एवं तीर्थक्षेत्र दर्शन की महिमा		23
	समवसरण का स्वरूप		23

	बारह सभाएँ एवं भगवान महावीर के समवसरण में मुनिगण	24
	शलाका पुरुष, उनकी संख्या एवं नाम	24
	सोलहकारण भावनाएँ	25
3.	**जैन श्रावक के कर्तव्य**	27
	श्रावक के अष्टमूलगुण	27
	श्रावक शब्द का अर्थ	27
	तीन मकार एवं उनके दोष	27
	बिना छना पानी पीने में दोष	28
	रात्रिभोजन के दोष	28
	रात्रि भोजन के त्याग के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के तर्क	29
	अजैनों के मत में भी रात्रिभोजन त्याग	30
	बाजार में बने भोजन के करने में दोष	30
	जमीकंद में दोष	30
4.	**देवदर्शन विधि एवं उसका माहात्म्य**	31
	देवदर्शन विधि	31
	स्नान की आवश्यकता क्यों ?	31
	चमड़ा वर्जनीय है	31
	पैर धोने की आवश्यकता क्यों ?	32
	प्रदक्षिणा क्यों ?	32
	भगवान का दर्शन किस भावना से करें?	33
	मानस्तम्भ क्यों ?	34
	मंदिर के ऊपर शिखर क्यों ?	34
	जिनालय पर ध्वजा क्यों ?	34
	स्त्रियों के द्वारा भगवान एवं गुरु को स्पर्श क्यों नहीं ?	35
	जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से पाँच लाभ	35
	एक पत्थर की मूर्ति में पूज्यता कैसे ?	36
	सद्धर्म का संस्कार बचपन में ही क्यों देना ?	36
	पाठशाला में पढ़ने से अपूर्व लाभ	37
5.	**व्यसन मुक्ति, शाकाहार (जैनी की पहचान)**	38
	जैन किसे कहते हैं ?	38
	सप्तव्यसन से होने वाली पाँच हानियाँ	39
	तम्बाखू खाने से हानियाँ	39
	शाकाहार किसे कहते हैं ?	39

	शाकाहारी और माँसाहारी प्राणी में अंतर	39
	दूध कैसे बनता है ?	40
	शाकाहार करने से लाभ	40
6.	**पूजन माहात्म्य**	42
	पूजा, पूज्य और पूजक	42
	पूजा के प्रकार	43
	शुद्ध वस्त्र पहनने की आवश्यकता क्यों ?	43
	पूजा के अष्ट द्रव्यों में अपनी भावना	44
	दिव्य पुष्प कौन-सा है ?	44
	अर्घ्य और अनर्घ पद	45
	स्वाहा का वास्तविक अर्थ	45
	द्रव्य पूजा में बहु आरम्भ है क्या ?	45
	जड़ की पूजन में दोष	46
	दीपावली पूजन महिमा	47
	हमारी पूज्य माता कौन हैं ?	48
	हमारे कुलदेवता कौन हैं ?	48
	वीतरागी की पूजन में विवेक	48
	पूजन करने का फल	49
	निर्माल्य ग्रहण में दोष	49
7.	**जैनधर्म माहात्म्य**	52
	धर्म का स्वरूप	52
	दशलक्षण धर्म	53
	श्रावकों के चार धर्म	54
8.	**रत्नत्रय का स्वरूप**	56
	रत्नत्रय के भेद	56
	निश्चय रत्नत्रय का स्वरूप	56
	व्यवहार रत्नत्रय का स्वरूप	56
	व्यवहार रत्नत्रय की प्राथमिकता	57
9.	**सम्यग्दर्शन धर्म माहात्म्य**	58
	सम्यग्दर्शन का स्वरूप	58
	सम्यग्दर्शन से दुर्गति निवारण	59
	सच्चे देव का स्वरूप	60
	सच्चा शास्त्र कौन-सा होता है	60

	सच्चे गुरु कौन होते हैं	60
	सम्यग्दर्शन के अष्ट अङ्गों का स्वरूप	61
	तीन मूढ़ताएँ	62
	अष्टमद, षट्अनायतन	63
	सम्यक्त्व-क्रिया एवं मिथ्यात्व-क्रिया	64
	रक्षकों की पूजा आवश्यक है क्या ?	64
	जिनालयों में परमेष्ठी ही पूज्य क्यों ?	65
	शासन-देवों की आवश्यकता कहाँ-कहाँ ?	66
	अर्घ्य क्यों और किसको ?	66
	हमारी रक्षा कैसे ?	66
	देवों की आकृतियों का सच्चा स्वरूप	67
	वीतरागी सदृश सरागी की अर्चनादिक का निषेध	68
	जैनागम में सम्यक् लिंग (भेष)	68
	वास्तविक लक्ष्मी और सरस्वती	68
	मनुष्य बड़े या देव	68
	असंयमी की वंदना निषिध्य	69
	उपकारक और अपकारक कौन एवं पंच मिथ्यात्व	70
	रूढ़ि का उदाहरण	72
	गृहीत मिथ्यात्व एवं अगृहीत मिथ्यात्व	73
	सम्यक्त्व के पच्चीस मल दोष	73
	सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता	74
	सम्यग्दर्शन के तीन भेद व लक्षण	74
	क्षायिक सम्यग्दर्शन की महिमा	75
	सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में आवश्यक निमित्त	75
	सम्यग्दृष्टि के चार आवश्यक गुण	76
	सम्यग्दर्शन धारण करने का विशिष्ट फल	76
	सम्यग्दर्शन का आयु गति आदि पर प्रभाव	76
	आचार्य चारित्र चक्रवर्ती शान्तिसागर जी का सम्यक् उपदेश	78
10.	**सम्यग्ज्ञान धर्म माहात्म्य**	79
	सम्यग्ज्ञान का स्वरूप	79
	सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद एवं लक्षण	79
	चार अनुयोग	80
	स्वाध्याय हेतु मौलिक शास्त्र	80

	आचार्य कुन्दकुन्द रचित 41 शास्त्रों के नाम	81
	रत्नकरण्डकश्रावकाचार में मोक्षमार्ग की विधा	82
	तत्त्वार्थसूत्र में सप्त तत्त्व	83
	अनेकान्त सम्यग्ज्ञान का स्वरूप	83
	एकान्त का स्वरूप	83
	सम्यक् एकान्त का स्वरूप	83
	मिथ्या एकान्त का स्वरूप	83
	मिथ्या एकान्तवादियों के लक्षण	83
	निश्चयवादियों के आगम विपरीत कथन	84
	प्रथमानुयोग की प्रमुखता क्यों ?	85
	सम्यग्ज्ञान के अष्ट अंग	85
	सात नय कौन से ?	86
	नय की परिभाषा	87
	अनेकान्त का उदाहरण	87
	धर्म कब तक चलेगा ?	88
11.	**सम्यक्चारित्र धर्म माहात्म्य**	89
	सम्यक् चारित्र का स्वरूप	89
	श्रावकों का देशचारित्र	90
	देशव्रती श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाएं	90
	पाक्षिकश्रावक, नैष्ठिकश्रावक और साधकश्रावक	92
	पञ्च अणुव्रतों के लक्षण	92
	श्रावक के सात शीलव्रत	93
	चार प्रकार के आहार	95
	उपवास के दिन स्नान करने न करने का विधान	95
	उपवास के दिन करने योग्य कर्त्तव्य	95
	मुनियों का सकल चारित्र	97
	मुनियों के अट्ठाईस मूलगुण	97
	महाव्रत का स्वरूप	98
	समिति का स्वरूप	98
	चार शुद्धियाँ	98
	षट् आवश्यक	99
	वस्त्रों से मोक्ष सिद्धि क्यों नहीं ?	99
	गुप्ति का स्वरूप	100

	मुनियों के पञ्चाचारों का स्वरूप	100
	मुनियों के बारह तपों के लक्षण	100
	बाईस परीषह	101
	देवों के पास व्रत संयम हैं क्या ?	103
	भव्य और अभव्य जीव	104
	बारह भावनाओं का स्वरूप	104
	मुनियों के पंच चारित्र व नामान्तर	105- 106
12.	**सप्त तत्त्व व षट्द्रव्य वर्णन**	107
	सप्त तत्त्वों का स्वरूप	107
	जीव के भेद संज्ञी असंज्ञी आदि	107
	अजीव के भेद पुद्गलादि	108
	आस्रव के भेद मिथ्यात्वादि	109
	बंध के भेद प्रकृति, प्रदेश आदि	109
	संवर के भेद गुप्ति आदि	110
	निर्जरा के भेद सविपाक आदि	110
	मोक्ष का स्वरूप	111
	सप्त तत्त्वों का एक उदाहरण	111
	द्रव्य का लक्षण	111
	उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य का लक्षण	111
	द्रव्य, गुण, पर्याय का लक्षण	112
	उपयोग और उसके भेद	112
	पुद्गल और उसके भेद परमाणु और स्कन्ध	112
	धर्म अधर्म द्रव्य	113
	लोकाकाश अलोकाकाश	113
	काल द्रव्य में निश्चय और व्यवहार	113
	द्रव्यों में प्रदेश गणना	114
	अस्तिकाय	114
	नव पदार्थ	114
13.	**त्रिलोकवर्णन**	115
	त्रिलोक एवं उसकी ऊँचाई, चौड़ाई, मोटाई	115
	त्रिलोक का घनफल एवं राजू का प्रमाण	115
	त्रस नाड़ी का प्रमाण	116
	अधोलोक की आठ पृथ्वियाँ	116

नरक-बिल और नरक दुःख	116
कौन-कौन-से जीव कौन-कौन सी पृथ्वी तक जाते हैं ?	117
नारकियों की आयु	117
नरकों से निकलकर कहाँ आते हैं ?	118
नरकों में सम्यक्त्व के निमित्त	118
मध्यलोक का विस्तार	118
ज्योतिषी देवों का भ्रमण	118
मेरु-पर्वत की विशेषताएँ	118
जम्बूद्वीप का विस्तार	119
अनेक द्वीप, पर्वत व क्षेत्र	119
तालाबों में कमलों की विशेषता	119
तालाबों से बहीं गंगादि नदियाँ	120
भरत ऐरावत क्षेत्र की विशेषताएँ	121
आर्य और म्लेच्छखण्ड	121
मुहूर्त्त, समय का प्रमाण	121
आवली और श्वासोच्छ्वास	121
सागर और अद्धापल्य का प्रमाण	122
भोगभूमि, कर्मभूमि	122
धातकीखण्ड और पुष्करार्ध द्वीप	122
मनुष्य क्षेत्र और मानुषोत्तर	123
उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि	123
शाश्वत और अशाश्वत भोगभूमि	123
भोगभूमि व कर्मभूमि में आयु, उत्सेधादि	124
म्लेच्छखण्ड में संयम की व्यवस्था	124
देवों के भेद	125
भवनवासी-देवों के भेद व आवास	125
व्यन्तर-देवों के भेद व आवास	125
ज्योतिषी-देवों के भेद व आवास	125
जम्बूद्वीप में सूर्य-चन्द्र का परिवार	126
ऊर्ध्व-लोक में स्वर्गादिक	127
इन्द्र, सामानिक आदि भेद	127
शत इन्द्रों की परिगणना	128
वैमानिक-देव	128

	देवों में प्रवीचार का विचार	128
	सौधर्म इन्द्र और शचि की विशेषताएँ	129
	लौकान्तिक देवों की विशेषताएँ	129
	पञ्चमकाल में भी लौकान्तिक पद की प्राप्ति	129
	लौकान्तिक देवों के निवास एवं संख्या	130
	नीचे से ऊपर के देवों में विशेषताएँ	131
	वैमानिक देवों की शारीरिक ऊँचाई	131
	अकाल मरण	133
14.	**नवधाभक्ति माहात्म्य**	136
	मुनियों की नवधा भक्ति	136
	दान का स्वरूप	137
	दान के प्रकारों के नाम	137
	दाता एवं दाता के सप्त गुण	137
	दाता की तीन शुद्धियाँ	138
	पात्र का लक्षण एवं भेद	138
	कुपात्र और अपात्र दान का फल	139
	नवधा भक्तियों के करने का फल	139
15.	**समाधिमरण माहात्म्य**	141
	समाधिमरण और सल्लेखना कब और कैसे ?	141
	सल्लेखना धारण करने की विधि	141
	मरण के प्रकार	143
	सल्लेखना रहित जीवन कैसा ?	144
16.	**पर्व व्रत माहात्म्य**	145
	पर्व का स्वरूप	145
	अष्टाह्निका पर्व का समय	145
	षोडशकारण एवं दसलक्षण	146
	दीपावली, महावीर जयंती और अक्षयतृतीया	146
	वीरशासन जयन्ती, रक्षाबंधन और अष्टमी, चतुर्दशी	147
	नित्य व्रत और नैमित्तिक व्रत	148
	सावधि और निरवधि व्रत	148
	नियम व्रत और यम व्रत	148
	व्रत का ग्रहण और निष्ठापन	148
	व्रत का पालन करते समय व्रती का आचरण	149

	ब्रह्मचर्य व्रत के सहयोगी नियम	152
	व्रत के दिन तिथि विचार	154
	शुद्धा और विद्धा तिथि	154
	अयन और अयन शुद्धि	154
	अधिक मास और क्षय मास	155
	प्रशस्त तिथियाँ	156
	तिथियों की संज्ञाएँ	156
	पंचकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठा, जिनालयारम्भ, विद्यारम्भ आदि	156
	कार्यों के अयोग्य मास शून्य संज्ञक तिथियाँ	156
	ग्रह और वार विचार	157
	पुण्य कर्म के योग में ही कार्यों की सफलता	157
	भाद्रपद मास का अत्यधिक महत्त्व	158
17.	**अष्ट कर्म विवेचन**	161
	कर्म का स्वरूप	161
	ज्ञानावरणकर्म एवं भेद	161
	दर्शनावरणकर्म एवं भेद	161
	वेदनीयकर्म एवं भेद	162
	मोहनीयकर्म का लक्षण	163
	मोहनीयकर्म के भेद दर्शनमोहनीय एवं चारित्रमोहनीय	163
	आयुकर्म एवं उसके प्रकार	164
	नामकर्म का लक्षण	165
	नामकर्म के 93 प्रकार	165
	षट् पर्याप्तियाँ एवं उनके स्वामी	171
	निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव कौन ?	171
	गोत्रकर्म एवं उसके भेद	172
	अन्तरायकर्म एवं उसके भेद	173
	ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों के बंध के कारण	173
	कर्मों की दस करण रूप अवस्थाएँ	180
18.	**गुणस्थान वर्णन**	181
	गुणस्थान की परिभाषा	182
	चौदह गुणस्थानों का संक्षिप्त विवेचन	182
	गुणस्थानों का आरोहण, अवरोहण क्रम	186
	चौदह गुणस्थानों के स्वामी	187

19.	**अध्यात्म में उपयोग एवं स्वरूपाचरण**	188
	उपयोगों की प्राप्ति का क्रम	188
	गुणस्थानों में उपयोगों का क्रम	189
	शुद्धोपयोग से परिणत आत्मा का स्वरूप	189
	श्रमण की परिभाषा	189
	शुभोपयोग का स्वरूप	190
	शुभोपयोग कौन-सा भाव	190
	औपशमिक आदि पंच भाव किसमें कारण हैं	190
	शुभोपयोग केवल बंध का कारण नहीं	191
	शुभोपयोगी श्रावक व मुनि की चर्या	191
	शुभोपयोग और शुद्धोपयोग में ध्यान	192
	भावलिङ्गी मुनि पञ्चम-काल में कब तक रहेंगे ?	193
	अशुभोपयोग का स्वरूप	194
	अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का फल	194
	स्वरूपाचरण रूप निश्चयचारित्र का स्वरूप	194
	स्वरूपाचरण चारित्र का स्वामी	195
	समयसार ग्रन्थ पढ़ने की योग्यता	197
	स्वात्मानुभूति किसको ?	198
20.	**अनेकान्त दृष्टि**	199
	अनेकान्त दृष्टि का अर्थ	199
	स्याद्वाद की परिभाषा	200
	सप्तभङ्गी का विचार	200
	व्यवहार की सत्यार्थता	202
	पर्याय-दृष्टि विवेचन	203
	निश्चयाभासी और पुण्य हेय	204
21.	**नैतिकता और शिष्टाचार**	206
	जिनालय सम्बन्धी शिष्टाचार	206
	जिनेन्द्र भगवान के समक्ष शिष्टाचार	207
	शास्त्र के समक्ष शिष्टाचार	209
	दिगम्बर गुरु चरणों में शिष्टाचार	210
	धर्मसभा सम्बन्धी नैतिकता शिष्टाचार	212
	लोक-व्यवहार में शिष्टाचार	212
	भव्यात्माओं के सम्यक्-कर्त्तव्य	215

संस्कार की भूमिका

-आचार्यश्री आर्जवसागरजी महाराज

सत्पुरुषों की वाणी है कि -''सुखाय धर्म संस्कारः दुःखाय पाप संस्कारः'' धर्म संस्कार शिव सुख के लिए और पाप का संस्कार भव दुःख के लिए होता है। अतः आज की भव्य बाल एवं युवावस्था युक्त आत्माओं के जीवन में धर्म संस्कार की बड़ी आवश्यकता है। इस संसार में प्रत्येक आत्मा कोई न कोई अच्छे या बुरे संस्कार से संस्कारित अवश्य है। बचपन अवस्था से जैसे विचार वाले, पारिवारिक या सामाजिक लोगों का सम्पर्क मिलता है, वैसा ही मानव का धार्मिक या अधार्मिक जीवन बनता है। धर्म संस्कार हेतु जहाँ अनेक पुरुषार्थ करने पर भी कार्य की सिद्धि नहीं होती; वहाँ पूर्वकृत पाप कर्म की मुख्यता समझी जाती है। पाप कर्म के उदय से आत्मा पर पड़े हुए अधर्म के संस्कार को सद्धर्म के माध्यम से बदला जा सकता है और पुण्य से प्राप्त हुआ धार्मिक संस्कार बुरी संगति से अधार्मिक भी हो सकता है।

इस संसार में जितनी भी आत्माएं दुःखी अवस्था से सुखी अवस्था को प्राप्त हुई हैं, वे सभी अहिंसा परमो धर्म व रत्नत्रय धर्म के संस्कार के माध्यम से ही सुखी अवस्था को प्राप्त हुई हैं। कहा भी गया है कि ''धरतीति धर्मः'' जो संसार के दुःख से उठाकर स्वर्ग, मोक्ष सुख के स्थान में रख दे, उसे धर्म कहते हैं। हमारे जैन शास्त्रों में धर्म को अनेक नामों से पुकारा गया है।

जैसे -

धम्मो वत्थु सहावो, खमादिभावो य दसविहो धम्मो।

रयणत्तयं च धम्मो, जीवाणं रक्खणं धम्मो॥ (स्वा.का.अ.)

वस्तु का स्वभाव धर्म है, क्षमादिक भाव रूप दस प्रकार के धर्म हैं, रत्नत्रय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र धर्म है तथा जीवों की रक्षा करना धर्म है।

आगे निश्चय दृष्टि से ''चारित्तं खलु धम्मो'' मिथ्यात्व व कषाय से रहित मुनियों का समता भाव रूप चारित्र ही धर्म है, ऐसा आचार्य कुन्दकुन्द ने प्रवचनसार ग्रन्थ में कहा है।

आज का लौकिक, भौतिक विज्ञान जो कि वीतराग विज्ञान से बिल्कुल शून्य है, जितनी उन्नति करता जा रहा है, उतनी ही मानव में चारित्र या धर्म संस्कार की कमी देखी जा रही है, इसका कारण पञ्चेन्द्रियों के विषयों की असीमित उपलब्धि एवं धर्म के संस्कार का अभाव ही जानना चाहिए।

पञ्चेन्द्रियों के जितने विषय प्राणी को उपलब्ध होते हैं, उतनी ही राग-द्वेष की जनक इच्छाएँ बढ़ती ही चली जाती हैं और राग-द्वेष ही कर्म बंध में प्रमुख कारण हैं। पाप कर्म के बंध से संसारी आत्माएं इस संसार में अनेक दुर्गति, निर्धनता और रोगोत्पत्ति इत्यादिक यातनाओं को प्राप्त करती हैं।

साक्षात् तीर्थङ्करों के समय जिस धर्म का महान् प्रभाव होता है, उनके अभाव में भी असंख्यातों वर्ष तक उस सद्धर्म का प्रभाव परम्परा रूप से चलता रहता है और सद्धर्म की ध्वजा फहराती रहती है। इस पञ्चमकाल में भी भगवान महावीर के तीर्थ में इन्द्रभूति गौतम गणधर और उनके पश्चात् केवली, श्रुत केवली एवं आचार्य कुन्दकुन्द व स्वामी समन्तभद्र जैसी अनेक आत्माएं ''अहिंसा परमोधर्म'' रूप समीचीन धर्म की प्रभावना के लिए अपने जीवन को समर्पित कर उसमें संलग्न रही हैं और उन्होंने भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करों की दिव्यध्वनि रूप धर्म गंगा में स्वयं अवगाहित होकर उसको हम तक पहुँचाया है। हमारा परम

कर्तव्य होता है कि ऐसे धर्म तीर्थ में हम भी अवगाहित होकर उसका अलौकिक आनंद प्राप्त करें और अनुपम शान्ति सुख का अनुभव करें।

मानव जन्म को पाना एक प्रकार के पुण्य कर्म का फल है और जैनधर्म को पाना कई जन्मों के पुण्य का फल है तथा जैनधर्म के नियमानुसार चलकर त्याग, संयम के माध्यम से अपनी आत्मा को विशुद्ध बना लेना बड़े श्रेष्ठ पुण्य एवं पुरुषार्थ का फल माना है।

प्रायः संसारी आत्माएं जिस गति या पर्याय को प्राप्त होती हैं, उसी जगह क्षणिक वैषयिक सुख से प्रभावित होकर उन्हें बड़ी तृष्णा से भोगने में आसक्त हो जाती हैं। उन्हें यह ज्ञान नहीं हो पाता कि ऐसे इन्द्रिय विषय जनित क्षणिक सुख इस आत्मा को अनन्तों बार प्राप्त हो चुके हैं। परन्तु इन विषयों को भोगने से पुनः उत्पन्न होने वाली इच्छाओं का समापन नहीं हुआ और न ही पूर्ण तृप्ति, शान्ति का अनुभव हुआ है। बल्कि इन्हें छोड़ने या इनका त्याग करने से ही तृप्ति शान्ति-सुख का अनुभव होता है। अग्नि कुण्ड में जितना भी ईंधन डाला जाएगा उतनी ही अग्नि अत्यधिक प्रज्ज्वलित होती चली जायेगी। उसका समापन नहीं होगा। जैसे रावण के लिए मंदोदरी जैसी सुंदर-सुंदर अठारह हजार रानियां प्राप्त हुईं थीं, परन्तु फिर भी परस्त्री सीता के प्रति आशा या तृष्णा उत्पन्न हुई और परवस्तु के मोह से दुर्गति का फल पाया। युग के आदि में बाहुबली, भरत चक्री से विजित होने के बाद भी स्वार्थी क्षणभंगुर इस संसार को राग-द्वेष की उत्पत्ति का कारण जानकर राज वैभव और इन्द्रिय सुख से विरक्त हो दिगम्बर मुद्रा धारण कर आत्मा में लीन हो गए थे तभी उन्हें महाशान्ति का अनुभव हुआ था और एक वर्ष की घोर तपस्या से कैवल्य की उपलब्धि हुई थी। तात्पर्य यह हुआ रावण सदृश अनेक तरह से इन्द्रिय विषयों की पूर्ति करने पर भी नवीन इच्छाओं की शान्ति नहीं, बल्कि तीर्थङ्करों और महामुनीश्वर बाहुबली भगवान, सुकुमाल, गजकुमार एवं जम्बूस्वामी जैसी आत्माओं के द्वारा इन्द्रिय विषयों से आशा, मोह छोड़ देने पर ही इस आत्मा को वास्तविक या आत्मिक सुख-शान्ति का अनुभव हुआ करता है।

धर्म संस्कार के अभाव में आज की दुनियां केवल विषय सुखों को, भोग विलासता को, अवगुणता में स्वात्म प्रशंसा को, पदवी-आशा, मिथ्या भेष और ख्याति, लाभ, पूजा में वास्तविक सुख की कल्पना कर रही है यह मृग मरीचिका जैसी स्थिति विषयभोगी को नियम से दुर्गति के गर्त में पहुँचा देती है।

मानव का इन्द्रिय विषयों में स्वाद लेना एक तलवार की धार पर लगी मीठी वस्तु को जिह्वा से चखने के समान क्षणिक सुख के साथ पाप बंध और दुर्गति रूप महा कष्ट में अपने को आकंठ डुबोना है। अपने अमूल्य जीवन के क्षणों को एवं अल्प जीवन को व्यर्थ गंवाना है तथा विषयान्ध व कामांध बनकर चार्वाकादि अन्य मतों में कथित-

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कुतः॥

जितना जीना है सुख से जियो, ऋण करके भी घी पियो क्योंकि इस शरीर के नष्ट हो जाने पर पुनः आगमन कहाँ ? वाले सिद्धान्त को चरितार्थ करना है। इसका मुख्य कारण धार्मिक संस्कार का अभाव और आस्तिकपने का अभाव समझना चाहिए।

इन्द्रिय विषय के सुख के सम्बन्ध में प्रवचनसार में कहा है कि-

सपरं बाधा सहिदं विच्छिण्णं बंध कारणं विसमं।
जं इन्दियेहिं लद्धं, तं सौख्य दुःखमेव तहा॥76॥

जो इन्द्रियों से उत्पन्न सुख है, वह पराधीन, बाधा से सहित, स्वल्प समय में ही समाप्त हो जाने वाला, पाप कर्म के बंध का कारण और परिवर्तनशील (क्षणभंगुर) रूप होने से दु:ख ही है, ऐसा जानना चाहिए।

उपर्युक्त धर्म के सम्बन्ध में कुन्दकुन्दाचार्य जैसे आचार्यों द्वारा कथित धर्म का चिन्तन धर्म संस्कारित आत्मा में ही आ सकता है, जो संस्कार प्राय: बचपन में दिया जाता है। जब बच्चा योग्य गृह में जन्म पाता है तब बच्चे को जन्म देने वाले माता-पिता उस बच्चे के प्राथमिक गुरु हुआ करते हैं। वे जैसा चाहें अच्छा या बुरा वैसा जीवन अपने बच्चों का बना सकते हैं। क्योंकि निमित्त के अनुसार उपादान की जागृति होती है, ऐसा आगम का कथन है। बच्चों के जीवन का विकास एक द्राक्ष (अंगूर) की लता के सदृश वृद्धिंगत होता है। जैसे-द्राक्ष की लता जब वृद्धि की ओर जाने लग जाती है, तब उसे विवेकी लोग योग्य दिशा में ले जाने हेतु लकड़ी या रस्सी का सहारा देते हैं तो योग्य दिशा या स्थान में पहुँचकर वह सुरक्षित लता सरलता से फलित होती है। अगर उसे ऐसा सहारा न दिया जाए तो उसके अयोग्य दिशा में जाने के बाद व कठोर अवस्था को प्राप्त हो जाने के बाद उसमें परिवर्तन करना असंभव या बहुत कठिन होता है। उसी तरह बच्चों का हृदय बचपन अवस्था में कोमल (मृदु) होता है, उसे हम जैसा मोड़ना चाहें वैसा मोड़ सकते हैं। सद्धर्म का संस्कार दे सकते हैं, जिससे वह बड़ा होने पर श्रेष्ठ धर्मी, सुखी बन सकता है। अगर माता-पिता ने अपनी संतान को बचपन अवस्था में सद् संस्कार नहीं दिया तो प्राय: बच्चे धर्म से विपरीत दु:संगति से बुरे व्यसनों के मार्ग में चले जाते हैं, तब उन्हें उस कुमार्ग से मोड़ना बड़ा कठिन होता है। वे धर्मियों की धर्म शिक्षा या उपदेश की भी उपेक्षा करने लग जाते हैं।

महाराष्ट्र प्रदेश की बात है कि एक व्रती महिला अपने जवान बेटे के साथ आकर बोली कि महाराज जी! हमारे इस बेटे को जुआ खेलने का त्याग करा दीजिएगा।

तब ऐसा सुनते ही मुझे आश्चर्य-सा हुआ और मैंने उस माँ से कहा, ''अरे! आप तो व्रती (प्रतिमाधारी) महिला हैं और आपका बेटा जुआ कैसे खेलता है ? क्यों आपने उसे बचपन में धर्म से संस्कारित नहीं किया ?''

इसके उत्तर में वह माँ बोलती है कि, ''महाराज जी, यह मेरी भूल रही। किन्तु अभी बहुत समझाती हूँ, लेकिन यह बेटा सुनता ही नहीं है, यह बुरी संगति में पड़ गया है, अत: आपके समझाए जाने पर ही वह समझ सकता है।''

उस समय मैंने उस बेटे से कहा कि, ''देखो! तुम्हारी माँ कितनी धर्मी हैं और ऐसी धर्मी माँ को तुम ऐसे बुरे व्यसनों में आसक्त होकर क्यों कष्ट देते हो। तुम्हें अपने एवं परिवार के जीवन को सुखी बनाने हेतु जुआ खेलने का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि जुआ ऐसा बुरा व्यसन है जो सारे परिवार एवं स्वयं के जीवन को नष्ट कर देता है तथा जुआ मात्र एक व्यसन के साथ मानव थोड़े ही दिनों में सारे व्यसनों में आसक्त हो जाता है।''

ऐसा समझाए जाने के उपरान्त वह बेटा बोलता है कि, ''महाराज, हमारे इस नगर से थोड़े दूर जो सिद्धक्षेत्र (मुक्तागिरी) है, वहाँ आज से दस वर्ष पूर्व एक बड़े मुनि संघ का आगमन हुआ था और उस समय मैं छोटी (बाल्य) अवस्था में था। तब हमारी माँ ने मुझे उन महाराजों के पास ले जाकर इन बुरे व्यसनों के त्याग का नियम क्यों नहीं दिला दिया ? अन्यथा आज यह समस्या न आ पाती। मेरे माता-पिता द्वारा बचपन में धर्म संस्कार न दिलाए जाने से मैं बुरी संगति में पड़ गया हूँ और अब जुए का व्यसन इतना गहरा हो गया है कि उसका छूटना बड़ा मुश्किल है।''

इसके बाद मेरे द्वारा ऐसा कहे जाने पर कि तुम्हारी मन शुद्धि नहीं है अत: तुमसे एवं तुम्हारे गृह में आहार

दान का कार्य नहीं हो सकता। तब उस बेटे ने पश्चाताप करते हुए आजीवन जुआ खेलने का त्याग कर दिया।

जिस तरह माता-पिता द्वारा धर्म संस्कार दिए जाने पर संतान अगर धर्मी बने तो संतान धर्म के माध्यम से जितना पुण्य कमाती है उसके छठवें भाग के बराबर पुण्य उसके माता-पिता को प्राप्त होता है। उसी तरह अगर माता-पिता के अधर्म या पाप के संस्कार से उनकी संतान अधर्मी, व्यसनी बने तो यहाँ भी पाप के छठवें भाग बराबर पाप उन्हें मिलेगा ऐसा समझना चाहिए। क्योंकि अच्छे-बुरे कार्यों की कृत, कारित और अनुमोदना का फल तो शास्त्रों में कहा ही गया है।

अतः उपर्युक्त विषय का तात्पर्य यही हुआ कि बच्चे जब प्राथमिक अवस्था में होते हैं, तभी उन्हें अंगूर की लता के सदृश सम्हालना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए कहा जाता है कि धर्म का संस्कार बचपन अवस्था में दिया जाता है, न कि पचपन में। ऐसा धर्म का संस्कार एक जीवन के अंत तक मात्र रहता है ऐसा नहीं, कई जन्मों तक धार्मिक वातावरण सुख-सामग्री को प्रदान करता है यहाँ तक कि अन्य छोटी-बड़ी आत्माओं पर अपना प्रभाव डालता हुआ शीघ्रातिशीघ्र जन्म-मरण की परम्परा का अंत कर सिद्ध परमात्मा बना देता है। अनेकान्तमय शास्त्र ज्ञान से एवं कर्म सिद्धान्त से अनभिज्ञ जन कह सकते हैं कि माता-पिता तो निमित्त मात्र हैं, वह निमित्त या कोई एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता फिर किसी पर, किसी के द्वारा संस्कार देने की बात ही नहीं होती ? उनका ऐसा कहना ठीक नहीं क्योंकि एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य रूप नहीं हो सकता यह सत्य है। लेकिन कारण बिना कार्य की उत्पत्ति नहीं, साधन बिना साध्य की प्राप्ति नहीं, यह सिद्धान्त का अटल नियम है, अतः एक द्रव्य दूसरे द्रव्य पर अपना प्रभाव भी अवश्य दिखला सकता है या सहायक बन सकता है। अगर ऐसा न होता तो-एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य पर कुछ भी परिणाम (प्रभाव) न मानने वाले आज सिद्धालय में अवश्य विराजमान होते। परंतु वे आज यहीं पर चतुर्गति संसार में भ्रमण करते देखे जा रहे हैं और यहाँ संसार में रुके रहने का कारण क्या है ? तो आत्मा के स्वभाव से भिन्न पर द्रव्य रूप उन जड़ अचेतन अष्ट कर्मों का संयोग ही यहाँ संसार में रुके रहने का कारण या निमित्त है और भी पूछना चाहता हूँ कि-

- मयूर की आवाज सुनते ही चंदन के वृक्ष पर लिपटे हुए सर्प बंधन को छोड़कर बिलों का आश्रय क्यों ले लेते हैं ?
- अग्नि का संयोग होने पर जल उष्ण क्यों हो जाता है ?
- सूर्य उदय होते ही कमल वन क्यों विकसित हो उठता है ?
- चन्द्र के पूर्ण खिलने पर समुद्र का जल क्यों उछलने लगता है ?
- भोजन के उपलब्ध न होने पर सरागी प्राणी को विशेष आकुलता क्यों होती देखी जाती है ?
- किसी परिवार में किसी व्यक्ति की आयु समाप्त होने पर सरागियों की आँखों में आँसू क्यों देखे जाते हैं ?
- किसी के द्वारा अनिष्ट वचन कहे जाने पर सरागियों के लिए अप्रसन्नता एवं इष्ट जड़ वचनों से प्रसन्नता क्यों होती है ?
- ओजस्वी निर्दोष वक्ता का प्रभाव और ओजस्वहीन या सदोषी वक्ता का प्रभाव लोगों पर अधिक, कम क्यों देखा जाता है ?
- आयतनों को छोड़कर अनायतनों के दर्शन का निषेध क्यों किया जाता है ?
- पर द्रव्य रूप भगवान और गुरु के पास जाने का क्या प्रयोजन है ?
- पर द्रव्य की क्रिया रूप जिनवाणी की उपासना, स्वाध्याय करने का एवं उपदेश देने का क्या प्रयोजन है ?

- भगवान के दर्शन से और णमोकार मंत्र के जप इत्यादिक धार्मिक क्रियाओं से बहु कर्मों का क्षय होता है ऐसा जिनागम में क्यों कहा गया है ?

इस प्रकार अनेकान्त की दृष्टि (निश्चय, व्यवहार एवं द्रव्य, पर्याय की अपेक्षा) से विचार करने पर इन सब प्रश्नों का उत्तर यही है कि एक दूसरे द्रव्यों की सहायता बिना कार्य-कारण, साध्य-साधन एवं निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध की व्यवस्था नहीं बन सकती, अतः आचार्य कुन्दकुन्द ने नियमसार ग्रन्थ में कहा है कि-

सम्मत्तस्स णिमित्तं, जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतर हेऊ भणिदा, दंसणमोहस्स खय पहुदी॥ 7 ॥

अर्थात् जिन भगवान, सूत्र (शास्त्र) और उस शास्त्र को जानने वाले निर्ग्रन्थ वीतरागी गुरु ये सम्यग्दर्शन के बाह्य निमित्त हैं। तथा दर्शनमोहनीय कर्म का क्षय, क्षयोपशम और उपशम होना सम्यग्दर्शन के अंतरंग निमित्त कहे गए हैं।

निमित्त को उदासीन और प्रेरक के भेद से दो तरह का जानना चाहिए। जैसे मछली को चलने में तालाब या कुएं का जल या रेल को चलने में पटरी उदासीन निमित्त है। उसी तरह गाड़ी के चलाए जाने में गाड़ी का चालक एवं शिष्य के लिए सन्मार्ग के आज्ञा प्रदाता साक्षात् गुरु प्रेरक निमित्त कहलाते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न के उत्तर से निमित्त की सार्थकता समझ में आ सकती है कि अष्ट कर्मों से रहित परम शुद्धावस्था को प्राप्त सिद्ध परमेष्ठी इस लोकाकाश से ऊपर क्यों नहीं जा पाते ? ऐसा प्रश्न पूछे जाने पर इसका उत्तर यही होता है कि लोकाकाश के ऊपर उदासीन निमित्त रूप ''धर्मास्तिकायाभावात्''धर्मास्तिकाय द्रव्य का अभाव होने से, वे परमेष्ठी लोकाकाश से ऊपर अलोकाकाश में नहीं जा पाते उनकी गति में रुकावट आ जाती है। देखिए निमित्त के अभाव में अनन्त शक्तिशाली आत्मा भी पीछे रह जाती है अन्यथा अनन्त शक्ति से सम्पन्न सिद्ध परमेष्ठी को अलोकाकाश में अवश्य जाना चाहिए था। अतः निमित्त या कारण रूप एक दूसरे द्रव्य की सहायता मिले बिना कार्य नहीं हो सकता ऐसा समझना चाहिए।

धर्म संस्कार के प्रभाव से मुनि बन शुक्लध्यानरूपी अग्नि में अपने सकल कर्मों को भस्मसात् करने वाले निकल परमात्मा का धर्मास्तिकाय रूप साधन या निमित्त से लोक शिखर तक पहुँचकर जिस स्थान पर ठहरना होता है, वह सिद्धालय कहलाता है। मध्य लोक सम्बन्धी मनुष्यलोक के 45 लाख योजन से ही सिद्धि को प्राप्त करने वाले वे सिद्धात्मा ऋजुगति से ऊर्ध्वगमन कर 45 लाख योजन वाली सिद्धशिला पर हमेशा के लिए विराजमान हो जाते हैं। वे कृतकृत्य कहलाते हैं। क्योंकि जो मोक्ष पुरुषार्थ करने योग्य होता है उसे वे कर चुके होते हैं। वे अनन्त गुणों के भण्डार परम वीतरागी शिव, सत्य रूप होते हैं। वास्तविकता, सहजता या स्वाभाविकता को प्राप्त करना ही सत्य का गहना है।

जो सभी पाप कलङ्कों व संसार विकल्पों से रहित हो गए हैं, जिस कारण उनकी आत्मा स्वच्छ दर्पण या निस्तरंग जल के सदृश हो गई है, वे सत्य रूप हैं, और ऐसे सत्य के देखने से हम सत्य की पहचान कर लेते हैं एवं हमें अपना रत्नत्रयमय वास्तविक वैभव ज्ञात हो जाता है। उनके गुणों के चिन्तन से व तदनुसार आचरण करने से अपने वास्तविक गुण प्रकट होने लग जाते हैं। हमारे जीवन पर जो अधर्म का संस्कार पड़ गया था, वह मेघपटल हटने से सूर्य उदय होने की भाँति दूर हटकर हमारी आत्मा धर्म से संस्कारित होने लग जाती है। अतः ऐसे ही परम सत्यमय वीतराग परमात्मा के गुणों की उपलब्धि करने हेतु इस 'जैनागम संस्कार' नाम वाली सर्वोपयोगी कृति की

रचना हुई है। जिसका आधार लेकर हम अपने आपको रत्नत्रयमय वैभव से सम्पन्न कराते हुए धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ के बल से मुक्तात्मा बन उत्तम शाश्वत सुख में लीन हो जाएं। ''सत्यं शिवं सुन्दरं'' सत्य ही शिव है और शिव ही सुन्दर है जिसके समान सत्य से शिव और शिखामणि सम सुन्दर बन जाएं।

इस पुस्तक में प्रस्तुत किए गए विषय को सरलता की अपेक्षा इक्कीस अध्यायों में संयोजित किया गया है। उन अध्यायों के नाम इस प्रकार हैं- 1. णमोकार मंत्र माहात्म्य 2. तीर्थङ्कर दिग्दर्शन 3. जैन श्रावक के कर्तव्य 4. देवदर्शन विधि एवं उसका माहात्म्य 5. व्यसन मुक्ति, शाकाहार (जैनी की पहचान) 6. पूजन माहात्म्य 7. जैन धर्म माहात्म्य 8. रत्नत्रय का स्वरूप 9. सम्यग्दर्शन धर्म माहात्म्य 10. सम्यग्ज्ञान धर्म माहात्म्य 11. सम्यक्चारित्र धर्म माहात्म्य 12. सप्त तत्त्व व षट्द्रव्य वर्णन 13. त्रिलोकवर्णन 14. नवधाभक्ति माहात्म्य 15. समाधिमरण माहात्म्य 16. पर्व व्रत माहात्म्य 17. अष्ट कर्म विवेचन 18. गुणस्थान वर्णन 19. अध्यात्म में उपयोग एवं स्वरूपाचरण 20. अनेकान्त दृष्टि 21. नैतिकता और शिष्टाचार।

उत्तर से दक्षिण भारत की यात्रा के समय भव्यों द्वारा तत्त्वज्ञान की जिज्ञासा एवं आत्म उद्धार की भावना से जो प्रश्न किए गए उन्हीं प्रश्नों का समाधान (उत्तर) रूप में तथा देश,काल की परिस्थिति अनुसार एवं आगम व धार्मिक क्रियाओं में आई रूढ़ि पद्धतियों के निराकरण को ध्यान में रखते हुए मैंने आगमानुसार अति आवश्यक महत्त्वपूर्ण प्रश्नों को लिखकर यह जो कृति सम्पूर्ण की है, जिसका नामकरण हुआ है 'जैनागम संस्कार'।
प्रश्नोत्तर मालिका के रूप में इस 'जैनागम संस्कार' कृति में कुल 809 प्रश्नोत्तर लिखे गए हैं और इन्हीं प्रश्नोत्तरों के अंतर्गत मंदाग्नि वाले व्यक्तियों के लिए भोजन के साथ-साथ चटनी के सदृश प्रश्नोत्तर के रूप में ही संक्षेप में कुछ उदाहरण (दृष्टान्त) भी उपस्थित किए गए हैं। जिन उदाहरणों के माध्यम से यह श्रुत ज्ञान रूपी आहार नियम से सत् पात्रों के गले उतर जाएगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

यह 'जैनागम संस्कार' पुस्तक अपने सद्गुरु के आशीर्वाद का प्रसाद रूप ही है, ऐसा मैं मानता हूँ। इस अल्पज्ञता से लिखी कृति की भूलों के लिए सद्गुरुओं के प्रति क्षमा प्रार्थी हूँ और अंत में यही मंगल भावना भाता हूँ कि सभी भव्यात्माएं इस कृति का स्वाध्याय कर उत्तम धर्म संस्कार को अपनाकर संसार के इन्द्रिय विषयक राग से सम्बन्धित 'भोक्तुमिक्षु भुभुक्षु' अवस्था छोड़कर इससे अतीत, मोक्षमार्ग की ओर कदम बढ़ाते हुए वीतरागी, निर्मोही, निर्ग्रन्थ मुनि बन वास्तविक मोक्षसुख हेतु 'मोक्तुमिक्षु मुमुक्षु' बने और मोक्षमहल को प्राप्त कर आत्मिक, अक्षय, अनन्त सुख में लीन हो जाएं।

इत्यलं।

पावन-प्रेरणा

- इंजी. शोभित जैन दमोह (पुणे)
M.Tech.

'जैनागम संस्कार' पुस्तक हिंदी भाषा में आचार्य श्री आर्जवसागरजी महाराज द्वारा जीव कल्याण के लिए लिखी गई है। चूंकि आचार्यश्री लगभग 14 वर्षों तक भारत के दक्षिणी राज्यों में रहे, इसलिए कई लोग उनके आचरण से बहुत प्रभावित हैं। उनमें से कुछ ने युवा पीढ़ी के लिए जैन धर्म की अवधारणा के आधार को स्पष्ट करने के लिए प्रश्नोत्तर शैली में ऐसी पुस्तक की आवश्यकता महसूस की। परिणामस्वरूप, आचार्यश्री ने ऐसी अनुपम कृति की रचना कर सराहनीय कार्य किया। आचार्यश्री विद्यासागर जी महाराज की चर्या के महान प्रचारक, आचार्यश्री आर्जवसागर जी महाराज ने अपने विशाल ज्ञान का उपयोग गहरी अवधारणाओं को प्रश्न और उत्तर प्रकार के आसान तरीके से विकसित करने में किया। उन्होंने चारों अनुयोगों का सार समाहित कर मौलिकता को बनाए रखते हुए प्रश्नोत्तरी को अच्छी तरह से तैयार किया और प्रत्येक पृष्ठ को पढ़ने लायक बना दिया। मेरे पुण्ययोग से मुझे अच्छा एक और सुअवसर भी प्राप्त हुआ; जो कि ऐसी महान कृति जैनागम संस्कार को अंग्रेजी में अनुवादित करने के योग्य गुरुदेव नें मुझे समझा।और जो कार्य भी अब पूर्ण हो चुका है। अंग्रेजी में रूचि रखने वाले देश विदेश के सभी भव्यों के हाथों में सम्यग्ज्ञान को बढ़ाने वाली यह जैनागम संस्कार कृति अब प्राप्त हो सकेगी।

जैनशास्त्र के प्रति आचार्य श्री जी का योगदान और अपने काम के प्रति समर्पण अद्भुत और अवाक है जिससे उनके तेज कौशल को देखा जा सकता है। इसके अलावा वह सर्वश्रेष्ठ तपस्वी और हिंदी कविताओं के विशेषज्ञ में से एक हैं, उनके सोचने के तरीके ने मेरे सहित सभी तनावग्रस्त लोगों के लिए विश्राम कैप्सूल की भूमिका निभाई। हर काम को गहराई से जांचने के बाद मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि आचार्यश्री जी ने कितनी सूक्ष्मता से चीजों का अवलोकन किया और उसे लिपिबद्ध किया। उनके द्वारा लिखित प्रत्येक साहित्य आसानी से समझने योग्य है।

सामान्य प्रश्न **'जैन धर्म कहाँ से पढ़ना शुरू करें या किस पुस्तक से शुरू करें' का उत्तर है 'जैनागम संस्कार'**। यह उन लोगों के लिए लाभकारी होगा जो जैन दर्शन का आरंभिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए विभिन्न सांसारिक कार्यों में व्यस्त हैं और उनके पास स्वाध्याय के लिए समय नहीं है। स्वयं ये मेरे लिए अपने दैनिक कार्य को सकारात्मक मोड़ देने में मददगार साबित हुआ। ऐसी धार्मिक पवित्र पुस्तक के अध्ययन से आत्म शांति और पवित्रता प्राप्त होती है। मुझे पूरा यकीन है कि यह लोगों को धर्म के कई पहलुओं में मदद करेगा और उनकी नकारात्मकता को सकारात्मकता में बदलेगा।

मुझे कुछ करने में सक्षम बनाने के लिए, साथ ही मेरे अंदर के लेखक को जन्म देने के लिए आचार्यश्री को धन्यवाद देना चाहता हूं। प्रत्येक पोस्ट प्रोसेसिंग गतिविधियों का ध्यान रखने के लिए अजित जी को भी हृदय से धन्यवाद। परिवार के बाकी सदस्यों को उनके अतुलनीय समर्थन के लिए धन्यवाद।

'केवल यही शुभ भावना'

'नमोस्तु आचार्यश्री'

'जैनागम संस्कार' एक अभिप्राय

'जैनागम संस्कार' – परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्य विद्यासागर जी मुनि महाराज के परम शिष्य परम पूज्य आचार्यश्री आर्जवसागर महाराज की एक श्रेष्ठ कृति है।

आजकल के व्यसन युक्त एवं रूढ़िवादी समाज के कुछ लोगों को देखते हुए पूज्य आचार्यश्री ने सामाजिक और धार्मिक समस्याओं के कारण जैनागम संस्कार कृति लिखते हुए उत्तम संस्कार रहित और धर्म रहित जीवन को पुरुषार्थ एवं कर्तव्यहीन जीवन बतलाया है। इस कटु सत्य को अपनी बाल्यावस्था में ही समझकर आप त्याग तपस्या के जीवन में आये और आत्मकल्याण के मार्ग में धैर्यशाली होकर चलते हुए आप चारित्र सम्राट बन चुके हैं। रत्नत्रय स्वरूपी आचार्यश्री महाराज सामान्य लोगों को अपने मोक्षमार्ग में आने के लिए निमित्त बन गये हैं। मोक्षमार्ग के अग्रदूत बने हैं।

उत्तरभारत से दक्षिणभारत की ओर विहार करते हुए आचार्यश्री ने महाराष्ट्र, कर्नाटक और तमिलनाडु में संचार कर अपूर्व धर्म प्रभावना की है, जहाँ उन्होंने वर्षायोग किया, वहाँ-वहाँ के लोगों को आध्यात्मिकता का खूब भोजन खिलाया है। ज्ञानगंगा बहायी है।

बच्चों, युवकों, स्त्रियों, बुजुर्गों को धर्म संस्कार देते हुए उनको धर्म-चिन्तन करने की प्रेरणा दी है, उनकी प्रेरणा से लोगों में धर्म के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हुई है। वे लोग आचार्यश्री के चरण कमल में पधारकर धर्म की शरण में आये हैं और उन्होंने अपने संदेहों का आचार्यश्री से परिहार पाया है।

इस 'जैनागम संस्कार' में आचार्यश्री ने अपने चरण मूल में आकर जिन लोगों ने संदेह उठाये थे, उन संदेहों को प्रश्नोत्तर रूप देकर विषय विविधता के तौर पर 21 अध्यायों में सम्पादन किया है।

सूक्ष्मता से यहाँ के 21 अध्यायों को अवलोकन करने से पूज्य आचार्यश्री के आगम शास्त्र के प्रकाण्ड पाण्डित्य का दर्शन होता है। जैनधर्म के चारों अनुयोगों के सार को आचार्यश्री ने जन सामान्य को नजर में रखते हुए अत्यन्त सरल रीति से वर्णित किया है। प्रश्नोत्तर के माध्यम से धार्मिक विचारों को सरल ढंग से बताने की उनकी कला अमोघ है। मंदमति भी इस कृति के स्वाध्याय करने के लिए आसक्त हो जाते हैं। जगह-जगह सिद्धान्त के विचारों को कथा माध्यम के साथ समझाने का प्रयास किया है।

आचार्यश्री ने इस कृति को हिन्दी भाषा में रचा है। महाराज जी से मैं पिछले 6-8 वर्षों से सम्पर्क में हूँ। इनके रत्नत्रय पालन से प्रभावित हूँ। कई बार इनके साथ धर्म चर्चा करने का सौभाग्य मुझे मिला है। जब 2002 का वर्षायोग शिमोग्गा में हुआ तब उन्होंने इस कृति का धर्म संस्कार रूप में कन्नड़ अनुवाद कार्य आशीर्वाद पूर्वक मुझे सौंपा। कन्नड़ भाषा में अनुवाद करते समय प्रति अध्याय के हर शब्द को चिंतन करने का अवसर मुझे मिला। इनमें बहुत सारे अध्यायों को मैंने उनके पादमूल में बैठकर समझने का अवसर प्राप्त किया था-ये मेरा बहुत जन्मों से अर्जित पुण्य का फल है।

''णमोकार मंत्र माहात्म्य'' से प्रारम्भ हुआ ये- 'जैनागम संस्कार' ग्रन्थ ''नैतिकता और शिष्टाचार'' के अध्याय तक सम्पूर्ण हुआ है। इन अध्यायों में आचार्यश्री ने जैन श्रावक गणों को प्रधान रूप से रत्नत्रय पालन करने रूप आचरण के विधि विधानों का प्रश्नोत्तर रूप में विवरण करते हुए धर्म में आस्था की जड़ को पैदा किया है। हर एक अध्याय भव्य जीवों के लिए उनके अनुकम्पा भाव से प्रकट हुआ है। समाज को अपने स्वास्थ्य एवं धर्म को सुरक्षा पूर्वक रखने के लिए धर्म संस्कारित होना चाहिए ऐसा उनका दया भाव प्रकट हुआ है। संस्कार रहित जीवन पशु समान है। इसलिए बाल्यकाल में ही बच्चों को धर्म संस्कार देते हुए, सांसारिक बंधन से छुटकारा पाकर मोक्षमार्ग में चलते हुए वीतरागी निर्मोही निर्दोष साधु बनकर मोक्ष सुख के लिए मोक्षमहल पहुँचकर, आत्मिक, अक्षय और अनन्तसुख में लीन हो जाने का जो आचार्यश्री का श्रेष्ठ भाव है, उसके प्रति हमें अपार आनन्द है। यदि हमें उनके चरणों में गुरुदक्षिणा देना है तो गुरुदक्षिणा को हम धर्म संस्कारित होने से भी दे सकते हैं और दूसरों को भी इस मार्ग में लाना हमारा कर्तव्य है। उनकी यह मंगल कामना हमारे लिये आशीर्वाद बने ऐसा अभिप्राय रखते हुए मैं आचार्यश्री महाराज को अनन्त बार प्रणाम करता हूँ।

जय जिनेन्द्र।

प्रो. जीवंधरकुमार होतपेटि एम.ए.
(पूर्व) अध्यक्ष इतिहास विभाग
सर.एम.वि. सरकारी कला और वाणिज्य कॉलेज,
भद्रावति, कर्नाटक

गुरु उपकार मन भाया

आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी के पटु शिष्य आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी द्वारा परम साधना एवं गहन अध्ययन के पश्चात् लिखी गई प्रस्तुत रचना ''जैनागम संस्कार' को मुझे आदि से अंत तक पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसे मैं अपने पूर्व जन्म में किए पुण्य कर्म का फल ही कहूंगा। आचार्यश्री 108 ने इस कृति में धार्मिक संस्कारों को आचरण के माध्यम से प्रत्येक व्यक्ति; चाहे वह बाल हो, युवा हो, वृद्ध हो अथवा स्त्री या पुरुष हो; के जीवन में ढाल लेने की बात बहुत ही सरल, सुबोध और सहज ढंग से व्यक्त की है।

मुझे अपने अड़सठ वर्ष के जीवन काल में इस कृति के रचयिता एवं संत शिरोमणि आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी के संघस्थ शिष्य पूज्य आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी के साक्षात् दर्शन करने एवं उनके सत्संग में आने का सुअवसर प्रथम बार ही उपलब्ध हुआ और मैं धन्य हो गया। आचार्यश्री की सौम्यता और मृदु मुस्कान न केवल उनके व्यक्तित्व को प्रकट करती है वरन् उससे धर्म-प्रभावना भी द्विगुणित होती है। इसका ज्वलंत प्रमाण यहाँ की कालोनियों-नेहरूनगर व पंचशील नगर आदि के निवासी जैन धर्म अनुरागी बंधु वर्ग हैं।

'जैनागम संस्कार' में समाविष्ट सम्पूर्ण इक्कीस अध्यायों में जैन धर्म-सम्बन्धी आगम शास्त्रों में वर्णित तथ्यों को इस सहजता से प्रस्तुत किया गया है कि इस कृति को यदि मैं 'गागर में सागर' जैसे मुहावरे से सम्बोधित करूं तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आचार्यश्री ने कृति के कुछ प्रारंभिक अध्यायों में श्रावक के जीवन में बाल्यावस्था से ही आचरण द्वारा धर्म संस्कार डालने की बात बहुत उत्तम ढंग से कही है। इन्हें ही पढ़कर यदि जैन धर्मावलम्बी श्रावक उन पर सत्यनिष्ठा से अमल करें या उन्हें अपने आचरण में उतारें तो कोई कारण नहीं कि उसे दुर्व्यसन छू तक जाएं।

पाश्चात्य संस्कृति में मदहोश हो रही नई पीढ़ी के लिए तो 'जैनागम संस्कार' एक रत्न-स्वरूप है। जैसा कि हम सबको विदित है, व्यक्ति जन्म से नहीं वरन् कर्म से महान् बनता है। आचार्यश्री की इस कृति के अध्याय सात ''जैनी की पहचान'' की पुष्टि इस प्रवृत्ति को अमल में लाने से स्पष्ट होती है।

आचार्यश्री 108 आर्जवसागर जी ने तमिलनाडु जैसे अहिन्दी भाषी राज्य के अनेक स्थानों पर करीब 7½ वर्ष रहकर उल्लेखनीय धर्म-प्रभावना की और धर्म-प्रभावना में वृद्धि करने की भावना के कारण भोपाल के नेहरूनगर स्थित श्री 1008 अजितनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में बाल वृन्द के लिए जैन पाठशाला प्रारम्भ करवा दी। फलस्वरूप अनेक बालक बालिकाएं रुचि लेकर इन पाठशालाओं में आते और हम देख रहे हैं कि इन्हें णमोकार मंत्र बोलने के साथ-ही-साथ इनमें प्रतिदिन देवदर्शन व पूजन करने की भावना भी प्रबल होने लगी है। यह बात जैनागम सिद्धान्तों को आचार्यश्री द्वारा बाल वृन्द को संस्कारित करने का सफल व स्पष्ट प्रमाण है।

इसी प्रकार जैनागम संस्कार के अगले अध्यायों में जैनदर्शन का तात्त्विक विवेचन क्रमशः बोधगम्य भाषा में सोदाहरण प्रस्तुत किया गया है। जिसे पढ़कर भव्य लोग जैनधर्म के मर्म को अच्छी तरह समझ सकते हैं और समीचीन पथ मोक्षमार्ग को पाकर अपना जीवन कृतार्थ कर सकते हैं। अपनी लेखनी को यहीं विराम देते हुए ऐसे परम उपकारी गुरु चरणों में शत-शत नमोऽस्तु।

स्व. डॉ. विमलचन्द जैन
(F/o प्रो. प्रशान्त जैन, भोपाल)
Vice Chairman in Sage University, Bhopal (M.P.)

जैनागम संस्कार

(प्रश्नोत्तर मालिका)

मंगलाचरण

जैन-धर्म में भव्यजनों का, नीति नियम शृंगार रहा ।
धर्म ग्रहण जो संस्कार है, वही आत्म-उद्धार रहा ॥
रत्नत्रय को धारें भविजन, महावीर को नमन करें ।
जैनागम के संस्कार से, मुक्तिपुरी को गमन करें ॥

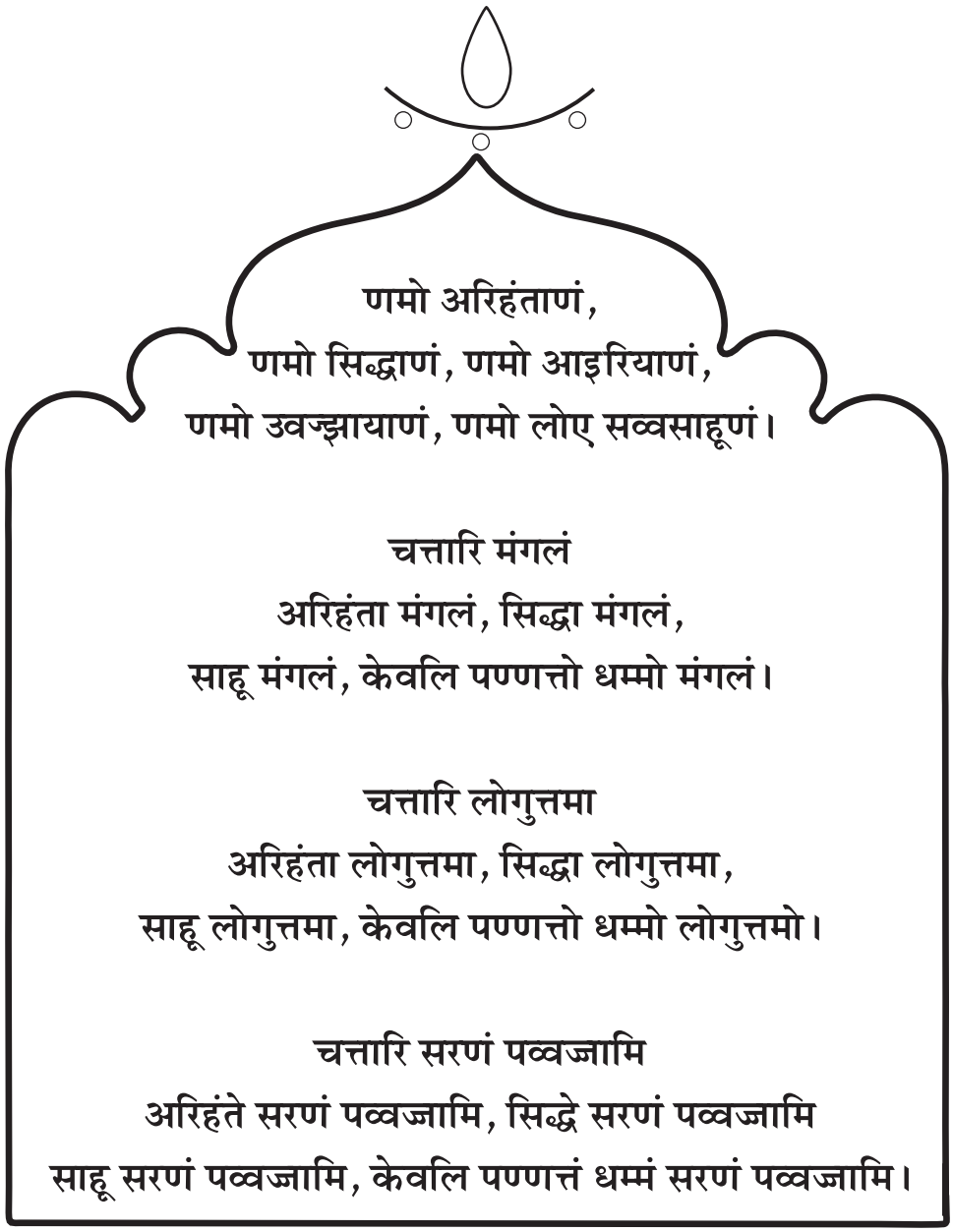

णमो अरिहंताणं,
णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं,
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।

चत्तारि मंगलं
अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं,
साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा
अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा,
साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि
अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि
साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

अध्याय 1.
णमोकार मन्त्र माहात्म्य

जिस मन्त्र को धवला आदि महान सिद्धान्त ग्रन्थों में बड़ी श्रद्धा से मंगलाचरण रूप में रखा गया है और वीरसेन आचार्य महाराज ने जिस मन्त्र को आद्य मंगल रूप कहकर अपूर्व महिमा स्वरूप बतलाया है तथा असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण होने से उसे हर किसी अवस्था में चिन्तन करने की प्रेरणा दी है। ऐसे उस महान अनादि अनिधन रूप णमोकार मन्त्र के रहस्य को सभी भव्यात्माओं के लिए जानना अत्यन्तावश्यक है, अतः परम मंगल स्वरूप पहला अधिकार 'णमोकार मन्त्र माहात्म्य' रखा गया है।

मंगल-पद की व्याख्या

प्रश्न 1. मंगलाचरण किसे कहते हैं?

उत्तर - परम पूज्य पञ्च परमेष्ठी रूप इष्ट देवता के नमस्कार करने को मंगलाचरण कहते हैं।

प्रश्न 2. मंगलाचरण क्यों किया जाता है?

उत्तर - अपने शुभ कार्य की निर्विघ्नतापूर्वक समाप्ति हो इस भावना से मंगलाचरण किया जाता है।

प्रश्न 3. मंगल पद का शाब्दिक अर्थ क्या है?

उत्तर - मंगल पद का शाब्दिक अर्थ शास्त्रों में दो तरह से किया गया है -

1. (मंगल) मं-पापं, गल गालयतीति, मंगलं । अर्थात् जो पापों को गलाये (नष्ट करे) उसे मंगल कहते हैं।

2. (मंगल) मंग, सुखं ल-लातीति मंगलं। अर्थात् जो सुख को लाये या प्राप्त कराये उसे मंगल कहते हैं।

प्रश्न 4. मंगलाचरण करने से शुभ कार्यों की निर्विघ्नतापूर्वक समाप्ति कैसे हो जाती है?

उत्तर - हमारे कार्यों में पाप कर्म की तीव्रता से विघ्न आते हैं, लेकिन जब हम उत्तम भावों के साथ मंगलाचरण करते हैं तब पाप कर्म नष्ट होते हैं और पुण्य कर्म में वृद्धि होती है। इस प्रकार पाप कर्म की शक्ति कमजोर हो जाने से एवं पुण्य कर्म की शक्ति वृद्धि को प्राप्त हो जाने से पाप कर्म की तीव्रता से आने वाले विघ्न दूर हो जाते हैं और हमारे शुभ कार्य निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो जाते हैं।

प्रश्न 5. सभी मंगलों में प्रथम मंगल क्या है?

उत्तर - सभी मंगलों में प्रथम मंगल पञ्च णमोकार मन्त्र है।

प्रश्न 6. पञ्च णमोकार मन्त्र किसे कहते हैं?

उत्तर - ऐसा अनादिनिधन मन्त्र जिसमें पञ्च परमेष्ठियों को नमस्कार किया गया है, उसे पञ्च णमोकार मन्त्र कहते हैं।

प्रश्न 7. णमोकार मन्त्र में कितने पद हैं एवं कितने अक्षर हैं ?

उत्तर - णमोकार मन्त्र में पाँच पद हैं एवं पैंतीस (35) अक्षर हैं।

प्रश्न 8. परमेष्ठी किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो लोक में परम अर्थात् उत्कृष्ट पद में स्थित होते हैं, ऐसे अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु को परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न 9. अरहंत परमेष्ठी किन्हें बोलते हैं ?

उत्तर - जिन्होंने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया है एवं जो क्षुधा इत्यादिक अठारह दोषों से रहित हैं ऐसे वीतरागी सर्वज्ञ को अरहंत परमेष्ठी बोलते हैं।

प्रश्न 10. अरहंत परमेष्ठी के कितने गुण होते हैं एवं उन गुणों के नाम क्या हैं ?

उत्तर - अरहंत परमेष्ठी के जन्म के दश अतिशय सम्बन्धी गुण (जो जीवन पर्यन्त रहते हैं), केवलज्ञान के दश अतिशय सम्बन्धी गुण, देवकृत चौदह अतिशय सम्बन्धी गुण, अष्ट प्रातिहार्यों की प्राप्ति रूप गुण, अनंत चतुष्टय रूप गुण, इस प्रकार सभी मिलाकर छियालीस (46) गुण होते हैं।

जन्म के दश अतिशय सम्बन्धी गुण

1. सौरूप्य - अत्यन्त सुन्दर शरीर होना ।
2. सौरभ - अत्यन्त सुगंधित शरीर रहना ।
3. निःस्वेदत्व -पसीना रहित शरीर रहना ।
4. निर्मलत्व -मल-मूत्र रहित शरीर रहना ।
5. प्रियहितवादित्व - मधुर हित-मित वचन बोलना ।
6. अप्रमित वीर्यत्व - अनन्त वीर्य (बल) होना ।
7. क्षीर गौर रुधिरत्व - दूध के समान धवल रुधिर रहना ।
8. सौलक्षण्य-शरीर पर 1008 शुभ लक्षणों का रहना ।
9. समचतुरस्रसंस्थान-उत्तम आकार का सुडौल सुंदर शरीर होना ।
10. वज्रवृषभनाराचसंहनन -वज्रमय शक्तिशाली शरीर होना।

केवलज्ञान के दश अतिशय सम्बन्धी गुण

1. सुभिक्षता -चार सौ कोस भूमि में सुभिक्षता (दुर्भिक्ष का अभाव) होना।
2. गगन-गमन -अरहंत भगवान का आकाश में गमन होना।
3. अप्राणिवध - अरहंत भगवान के परिकर में हिंसा का अभाव रहना।
4. भुक्ति अभाव - केवली भगवान के कवलाहार (ग्रास रूप या चार प्रकार के आहार) का अभाव रहना।
5. उपसर्ग अभाव-अरहंत के देव, मनुष्य, तिर्यंच और प्रकृति कृत उपसर्ग का अभाव रहना।
6. चतुरास्यत्व-चारों दिशाओं से प्रभु के मुख का दर्शन होना।
7. सर्वविद्येश्वरता -भगवान को सर्व विद्याओं की ईश्वरता (स्वामी-पना) प्राप्त होना।

8. अच्छायत्व - भगवान के शरीर की छाया नहीं पड़ना।
9. अपक्ष्मस्पन्दत्व -भगवान की आँखों की पलकों का न हिलना ।
10. समप्रसिद्ध नख केशत्व-भगवान के नख और केशों का न बढ़ना।

देवकृत चौदह अतिशय रूप गुण

1. सर्वार्धमागधी भाषा- सभी जीवों के कर्णों को अमृत के समान तृप्त करने वाली भाषा का होना।
2. सर्वमैत्री - सम्पूर्ण विरोधी जीवों में भी परस्पर मैत्री भाव उत्पन्न होना।
3. दश दिशि निर्मलता -अँधेरा, धुँआ, धूल इत्यादिक से रहित दशों दिशाओं का निर्मल दिखना ।
4. निर्मल गगन-आकाश मेघ पटलों से रहित रहना (विहार के काल में)।
5. सर्व ऋतु फल पुष्पादि दर्शत्व-वृक्षों में सर्व ऋतुओं के फल पुष्पादि का सुशोभित होना एवं पृथ्वी का सभी प्रकार के धान्यों से परिपूर्ण दिखना ।
6. आदर्शवत् भूमि दर्शत्व - भूमि का मनोज्ञ दर्पणवत् एवं रत्नमय दिखना।
7. स्वर्ण कमल रचना -भगवान के विहार के समय चरणों के नीचे सुवर्ण मय सुन्दर कमलों की रचना होना।
8. जय-जय ध्वनि -आकाश में जय-जय-कार की ध्वनि गुंजायमान होना।
9. मन्द सुगंधित वायु प्रवाह -प्रभु का विहार जिस ओर होना है, उस ओर मंद-मंद सुगन्धित वायु बहना।
10. गन्धोदक वृष्टि - देवों द्वारा सुगन्धित जल की वृष्टि होना।
11. भूतल निर्मलता-भूतल का तृण कण्टक, कीटक इत्यादिक से रहित निर्मल होना।
12. सर्वजन परमानंद-सभी जीवों को परमानंद की प्राप्ति होना।
13. अग्रगामी धर्मचक्र -भगवान के आगे सूर्य से भी अधिक दैदीप्यमान एक हजार आरों वाला धर्मचक्र चलना ।
14. अष्ट मंगल द्रव्य सुशोभा -भगवान के सामने 1. स्वस्तिक 2. कलश 3. ध्वजा 4. चँवर 5. भृंगार (झारी) 6. दर्पण 7. पंखा और 8. छत्र, इस प्रकार अष्ट मंगल द्रव्यों का सुशोभित होना ।

अष्ट प्रातिहार्यों की प्राप्ति रूप गुण

1. अशोक वृक्ष-शोक निवारक हरी-भरी नम्रीभूत शाखाओं से युक्त भगवान के ऊपर अशोक वृक्ष सुशोभित होना ।
2. रत्नजड़ित सिंहासन -भगवान के नीचे रत्नजड़ित सिंहासन का होना ।
3. छत्रत्रय-चंद्र की काँति के समान प्रभु के ऊपर तीन छत्रों का शोभायमान रहना ।

4. प्रभामंडल-जीवों के त्रिकाल सम्बन्धी सात-सात भवों को दर्शाने वाले ऐसे अमृत के सागर सदृश निर्मल एवं मंगल स्वरूप दर्पण के समान प्रभामंडल से युक्त भगवान का अतिशय सुन्दर दिखना ।
5. चँवर-कटक- कटि सूत्र कुण्डलादि अलंकारों से युक्त विनम्रीभूत देवों द्वारा, आजू-बाजू से भगवान के ऊपर चौंसठ चँवर ढुराये जाना।
6. दिव्यध्वनि-गंभीर, भव्य जीवों के कर्णों को अत्यंत प्रिय, जिनेन्द्र देव की दिव्यध्वनि खिरना (निकलना)।
7. दिव्य पुष्प वृष्टि- भगवान के आजू-बाजू, ऊपर आकाश से देवोपुनीत पुष्पों की वृष्टि होना।
8. देव दुन्दुभि -चित्त को आनंदित करने वाला आकाश में देवों द्वारा दुन्दुभि का सुंदर शब्द होना-(बजना)।

चार अनन्त चतुष्टय रूप गुण

1. अनन्त ज्ञान-ज्ञानावरण कर्म का अभाव (क्षय) हो जाने से भगवान को लोकालोक को जानने वाले अनन्तज्ञान की प्राप्ति होना।
2. अनन्त दर्शन-दर्शनावरण कर्म के क्षय से अनन्त दर्शन की प्राप्ति होना।
3. अनन्त वीर्य -वीर्यांतराय कर्म के क्षय से अनन्त शक्ति प्राप्त होना।
4. अनन्त सुख -मोहनीय कर्म के क्षय से अनन्त सुख प्राप्त होना।

प्रश्न 11. सिद्ध परमेष्ठी किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - जो अष्ट कर्मों से रहित हैं, अरूपी हैं एवं सिद्धालय में विराजमान हैं, उन्हें सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं ।

प्रश्न 12. सिद्ध परमेष्ठी के कितने गुण होते हैं एवं उनके गुणों के नाम क्या हैं ?

उत्तर - सिद्ध परमेष्ठी के आठ गुण होते हैं ।

1. सम्यक्त्व 2. ज्ञान 3. दर्शन 4. वीर्य 5. सूक्ष्मत्व 6. अवगाहनत्व 7. अगुरुलघुत्व और 8. अव्याबाधत्व।

प्रश्न 13. आचार्य परमेष्ठी किन्हें समझना चाहिए ?

उत्तर - जो पञ्चाचारों का (मुनियों के अट्ठाईस मूलगुणों के साथ) निर्दोष पालन करते हों, तीन गुप्तियों को धारण करते हों तथा जो (मुनि इत्यादिक) शिष्यों को दीक्षा-शिक्षा देते हों, उन्हें आचार्य परमेष्ठी समझना चाहिए।

प्रश्न 14. आचार्य परमेष्ठी के कितने गुण होते हैं एवं वे कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - आचार्य के बारह तप, षट् आवश्यक, पंचाचार, दशधर्म और तीन गुप्तियाँ ऐसे छत्तीस मूलगुण होते हैं ।

बारह तप- 1. अनशन (उपवास), 2. अवमौदर्य, 3. वृत्तिपरिसंख्यान, 4. रसपरित्याग, 5. विविक्तशय्यासन, 6. कायक्लेश, 7. प्रायश्चित्त, 8. विनय, 9. वैयावृत्य, 10. स्वाध्याय, 11. व्युत्सर्ग, और 12. ध्यान ।

षट् आवश्यक 1. सामायिक, 2. स्तुति, 3. वंदना, 4. प्रतिक्रमण, 5. प्रत्याख्यान और, 6.कायोत्सर्ग ।

पंचाचार 1. ज्ञानाचार, 2. दर्शनाचार, 3. चारित्राचार, 4. तपाचार और 5. वीर्याचार ।

दस धर्म 1. उत्तम क्षमा 2. उत्तम मार्दव 3. उत्तम आर्जव 4. उत्तम शौच 5. उत्तम सत्य 6. उत्तम संयम 7. उत्तम तप 8. उत्तम त्याग 9. उत्तम आकिञ्चन्य और 10. उत्तम ब्रह्मचर्य ।

त्रिगुप्ति 1. मनोगुप्ति 2. वचनगुप्ति और 3. कायगुप्ति ।

प्रश्न 15. उपाध्याय परमेष्ठी कौन कहलाते हैं ?

उत्तर - जो मुनियों के अट्ठाईस मूलगुणों के निर्दोष पालन के साथ ग्यारह अंग तथा चौदह पूर्वों का ज्ञान रखते हैं, वे उपाध्याय परमेष्ठी कहे जाते हैं ।

प्रश्न 16. उपाध्याय परमेष्ठी के कितने गुण होते हैं एवं उन गुणों के नाम क्या हैं ?

उत्तर - उपाध्याय परमेष्ठी के पच्चीस गुण होते हैं ।

ग्यारह अंग-1.आचाराङ्ग 2. सूत्रकृताङ्ग 3. स्थानाङ्ग 4. समवायाङ्ग 5. व्याख्याप्रज्ञप्तिअङ्ग 6.धर्मकथाङ्ग 7. उपासकाध्ययनाङ्ग 8. अन्तकृद्दशाङ्ग 9. अनुत्तरौपपादिकदशाङ्ग10. प्रश्नव्याकरणाङ्ग और 11. विपाक सूत्राङ्ग ।

चौदह पूर्व- 1.उत्पादपूर्व 2. अग्रायणीयपूर्व 3. वीर्यानुवादपूर्व 4. अस्तिनास्ति पूर्व 5. ज्ञानप्रवादपूर्व 6. सत्यप्रवादपूर्व 7. आत्मप्रवादपूर्व 8. कर्मप्रवादपूर्व 9. प्रत्याख्यानपूर्व 10. विद्यानुप्रवाद-पूर्व 11. कल्याणवादपूर्व 12. प्राणवादपूर्व 13. क्रियाविशालपूर्व और 14. लोकबिन्दुसारपूर्व ।

प्रश्न 17. साधु परमेष्ठी किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - जो दिगम्बर मुनि पाँच इन्द्रियों के विषयों के त्यागी हैं, आरम्भ और परिग्रह से रहित हैं एवं ज्ञान-ध्यान तपस्या में लीन रहते हैं, उन्हें साधु परमेष्ठी कहते हैं ।

प्रश्न 18. साधु परमेष्ठी के कितने गुण होते हैं एवं गुणों के नाम क्या हैं ?

उत्तर - साधु परमेष्ठी के अट्ठाईस मूलगुण होते हैं -

पञ्च महाव्रत - 1. अहिंसा महाव्रत 2. सत्य महाव्रत 3. अचौर्य महाव्रत 4. ब्रह्मचर्य महाव्रत और 5. अपरिग्रह महाव्रत । **पञ्च इन्द्रिय निरोध**- 1. स्पर्शनेन्द्रिय निरोध 2. रसनेन्द्रिय निरोध 3. घ्राणेन्द्रिय निरोध 4. चक्षु इन्द्रिय निरोध और 5. कर्णेन्द्रिय निरोध। **पञ्च समिति**-1. ईर्या समिति 2. भाषासमिति 3. एषणासमिति 4. आदाननिक्षेपण समिति 5. प्रतिष्ठापनसमिति ।

षट् आवश्यक -1. सामायिक 2. चतुर्विंशति स्तवन 3. वन्दना 4. प्रतिक्रमण 5. प्रत्याख्यान और

6. कायोत्सर्ग। **शेष सात गुण**- 1. केशलोंच 2. अचेलक्य (नग्नत्व) 3. अस्नान 4. भूशयन 5. अदन्तधावन 6. स्थितिभोजन और 7. एक भुक्ति।

प्रश्न 19. अष्ट कर्मों से रहित सिद्ध परमेष्ठी तो गुणों की अपेक्षा सबसे बड़े कहे गए हैं फिर यहाँ णमोकार मंत्र में सिद्ध परमेष्ठी के पहले अरहंत परमेष्ठी को नमस्कार क्यों किया?

उत्तर - अरहंत परमेष्ठी अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा भव्य जीवों को कल्याण का मार्ग बताते हैं एवं शरीर सहित वीतराग भगवान अवस्था में हमारे दर्शन के आधार स्वरूप हैं इसलिए णमोकार मन्त्र में सिद्ध परमेष्ठी के पहले अरहंत परमेष्ठी को नमस्कार किया गया है।

प्रश्न 20. सर्वज्ञ कौन कहलाता है?

उत्तर - जो लोक-अलोक को व सर्व द्रव्य और उनकी, भूत और भविष्यत काल की अनन्त पर्यायों तथा वर्तमान काल की सर्व पर्यायों को युगपत् एक साथ जानता है, वह सर्वज्ञ कहलाता है।

प्रश्न 21. लोक (जगत्) में कितने मंगल हैं, कितने उत्तम हैं और कितने शरण हैं?

उत्तर - लोक में अरहंत, सिद्ध, साधु परमेष्ठी एवं केवली प्रणीत धर्म (शास्त्र) ये चार ही मंगल हैं, चार ही उत्तम हैं और चार ही शरण हैं ।

प्रश्न 22. पञ्च परमेष्ठियों में कितने परमेष्ठियों की देव संज्ञा है एवं कितने परमेष्ठियों की गुरु संज्ञा है?

उत्तर - पञ्च परमेष्ठियों में अरहंत एवं सिद्ध इन दो परमेष्ठियों की देव संज्ञा है तथा आचार्य, उपाध्याय एवं साधु इन तीन परमेष्ठियों की गुरुसंज्ञा है।

प्रश्न 23. अरहंत प्रतिमा की पहचान क्या है?

उत्तर - अरहंत प्रतिमा की पहचान अष्ट प्रातिहार्य एवं वीतरागता (निर्ग्रन्थता) है।

प्रश्न 24. दिगम्बर गुरुकी बाह्य पहचान क्या है?

उत्तर - दिगम्बर गुरु की बाह्य पहचान नग्नता, केशलुञ्चन, पिच्छी कमण्डलु और निष्परिग्रहता है ।

प्रश्न 25. अरहंत परमेष्ठी आहार (कवलाहार) ग्रहण करते हैं क्या?

उत्तर - अरहंत परमेष्ठी अठारह (18) दोषों से रहित केवली होते हैं, उन्हें क्षुधा (भूख) नहीं लगती इसलिए वे कभी आहार (कवलाहार) ग्रहण नहीं करते।

प्रश्न 26. क्या प्रत्येक मानव पञ्च परमेष्ठी का पद प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - हाँ, जो भव्य मानव संसार का (पञ्च पापों का) परित्याग करता है, वह अवश्य पञ्च परमेष्ठी का पद प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न 27. णमोकार मन्त्र का माहात्म्य क्या है?

उत्तर - णमोकार मन्त्र के माहात्म्य के सम्बन्ध में आचार्यों ने कहा है कि -

एसो पञ्च णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होइ मंगलं ॥

अर्थ-यह पञ्च णमोकार मन्त्र (नमस्कार मन्त्र) सभी पापों (अशुभ कर्मों) का क्षय करने वाला है एवं सभी मंगलों में प्रथम मंगल है।

मूलाचार शास्त्र में भी कहा गया है कि –

अरहंता णमोक्कारं, भावेण य जो करेदी पयदमदी ।
सो सव्व दुक्ख मोक्खं, पावदि अचिरेण कालेण ॥ 506 ॥

अर्थ-जो प्रयत्नवान भव्य जीव भावपूर्वक अरहंत को नमस्कार करता है, वह अतिशीघ्र समस्त दु:खों से मुक्त हो जाता है।

प्रश्न 28. णमोकार मन्त्र के चिंतन करने के लिये क्या कोई समय का बंधन है ?

उत्तर – नहीं, श्री धवला ग्रन्थ में कहा है कि इस आद्य मंगल रूप णमोकार मन्त्र के चिन्तन करने को कोई समय का बंधन नहीं, णमोकार मन्त्र का चिन्तन खाते-पीते, उठते-बैठते, चलते-फिरते और स्वस्थ-अस्वस्थ इत्यादिक किसी भी अवस्था में प्रसन्नता के साथ किया जा सकता है।

प्रश्न 29. अरहंत, अरिहंत और अरुहंत का अर्थ क्या है ?

उत्तर – अरहंत का अर्थ है – पूजा के योग्य।

अरिहंत का अर्थ है – कर्म शत्रुओं का नाश करने वाले।

अरुहंत का अर्थ है – जिनका अब पुन: इस संसार में जन्म नहीं होगा।

प्रश्न 30. ऐसे मंगलाक्षर का नाम बताओ जिसमें पञ्च परमेष्ठी समाहित हैं?

उत्तर – ओं (ओम्) इस मंगलाक्षर में पञ्च परमेष्ठी समाहित हैं।

प्रश्न 31. 'ओं' इस मंगलाक्षर में पञ्च परमेष्ठी समाहित कैसे हैं, व्याकरण के अनुसार सिद्ध करके बतलाइये ?

उत्तर – 'ओं' यह मंगलाक्षर, व्याकरण के अनुसार संधि होकर सिद्ध हुआ है जिसमें, प्रथम अक्षरों के रूप में

अरिहंत परमेष्ठी का	–	अ	अ +अ+ आ+ उ+ म् = ओम् (ओं)
सिद्ध (अशरीरी) परमेष्ठी का	–	अ	
आचार्य परमेष्ठी का	–	आ	
उपाध्याय परमेष्ठी का	–	उ	
साधु (मुनि) परमेष्ठी का	–	म्	

ऊपर जो ऐसे प्रथम-प्रथम अक्षर लिए गए हैं, जैनाचार्य रचित 'कातन्त्रव्याकरण' के 24वें सूत्र- 'समानः सवर्णे दीर्घी भवति परश्चलोपम्' के अनुसार समान संज्ञक वर्ण, उसी समान वर्ण के सामने आने पर दीर्घ हो जाता है। यहाँ अशरीरी का प्रथम अक्षर 'अ' इस समान संज्ञक वर्ण के सामने अरहंत एवं आचार्य के प्रथम अक्षर 'अ', 'आ' के आने से वह दीर्घ हो गया और बाद वाले 'अ' 'आ' का लोप हो गया, और 'आ' यह रूप रहा अब इसके सामने उपाध्याय का 'उ' एवं मुनि का 'म् ' अक्षर है, इनमें भी कातन्त्र व्याकरण का 30 वाँ ''उवर्णे ओ'' सूत्र लगता है जिसका अर्थ है कि – अवर्ण के सामने 'उ' वर्ण आने पर अवर्ण का 'ओ' हो

जाता है और पर अर्थात् 'उ' वर्ण का लोप हो जाता है। इसलिए 'आ' वर्ण का 'ओ' हो गया और 'उ' वर्ण का लोप हो गया अब 'ओ' के सामने केवल 'म्' रहा। 'ओ' एवं 'म्' दोनों की संधि कर देने पर 'ओम्' बना तथा कातन्त्र व्याकरण के 92वें सूत्र 'विरामे वा' से ओम् के 'म्' का अनुस्वार हो गया तब पञ्च परमेष्ठी का वाचक ओं यह मंगलाक्षर सिद्ध हो गया। जिसे बीजाक्षर के रूप में 'ॐ' ऐसा लिखा जाता है।

पञ्च परमेष्ठी के वाचक इस ओं (ॐ) मंगलाक्षर के सम्बन्ध में हमारे शास्त्रों में एक प्राचीन गाथा भी उपलब्ध होती है :-

अरहंता असरीरा आइरिया तह उवज्झाया मुणिणो ।
पढमक्खर णिप्पणो ओंकारो पञ्च परमेट्ठी ॥

अर्थ -अरहंत, अशरीरी, आचार्य, उपाध्याय एवं मुनि के प्रथम अक्षरों से पंच परमेष्ठी का वाचक ओंकार निष्पन्न (बना) हुआ है।

प्रश्न 32. णमोकार मन्त्र के सुनने से कौन किसके द्वारा सुगति को प्राप्त हुआ? कोई उदाहरण दीजिए?

उत्तर - एक कुत्ता, जीवन्धर कुमार द्वारा णमोकार मन्त्र सुनने से देवगति को प्राप्त हुआ।

प्रश्न 33. णमोकार मन्त्र की अविनय करने से कौन दुर्गति को प्राप्त हुआ?

उत्तर - णमोकार मंत्र को लिखकर उसे पैर द्वारा मिटाने से सुभौम चक्रवर्ती नरक गति को प्राप्त हुआ ।

प्रश्न 34. णमोकार मन्त्र की अटूट श्रद्धा से एवं णमोकार मन्त्र के माहात्म्य से किसने आकाश गामिनी विद्या सिद्ध की और बाद में मुक्ति पद को प्राप्त किया?

उत्तर - णमोकार मन्त्र की अटूट श्रद्धा से एवं णमोकार मन्त्र के माहात्म्य से अंजनचोर ने आकाश गामिनी विद्या सिद्ध की एवं बाद में मुनि पद को धारण कर, निरंजन बन, मुक्ति पद को प्राप्त किया।

प्रश्न 35. ढाईद्वीप में उत्कृष्ट रूप से छठे से चौदहवे गुणस्थान में स्थित रहने वाले तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों की संख्या में कौन -कौन से परमेष्ठी ग्रहण किए जाते हैं?

उत्तर - ढाईद्वीप में उत्कृष्ट रूप से छठे से चौदहवे गुणस्थान में स्थित रहने वाले तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों में सामान्य रूप से अरहंत, आचार्य, उपाध्याय और साधु ये चार परमेष्ठी ग्रहण किए जाते हैं ।

प्रश्न 36. तीन कम नौ करोड़ मुनिराजों की संख्या में अरहंत आचार्य और उपाध्याय परमेष्ठी को क्यों ग्रहण किया गया?

उत्तर - क्योंकि अरहंत, आचार्य और उपाध्याय ये तीन परमेष्ठी भी मुनियों, जैसे- महाव्रत, नग्नत्व इत्यादिक गुणों के धारक होते हैं, इसलिए सामान्य कथन करते समय इन तीन परमेष्ठियों को भी मुनि कहा जाता है और विशेष कथन के समय इन्हें विशिष्ट गुणवाचक अरहंत, आचार्य आदि पदवियों के साथ पुकारा जाता है तथा आगे इन परमेष्ठियों को, सभी पदवियों से रहित मुनि (साधु) अवस्था से ही अष्ट कर्मों से मुक्ति प्राप्त होती है ।

अध्याय 2.
तीर्थङ्कर दिग्दर्शन

असंख्य भव्यात्माओं के कल्याण स्वरूप उन तीर्थङ्कर प्रभु के जीवन दर्शन की पहचान के बिना या उसकी भावना भाए बिना हमें उस समवसरण जैसी उत्तम कल्याणकारी विभूति एवं पंचकल्याणक की महिमा का दर्शन कैसे होगा ? इसलिए यहाँ दूसरा अध्याय 'तीर्थङ्कर दिग्दर्शन' नाम से लिखा गया है।

प्रश्न 1. तीर्थङ्कर किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - तीर्थङ्कर प्रकृति नाम कर्म के प्रभाव से जिनके कल्याणक होते हैं एवं जिन केवली भगवान के समवसरण की रचना होती है, ऐसे धर्म तीर्थ के प्रवर्तक को तीर्थङ्कर कहते हैं।

प्रश्न 2. सामान्य अरहंत और तीर्थङ्कर अरहंत में क्या अंतर है ?

उत्तर - सामान्य अरहंत और तीर्थङ्कर अरहंत में अनन्तचतुष्टयादि मुख्य गुणों की अपेक्षा कोई अंतर नहीं, लेकिन सामान्य अरहंत के कल्याणक नहीं होते एवं समवसरण की रचना नहीं होती । और तीर्थङ्कर अरहंत के विशिष्ट पुण्य रूप तीर्थङ्कर प्रकृति के कारण कल्याणक होते हैं एवं समवसरण की रचना होती है ।

प्रश्न 3. कल्याणक किसे बोलते हैं ?

उत्तर - जिसमें देवेन्द्र आ करके रत्न-वृष्टि, जन्माभिषेक एवं विशेष पूजादि उत्सव करते हैं उसे कल्याणक बोलते हैं।

प्रश्न 4. कल्याणक कितने होते हैं एवं कल्याणकों के नाम क्या हैं ?

उत्तर - कल्याणक पाँच होते हैं -1. गर्भ कल्याणक 2. जन्म कल्याणक 3. दीक्षा कल्याणक 4. केवलज्ञान कल्याणक और 5. मोक्ष कल्याणक।

प्रश्न 5. तीर्थङ्कर के होने वाले गर्भ कल्याणक के प्रसंग का संक्षिप्त वर्णन कीजिए ?

उत्तर - तीर्थङ्कर बनने वाला जीव जब सुकुलोत्पन्न माता के गर्भ में आने वाला होता है, तब उसके छह महीने पहले से सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेरादि देवगण स्वर्ग से नीचे आकर नगर को रत्न तोरण आदि द्वारा उत्तम रीति से सजाते हैं एवं तीर्थङ्कर की माता के आँगन में प्रतिदिन चार बार साढ़े तीन-साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा करते हैं ।

शुभ मुहूर्त में एक दिन जब तीर्थङ्कर की माता रात्रि के पिछले पहर में सोलह स्वप्नों को देखती हैं एवं अपने पतिदेव से स्वप्नों का फल पूछती है और पतिदेव राजन् से यह सुनकर कि तीर्थङ्कर का जीव तुम्हारे गर्भ में आ चुका है, अत्यन्त हर्षित होती है ।

स्वर्ग से आए हुए सौधर्म इन्द्रादि देव तीर्थङ्कर के माता-पिता का आदर एवं उत्तम-उत्तम वस्त्राभूषण रूप उपकरणों से बड़ा सम्मान करते हैं एवं तीर्थङ्कर की माता की सेवा हेतु अनेक देवियों को नियुक्त कर स्वर्ग की ओर प्रस्थान कर जाते हैं ।

प्रश्न 6. तीर्थङ्कर के होने वाले जन्म कल्याणक के प्रसंग का संक्षेप में वर्णन कीजिए ?

उत्तर - जिस समय तीर्थङ्कर बालक का जन्म होता है, उस समय सौधर्म इन्द्रादिक देवों के आसन स्वयमेव कंपित हो जाते हैं एवं मधुर वाद्य बजने लग जाते हैं। सभी देव अपने अवधिज्ञान से तीर्थङ्कर के जन्म का ज्ञान कर उसी समय मुकुट झुका कर उन्हें परोक्ष में प्रणाम करते हैं एवं सपरिवार बड़े वैभव के साथ चारों निकाय (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक) के देव तीर्थङ्कर भगवान की जन्म-स्थली की ओर गमन करते हैं।

सौधर्म इन्द्र अपनी इन्द्राणी (शचि) सहित ऐरावत हाथी पर सवार होकर ऊपर स्वर्ग से आता हुआ, ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सूर्य ही पृथ्वी पर नीचे उतर रहा हो। तीर्थङ्कर की जन्म नगरी में आकर इन्द्र नगर की तीन प्रदक्षिणा देता है एवं इन्द्राणी तीर्थङ्कर की माता को थोड़ा भी कष्ट न देते हुए गुप्त रीति से तीर्थङ्कर बालक को उठाकर और मायामयी बालक को वहाँ सुलाकर उन तीर्थङ्कर बालक को सौधर्म इन्द्र को सौंप देती है ।

सौधर्म इन्द्र उस बालक को ऐरावत हाथी पर बैठाकर सपरिवार मनोहर वाद्यों की ध्वनि एवं नृत्य गान के साथ सुमेरु पर्वत पर ले जाता है और वहाँ पाण्डुक शिला के उत्तम सिंहासन पर बैठाकर तीर्थङ्कर बालक का देवों द्वारा क्षीरसागर के जल से भर-भर कर लाए गए एक हजार आठ स्वर्णमयी, रत्नमयी उत्तम कलशों द्वारा सौधर्म इन्द्र अपने परिचारक देवों के साथ जन्माभिषेक करता है ।

जन्माभिषेक को देखती हुई अप्सराएं (देवियां) मंगल नृत्य गान करती हैं। तीर्थङ्कर बालक के उत्कृष्ट सुन्दर रूप को अपनी दो आँखों से देखता हुआ इन्द्र जब संतुष्टि को प्राप्त नहीं होता तब हजार नेत्र बना कर उनको देखता है और बड़े संतोष को प्राप्त होता है ।

जन्माभिषेक होने के उपरांत सौधर्म इन्द्र से इन्द्राणी उस तीर्थङ्कर बालक को लेकर वस्त्रालङ्कारों से विभूषित करती है फिर इन्द्र उसका नाम एवं चिह्न निश्चित कर माता-पिता को समर्पित कर देता है। तथा भगवान के अंतिम जन्म की खुशी में ताण्डव नृत्य करता है और तीर्थङ्कर बालक की सुरक्षा एवं मनोरंजन हेतु देवों को नियुक्त कर बड़े आनंद का अनुभव करता हुआ स्वर्ग चला जाता है ।

प्रश्न 7. तीर्थङ्कर प्रभु के होने वाले दीक्षा कल्याणक के प्रसंग का संक्षिप्त वर्णन कीजिये ?

उत्तर - किसी विशेष निमित्त द्वारा संसार की असारता जानकर तीर्थङ्कर कुमार जब वैराग्य को प्राप्त होते हैं तब उसी समय पंचम स्वर्ग में रहने वाले लौकान्तिक देव वहाँ तीर्थङ्कर कुमार के निकट जाकर 'आप महान् हैं', 'आप धन्य हैं' इत्यादिक रूप उत्कृष्ट शब्दों में स्तुतियां करते हुए तीर्थङ्कर प्रभु के वैराग्य की बहुत सराहना करते हैं और तत्पश्चात् अपने स्वस्थान की ओर लौट

आते हैं। देवों द्वारा निर्मित उत्तम रत्नमयी पालकी में तीर्थङ्कर कुमार सवार होते हैं और उस पालकी को पहले मनुष्य, फिर मनुष्यों में श्रेष्ठ विद्याधर कुछ दूर तक आगे ले जाते हैं,तथा आगे सौधर्म इन्द्रादिक देव गण उस उत्तम पालकी को उठाकर जंगल तक पहुँचाते हैं ।

जंगल में पहुँचकर तीर्थङ्कर प्रभु श्रेष्ठ शिला पर विराजमान हो समस्त वस्त्राभूषण त्यागकर 'नमः सिद्धेभ्यः' बोलकर पंचमुट्ठी केशलोंच करते हैं एवं परम नग्न दिगम्बर मुनि बन आत्मध्यान में लीन हो जाते हैं। सौधर्म इन्द्रादि देवगण उन परम वैरागी तीर्थङ्कर महामुनि की अनेक स्तुतियां एवं पूजा कर अपने स्वर्ग की ओर प्रस्थान करते हैं।

प्रश्न 8. तीर्थङ्कर प्रभु के होने वाले ज्ञान कल्याणक के प्रसंग का संक्षेप में वर्णन कीजिये ?

उत्तर - घोर तपश्चर्या (आगमानुसार आहार चर्या, सामायिक आदि) करते हुए तीर्थङ्कर प्रभु जब ध्यान के समय क्षपक श्रेणी में पहुँचकर शुक्लध्यान में लीन हो जाते हैं तब चार घातिया कर्मों का क्षयकर केवलज्ञान की प्राप्ति कर लेते हैं। जिनके केवलज्ञान में लोकालोक एवं लोक के सारे द्रव्य अपने गुण तथा त्रैकालिक पर्यायों सहित युगपत झलकने लग जाते हैं ।

सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर (एक विमानवासी देव) सात प्रकार की भूमियों एवं बारह सभाओं आदि से युक्त आश्चर्यकारी सुंदर समवसरण की रचना करता है। उस समय सारे देवेन्द्रों के समूह समवसरण में स्थित तीर्थङ्कर भगवान की बड़े वैभव के साथ महापूजा करते हैं।

समवसरण में मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविकाएं, संज्ञी तिर्यञ्च प्राणी एवं चतुर्निकाय के देव-देवियां उपस्थित होते हैं। अठारह महाभाषाओं एवं सात सौ लघुभाषाओं में खिरने वाली भगवान की कल्याणकारी मंगल ध्वनि समवसरण में स्थित सभी लोगों को अत्यन्त संतुष्ट करती है। भगवान की कल्याणकारी वाणी सुनकर अनेक सम्यग्दृष्टि जीव संयम धारण कर मोक्ष पुरुषार्थ में संलग्न होते हैं ।

भगवान के मंगल विहार के समय देवगण भगवान के चरणों के नीचे आकाश में 225 स्वर्णमय सहस्त्रदल कमलों की रचना करते हैं। ऋद्धियों से सम्पन्न केवली भगवान का शरीर जमीन एवं कमलों से ऊपर आकाश में चन्द्रमण्डल के समान सुशोभित होता है ।

प्रश्न 9. तीर्थङ्कर भगवान के होने वाले मोक्ष कल्याणक के प्रसंग का संक्षेप में वर्णन कीजिए ?

उत्तर - अपने क्षायिक केवलज्ञान द्वारा भगवान जब अपनी आयु की समाप्ति का अवसर जान लेते हैं तब समवसरण को छोड़कर जंगल में योगों की प्रवृत्ति रोककर परम शुक्लध्यान में लीन हो जाते हैं एवं शुक्लध्यान रूपी अग्नि द्वारा भगवान चार अघातिया कर्मों को भी समाप्त कर (क्षयकर) सम्पूर्ण कर्मों से मुक्त हो जाते हैं। उनकी आत्मा दूध से घी के सदृश परम शुद्ध बनकर एक समय में ही लोक के ऊपर अग्रभाग में स्थित सिद्धशिला से ऊपर जाकर अंतिम देह से किंचित् न्यून होकर अनन्त काल तक के लिये विराजमान हो जाती है।

भगवान का शरीर कपूर की भांति आकाश में बिखर जाता है एवं शेष रहे उनके नख और केशों का अग्निकुमार देव द्वारा अपने मुकुट से अग्नि प्रज्वलित कर अग्नि संस्कार किया जाता है।

भगवान के मोक्ष प्राप्ति के ऐसे मंगल क्षण में पुण्यशाली देवों के समूह उन अनन्त ज्ञानादि गुणों से सम्पन्न सिद्ध परमेष्ठी भगवान की बड़ी उत्तम रीति से पूजन, भक्ति करते हैं तथा अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली एवं धन्य मानते हैं।

प्रश्न 10. यहाँ भरत क्षेत्र के प्रत्येक चतुर्थ काल में कितने तीर्थङ्कर होते हैं?

उत्तर - यहाँ भरत क्षेत्र के प्रत्येक चतुर्थ काल में चौबीस-चौबीस तीर्थङ्कर होते हैं।

प्रश्न 11. वर्तमान काल सम्बन्धी भरत क्षेत्र के वृषभादि चौबीस तीर्थङ्करों के क्रमशः नाम सहित उनके पंच कल्याणकों की तिथियों के नाम लिखिए?

उत्तर-

क्र.	तीर्थङ्कर नाम	गर्भ कल्याणक	जन्म कल्याणक
1.	ऋषभनाथ जी	आषाढ़ कृष्णा 2	चैत्र कृष्णा 9
2.	अजितनाथ जी	ज्येष्ठ कृष्णा 15	माघ शुक्ला 10
3.	सम्भवनाथ जी	फाल्गुन शुक्ला 8	कार्तिक शुक्ला 15
4.	अभिनन्दननाथजी	वैशाख शुक्ला 6	माघ शुक्ला 12
5.	सुमतिनाथ जी	श्रावण शुक्ला 2	चैत्र शुक्ला 11
6.	पद्मप्रभ जी	माघ कृष्णा 6	कार्तिक कृष्णा 13
7.	सुपार्श्वनाथ जी	भाद्र शुक्ला 6	ज्येष्ठ शुक्ला 12
8.	चन्द्रप्रभ जी	चैत्र कृष्णा 5	पौष कृष्णा 11
9.	पुष्पदन्तनाथ जी	फाल्गुन कृष्णा 9	मगसिर शुक्ला 1
10.	शीतलनाथ जी	चैत्र कृष्णा 8	माघ कृष्णा 12
11.	श्रेयांसनाथ जी	ज्येष्ठ कृष्णा 6	फाल्गुन कृष्णा 11
12.	वासुपूज्यनाथ जी	आषाढ़ कृष्णा 6	फाल्गुन कृष्णा 14
13.	विमलनाथ जी	ज्येष्ठ कृष्णा 10	माघ शुक्ला 4
14.	अनन्तनाथ जी	कार्तिक कृष्णा 1	ज्येष्ठ कृष्णा 12
15.	धर्मनाथ जी	वैशाख शुक्ला 13	माघ शुक्ला 13
16.	शांतिनाथ जी	भाद्र कृष्णा 7	ज्येष्ठ कृष्णा 14
17.	कुन्थुनाथ जी	श्रावण कृष्णा 10	वैशाख शुक्ला 1
18.	अरनाथ जी	फाल्गुन कृष्णा 3	मगसिर शुक्ला 14
19.	मल्लिनाथ जी	चैत्र शुक्ला 1	मगसिर शुक्ला 11
20.	मुनिसुव्रतनाथ जी	श्रावण कृष्णा 2	वैशाख कृष्णा 10
21.	नमिनाथ जी	आश्विन कृष्णा 2	आषाढ़ कृष्णा 10
22.	नेमिनाथ जी	कार्तिक शुक्ला 6	श्रावण शुक्ला 6
23.	पार्श्वनाथ जी	वैशाख कृष्णा 2	पौष कृष्णा 11
24.	महावीरस्वामी	आषाढ़ शुक्ला 6	चैत्र शुक्ला 13

क्र.	तप कल्याणक	ज्ञान कल्याणक	मोक्ष कल्याणक
1.	चैत्र कृष्णा 9	फाल्गुन कृष्णा 11	माघ कृष्णा 14
2.	माघ शुक्ला 9	पौष शुक्ला 11	चैत्र शुक्ला 5
3.	मगसिर शुक्ला 15	कार्तिक कृष्णा 4	चैत्र शुक्ला 6
4.	माघ शुक्ला 12	पौष शुक्ला 14	वैशाख शुक्ला 6
5.	वैशाख शुक्ला 9	चैत्र शुक्ला 11	चैत्र शुक्ला 11
6.	कार्तिक कृष्णा13	चैत्र शुक्ला 15	फाल्गुन कृष्णा 4
7.	ज्येष्ठ शुक्ला 12	फाल्गुन कृष्णा 6	फाल्गुन कृष्णा 7
8.	पौष कृष्णा 11	फाल्गुन कृष्णा 7	फाल्गुन कृष्णा 7
9.	मगसिर शुक्ला 1	कार्तिक शुक्ला 2	भाद्र शुक्ला 8
10.	माघ कृष्णा 12	पौष कृष्णा 14	आश्विन शुक्ला8
11.	फाल्गुन कृष्णा 11	माघ कृष्णा 15	श्रावण शुक्ला 15
12.	फाल्गुन कृष्णा 14	माघ शुक्ला 2	भाद्र शुक्ला 14
13.	माघ शुक्ला 4	माघ शुक्ला 6	आषाढ़ कृष्णा 8
14.	ज्येष्ठ कृष्णा 12	चैत्र कृष्णा 15	चैत्र कृष्णा 15
15.	माघ शुक्ला 13	पौष शुक्ला 15	ज्येष्ठ शुक्ला 4
16.	ज्येष्ठ कृष्णा 14	पौष शुक्ला 10	ज्येष्ठ कृष्णा 14
17.	वैशाख शुक्ला 1	चैत्र शुक्ला 3	वैशाख शुक्ला 1
18.	मगसिर शुक्ला 10	कार्तिक शुक्ला 12	चैत्र कृष्णा 15
19.	मगसिर शुक्ला 11	पौष कृष्णा 2	फाल्गुन शुक्ला 5
20.	वैशाख कृष्णा 10	वैशाख कृष्णा 9	फाल्गुन कृष्णा 12
21.	आषाढ़ कृष्णा 10	मगसिर शुक्ला 11	वैशाख कृष्णा 14
22.	श्रावण शुक्ला 6	आश्विन शुक्ला 1	आषाढ़ शुक्ला 7
23.	पौष कृष्णा 11	चैत्र कृष्णा 4	श्रावण शुक्ला 7
24.	मगसिर कृष्णा 10	वैशाख शुक्ला 10	कार्तिक कृष्णा 15 *

*कार्तिक कृष्णा चतुदर्शी का भी प्रमाण मिलता है।

प्रश्न 12. वर्तमान काल सम्बन्धी भरतक्षेत्र के वृषभादि चौबीस तीर्थङ्करों के क्रमशः माता-पिता एवं उन तीर्थङ्करों के जन्म स्थानों के नाम बतलाइए ?

उत्तर -

क्र.	माता	पिता	जन्म स्थान
1.	मरुदेवी	श्री नाभिराय	अयोध्या नगरी
2.	विजया देवी	श्री जितशत्रु	अयोध्या नगरी
3.	सुसेना देवी	श्री दृढ़राज (जितारि)	श्रावस्ती नगरी
4.	सिद्धार्था	श्री संवर जी	अयोध्या नगरी
5.	सुमंगला देवी	श्री मेघरथ (मेघप्रभ)	अयोध्या नगरी
6.	सुसीमा देवी	श्री धरण राजा	कौशाम्बी नगरी
7.	पृथ्वी देवी	श्री सुप्रतिष्ठ जी	वाराणसी नगरी
8.	लक्ष्मी मती	श्री महासेन जी	चंद्रपुर नगरी
9.	रामा देवी	श्री सुग्रीव जी	काकंदीपुर नगरी
10.	नन्दा देवी	श्री दृढ़रथ जी	भद्रिलपुर नगरी
11.	वेणु देवी	श्री विष्णु राज	सिंहपुर नगरी
12.	जया देवी	श्री वसुपूज्य जी	चम्पापुर नगरी
13.	जय श्यामा	श्री कृत वर्मा जी	कम्पिल जी (कंपिलापुरी)
14.	सर्व यशा	श्री सिंहसेन जी	अयोध्या नगरी
15.	सुव्रता	श्री भानुराजा	रत्नपुर नगरी
16.	ऐरा देवी	श्री विश्वसेन	हस्तिनापुर
17.	श्रीमती देवी	श्री सूरसेन	हस्तिनापुर
18.	मित्रा देवी	श्री सुदर्शन जी	हस्तिनापुर
19.	प्रभावती	श्री कुम्भराज जी	मिथिलापुरी
20.	पद्मादेवी	श्री सुमित्र	राजगृह नगरी
21.	वप्रिला देवी	श्री विजयराज	मिथिलापुरी
22.	शिवा देवी	श्री समुद्रविजय	शौरीपुर
23.	वामा (वर्मा)देवी	श्री अश्वसेन	वाराणसी
24.	प्रियकारिणी (त्रिशलादेवी)	श्री सिद्धार्थ राजा	कुण्डलपुर (वैशाली)

प्रश्न 13. वर्तमानकाल सम्बन्धी भरतक्षेत्र के वृषभादि चौबीस तीर्थङ्करों के वैराग्य उत्पत्ति के कारण, समवसरण का विस्तार, प्रमुख गणधरों के नाम, गणधरों की संख्या एवं समवसरण में रहने वाली प्रमुख आर्यिकाओं के नाम क्रमशः दर्शाइये ?

उत्तर –

क्र. सं.	तीर्थङ्करों के वैराग्य उत्पत्ति के कारण	समवसरण का विस्तार	प्रमुख गणधरों के नाम	गणधरों की सं.	प्रमुख आर्यिकाओं के नाम
1.	नीलाञ्जना की आयु समाप्त	12 योजन	वृषभसेन	84	ब्राह्मी
2.	उल्कापात	11 $^{1}/_{2}$ योजन	सिंहसेन	90	प्रकुब्जा
3.	मेघ-पटल विनाश	11 योजन	चारूषेण	105	धर्मश्री
4.	गंधर्व नगर का नाश	10 $^{1}/_{2}$ योजन	वज्रनाभि	103	मेरुषेण
5.	जातिस्मरण	10 योजन	अमर	116	अनन्ता
6.	जातिस्मरण	9 $^{1}/_{2}$ योजन	वज्रचमर	110	रतिषेणा
7.	वसंत-लक्ष्मी विनाश	9 योजन	बल	95	मीना
8.	अध्रुवादि भावना	8 $^{1}/_{2}$ योजन	दत्त	93	वरूणा
9.	उल्कापात	8 योजन	विदर्भ	88	घोषा
10.	हिमनाश	7 $^{1}/_{2}$ योजन	अनगार	81	धरणा
11.	वसंत-लक्ष्मी विनाश	7 योजन	कुन्थुजी	77	चारणा
12.	जातिस्मरण	6 $^{1}/_{2}$ योजन	धर्मजी	66	वरसेना
13.	मेघ-पटल नाश	6 योजन	मंदरजी	55	पद्माश्री
14.	उल्कापात	5 $^{1}/_{2}$ योजन	श्री जय	50	सर्वश्री
15.	उल्कापात	5 योजन	अरिष्टसेन	43	सुव्रता
16.	जातिस्मरण	4 $^{1}/_{2}$ योजन	चक्रायुध	36	हरिषेणा
17.	जातिस्मरण	4 योजन	स्वयंभू	35	भाविता
18.	मेघ-पटल नाश	3 $^{1}/_{2}$ योजन	कुंभजी	30	कुंथुसेना
19.	अनित्यादि भावना	3 योजन	विशाख जी	28	मधुसेना
20.	पूर्वभव स्मृति	2 $^{1}/_{2}$ योजन	मल्लि जी	18	पूर्वदत्ता
21.	पूर्वभव स्मृति	2 योजन	सुप्रभ जी	17	मार्गिणी
22.	पशु-बंधन का दृश्य	1 $^{1}/_{2}$ योजन	वरदत्त	11	राजमती
23.	पूर्व-भव स्मरण	1 $^{1}/_{4}$ योजन	स्वयंभू	10	सुलोका
24	जातिस्मरण	1 योजन	इन्द्रभूति गौतम	11	चन्दना

प्रश्न 14. वर्तमान काल सम्बन्धी भरतक्षेत्र के वृषभादि चौबीस तीर्थङ्करों की ऊँचाई, आयुकाल, चिह्न और मोक्ष स्थानों का क्रमशः वर्णन कीजिये ?

उत्तर –

क्रम सं.	शरीर की ऊंचाई	आयुकाल	चिह्न	मोक्षस्थान
1.	500 धनुष	84 लाख पूर्व वर्ष	बैल	कैलाश पर्वत
2.	450 धनुष	72 लाख पूर्व वर्ष	हाथी	सम्मेद शिखर
3.	400 धनुष	60 लाख पूर्व वर्ष	घोड़ा	सम्मेद शिखर
4.	350 धनुष	50 लाख पूर्व वर्ष	बंदर	सम्मेद शिखर
5.	300 धनुष	40 लाख पूर्व वर्ष	चकवा	सम्मेद शिखर
6.	250 धनुष	30 लाख पूर्व वर्ष	लाल कमल	सम्मेद शिखर
7.	200 धनुष	20 लाख पूर्व वर्ष	स्वस्तिक	सम्मेद शिखर
8.	150 धनुष	10 लाख पूर्व वर्ष	अर्द्धचंद्र	सम्मेद शिखर
9.	100 धनुष	2 लाख पूर्व वर्ष	मगर	सम्मेद शिखर
10.	90 धनुष	1 लाख पूर्व वर्ष	कल्पवृक्ष	सम्मेद शिखर
11.	80 धनुष	84 लाख वर्ष	गैंड़ा	सम्मेद शिखर
12.	70 धनुष	72 लाख वर्ष	भैंसा	चम्पापुर (मंदारगिरी)
13.	60 धनुष	60 लाख वर्ष	शूकर	सम्मेद शिखर
14.	50 धनुष	30 लाख वर्ष	सेही	सम्मेद शिखर
15.	45 धनुष	10 लाख वर्ष	वज्र	सम्मेद शिखर
16.	40 धनुष	1 लाख वर्ष	हिरण	सम्मेद शिखर
17.	35 धनुष	95 हजार वर्ष	बकरा	सम्मेद शिखर
18.	30 धनुष	84 हजार वर्ष	मछली	सम्मेद शिखर
19.	25 धनुष	55 हजार वर्ष	कलश	सम्मेद शिखर
20.	20 धनुष	30 हजार वर्ष	कछवा	सम्मेद शिखर
21.	15 धनुष	10 हजार वर्ष	नीलकमल	सम्मेद शिखर
22.	10 धनुष	1 हजार वर्ष	शंख	गिरनार (ऊर्जयन्तगिरि)
23.	9 हाथ	100 वर्ष	सर्प	सम्मेद शिखर
24.	7 हाथ	72 वर्ष	सिंह	पावापुरी

प्रश्न 15. भरत क्षेत्र सम्बन्धी भूतकाल में हुए चौबीस तीर्थङ्करों के नाम एवं भविष्य काल में होने वाले चौबीस तीर्थङ्करों के नाम बतलाते हुए वर्तमान काल के ऋषभादि तीर्थङ्करों के काल में हुए चौबीस कामदेवों के नाम तथा चौबीस कामदेव कौन-कौन से तीर्थङ्करों के तीर्थ काल में हुए, कामदेवों के नामों के सामने उन तीर्थङ्करों के नाम लिखिए?

उत्तर -

क्र.	भूतकाल सम्बन्धी चौबीस तीर्थङ्करों के नाम	भविष्यत् काल सम्बन्धी चौबीस तीर्थङ्करों के नाम
1.	निर्वाण	महापद्म
2.	सागर	सुरदेव
3.	महासाधु	सुपार्श्व
4.	विमलप्रभु	स्वयंप्रभ
5.	श्रीधर	सर्वात्मभूत
6.	सुदत्त	देवपुत्र
7.	अमलप्रभ	कुलपुत्र
8.	उद्धारदेव	उदङ्क
9.	अँगिर देव	प्रौष्ठिल
10.	सन्मति	जयकीर्ति
11.	सिंधुदेव	मुनिसुव्रत
12.	कुसुमाञ्जलि (पूजाँजलि)	अरनाथ (अप्तम)
13.	शिवगण	निष्पाप
14.	उत्साहजिन	निष्कषाय
15.	ज्ञानेश्वर	विपुलजिन
16.	परमेश्वर	निर्मलजिन
17.	विमलेश्वर	चित्रगुप्त
18.	यशोधर	समाधिगुप्त
19.	कृष्णमति	स्वंभू
20.	ज्ञानमति	अनिवर्तक
21.	शुद्धमति	जयनाथ
22.	श्रीभद्र	विमलजिन
23.	अतिक्रांत	देवपाल
24.	शान्तदेव	अनन्तवीर्य

क्रम सं.	चौबीस कामदेवों के नाम	कामदेवों के समय तीर्थङ्करों का तीर्थ काल
1.	बाहुबली	ऋषभनाथ
2.	अमिततेज	अजितनाथ
3.	श्रीधर	संभवनाथ
4.	यशोभद्र	अभिनन्दननाथ
5.	प्रसेनजित	सुमतिनाथ
6.	चन्द्रवर्ण	पद्मप्रभ
7.	अग्निमुक्त	सुपार्श्वनाथ
8.	सनत्कुमार	चन्द्रप्रभ
9.	वत्सराज	पुष्पदन्त
10.	कनकप्रभ	शीतलनाथ
11.	सिद्धवर्ण	श्रेयांसनाथ
12.	शान्तिनाथ	शान्तिनाथ
13.	कुन्थुनाथ	कुन्थुनाथ
14.	अरनाथ	अरनाथ
15.	विजयराज	अरनाथ
16.	श्रीचन्द्र	मल्लिनाथ
17.	राजानल	मल्लिनाथ
18.	हनुमान	मुनिसुव्रत
19.	बलराज	नमिनाथ
20.	वसुदेव	नेमिनाथ
21.	प्रद्युम्नकुमार	नेमिनाथ
22.	नागकुमार	पार्श्वनाथ
23.	श्रीपाल	महावीर
24.	जम्बूस्वामी	महावीर

प्रश्न 16. यहाँ ऊपर कहे गये बैल आदि चिह्नों का तीर्थङ्करों से क्या सम्बन्ध है ?

उत्तर- तीर्थङ्कर बालक के जन्म कल्याणक सम्बन्धी अभिषेक के समय जब इन्द्र तीर्थङ्कर बालक के दाहिने पैर के अंगूठे को देखता है तब उसे विशेष (बैल आदि रूप) चिह्न दिखाई देता है उस समय वह उन तीर्थङ्करों की पहचान रूप में चिह्न निश्चित करता है। अर्थात् वह दाहिने पैर के अंगूठे का चिह्न उन तीर्थङ्कर की पहचान रूप होता है।

प्रश्न 17. तीर्थङ्करों के शरीर पर कितने शुभ लक्षण होते हैं ?

उत्तर - तीर्थङ्कर के शरीर पर एक हजार आठ (शुभ चिह्न रूप) शुभ लक्षण होते हैं ।

प्रश्न 18. सौधर्म इन्द्र तीर्थङ्कर बालक को कौन से पर्वत पर ले जाकर उनका जन्माभिषेक करता है ?

उत्तर - सौधर्म इन्द्र तीर्थङ्कर बालक को मेरुपर्वत पर ले जाकर उनका जन्माभिषेक करता है । (और अभिषेक दिन में ही किया जाता है रात्रि में नहीं । क्योंकि सूर्य प्रकाश के अभाव में जीवोत्पत्ति अधिक होती है । अतः दक्षिण प्रदेश में होने वाला रात्रि अभिषेक अनुचित है ।)

प्रश्न 19. तीर्थङ्कर कुमार की किसी से अविजय (हार) हो सकती है क्या ?

उत्तर - नहीं, उनकी किसी से भी अविजय नहीं हो सकती है क्योंकि वे अत्यन्त बलशाली होते हैं ।

प्रश्न 20. तीर्थङ्कर कुमार अपने माता-पिता के (बाहुल्यता से) अकेले ही पुत्र होते हैं इसका कारण क्या है?

उत्तर - क्योंकि तीर्थङ्कर बड़े अतिशय, पुण्यवान् होते हैं, उन्हें अपने माता-पिता का भरपूर प्रेम प्राप्त होता है और अगर उनके माता-पिता का दूसरा पुत्र होगा तो माता-पिता का प्रेम दूसरे पुत्र में बँट जाएगा ।

प्रश्न 21. एक साथ एक ही स्थान पर दो इत्यादिक तीर्थङ्कर नहीं होते इसका कारण क्या है ?

उत्तर - तीर्थङ्कर इतने कमजोर पुण्य वाले नहीं होते कि एक ही स्थान पर उन तीर्थङ्कर के सामने या साथ कोई दूसरा उत्पन्न हो जाए और उनके अतिशय प्रभाव में कुछ थोड़ी भी कमी आ जाए ।

प्रश्न 22. वर्तमान चौबीस तीर्थङ्करों में कितने तीर्थङ्कर तीन-तीन पदवियों के धारक थे ? एवं उन पदवियों के नाम बतलाइए ?

उत्तर - शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ ये तीन तीर्थङ्कर 1. कामदेव 2. चक्रवर्ती और 3. तीर्थङ्कर ऐसी तीन-तीन पदवियों के धारक थे ।

प्रश्न 23. वर्तमान चौबीस तीर्थङ्करों में से कितने तीर्थङ्करों ने शादी नहीं कराई अर्थात् कितने तीर्थङ्कर बाल ब्रह्मचारी रहे, उनके नाम बतलाइए ?

उत्तर - वर्तमान चौबीस तीर्थङ्करों में से पाँच तीर्थङ्करों ने शादी नहीं कराई, अर्थात् वे बाल ब्रह्मचारी रहे । उनके नाम इस प्रकार हैं -1. वासुपूज्य 2. मल्लिनाथ 3. नेमिनाथ 4. पार्श्वनाथ और 5. महावीर स्वामी ।

प्रश्न 24. एक नाम से अधिक नाम वाले कितने एवं कौन-कौन से तीर्थङ्कर हुए तथा उनके अधिक नाम लिखिए ?

उत्तर - एक नाम से अधिक नाम वाले चार तीर्थङ्कर हुए-1. ऋषभदेव, ऋषभनाथ-वृषभनाथ, आदिनाथ, पुरुदेव, वर्षीयस, ज्यायस, आद्यदेव, प्रजापति, इक्ष्वाकु, काश्यप, ब्रह्मन्, नाभिज, अग्रज आदि ।

2. पुष्पदन्तनाथ - सुविधिनाथ ।

3. अनन्तनाथ - सिंहसैन्य । (पूज्यपादाचार्य रचित 'चौबीस तीर्थङ्कर भक्ति' के अनुसार ।)

4. वर्द्धमान, महावीर, सन्मति,वीर, अतिवीर, अन्त्यकाश्यप, नाथान्वय, महति इत्यादि।

प्रश्न 25. विदेह क्षेत्रों में वर्तमान में कितने तीर्थङ्कर विराजमान हैं ? एवं उनके नाम बतलाइए।

उत्तर - विदेह क्षेत्रों में वर्तमान में बीस तीर्थङ्कर विराजमान हैं और इन बीस तीर्थङ्करों के नाम -

1.	सीमन्धर जी	11.	वज्रधर जी
2.	युगमन्धरजी	12.	चन्द्रानन जी
3.	बाहु जी	13.	भद्रबाहु जी
4.	सुबाहु जी	14.	भुजंगम जी
5.	सुजात जी	15.	ईश्वर जी
6.	स्वयंप्रभ जी	16.	नेमप्रभ जी
7.	ऋषभानन जी	17.	वीरसेन जी
8.	अनन्तवीर्य जी	18.	महाभद्र जी
9.	सूर्यप्रभ जी	19.	देवयश जी
10.	विशालकीर्ति जी	20.	अजितवीर्य जी

प्रश्न 26. ढाईद्वीप के पंच विदेह सम्बन्धी एक सौ साठ (160) उप विदेह क्षेत्रों में एक साथ कितने तीर्थङ्कर हो सकते हैं ?

उत्तर - एक सौ साठ उप विदेहों में एक साथ, एक सौ साठ तीर्थङ्कर हो सकते हैं । (प्रत्येक उप विदेह के एक-एक के गणित से)।

प्रश्न 27. ढाईद्वीप के पञ्च विदेह सम्बन्धी एक सौ साठ उप विदेहों में एवं पंच भरत, पंच ऐरावत में एक साथ कितने तीर्थङ्कर हो सकते हैं ?

उत्तर - सभी मिला कर एक सौ सत्तर तीर्थङ्कर हो सकते हैं।

प्रश्न 28. तीर्थङ्कर केवली पर कोई उपसर्ग कर सकता है क्या ?

उत्तर - नहीं ! उपसर्ग केवल आचार्य, उपाध्याय, और साधु रूप मुनि अवस्था तक ही होना संभव है, केवलज्ञान के अतिशय से तीर्थङ्कर केवलियों पर कोई उपसर्ग नहीं कर सकता।

प्रश्न 29. भरत क्षेत्र में होने वाले सभी तीर्थङ्कर कहाँ से मोक्ष जाते हैं ?

उत्तर - भरत क्षेत्र में होने वाले सभी तीर्थङ्कर सम्मेदशिखर जी सिद्धक्षेत्र से मोक्ष जाते हैं।

प्रश्न 30. वर्तमान के चौबीस तीर्थङ्करों में चार तीर्थङ्कर सम्मेदशिखर जी को छोड़ कर अन्य जगह (स्थानों) से मोक्ष गए इसका कारण क्या है ?

उत्तर - यह 'हुण्डावसर्पिणी' काल की विशेषता है।

प्रश्न 31. इस क्षेत्र के इस हुण्डावसर्पिणी काल की और क्या विशेषताएँ या दोष हैं ?

उत्तर - ति.प./4/1615-1623 असंख्यात अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी काल की शलाकाओं के बीत जाने पर प्रसिद्ध एक हुण्डावसर्पिणी आती है, उसके चिन्ह ये हैं :

- इस हुण्डवसर्पिणी काल के भीतर सुषमादुषमा काल की स्थिति में से कुछ काल के अवशिष्ट रहने पर भी वर्षा आदिक पड़ने लगती है और विकलेन्द्रिय जीवों की उत्पत्ति होने लगती है।
- इसके अतिरिक्त इसी काल में कल्पवृक्षों का अन्त और कर्मभूमि का व्यापार प्रारम्भ हो जाता है।
- उस काल में प्रथम तीर्थंकर और प्रथम चक्रवर्ती भी उत्पन्न हो जाते हैं।
- चक्रवती की विजय भंग होती है।
- थोड़े से जीवों का मोक्ष गमन भी होता है।
- इसके अतिरिक्त चक्रवर्ती से की गयी द्विजों के वंश की उत्पत्ति भी होती है।
- दुषमासुषमा काल में 58 ही शलाकापुरुष होते हैं।
- नौवें (पन्द्रहवें की बजाय) से सोलहवें तीर्थंकर तक सात तीर्थों में धर्म की व्युच्छिति होती है।
- 11 रुद्र और कलहप्रिय 9 नारद होते हैं।
- इसके अतिरिक्त 7 वें, 23 वें और अन्तिम तीर्थंकर के उपसर्ग भी होता है।
- तृतीय, चतुर्थ व पंचम काल में उत्तम धर्म को नष्ट करने वाले विविध प्रकार के दुष्ट, पापिष्ठ कुदेव और कुलिंग भी दिखने लगते हैं।
- चाण्डाल, शबर, पाण (श्वपच), पुलिंद, लाहल और किरात इत्यादि जातियां उत्पन्न होती है।
- दुषमाकाल में 42 कल्की व उपकल्की होते हैं।
- अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूवृद्धि (भूकम्प) और वज्राग्नि आदि का गिरना, इत्यादि विचित्र भेदों को लिये हुए नाना प्रकार के दोष इस हुण्डावसर्पिणी काल में हुआ करते हैं।

प्रश्न 32. तीर्थक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर - **''संसारसायरं तरंति त्ति एदाणि तित्थं''** (ध./9) जहाँ से संसारी भव्य जीव या तपस्वी, मुनि जन संसार समुद्र से तिर जाते हैं अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त कर लेते हैं, उसे तीर्थक्षेत्र कहते हैं।

प्रश्न 33. सम्मेदशिखर तीर्थक्षेत्र की वन्दना करने का फल क्या है?

उत्तर - सम्मेदशिखर तीर्थक्षेत्र की जो उत्तम-भावपूर्वक वन्दना करते हैं, वे सज्जन नरक, तिर्यंच इत्यादिक बुरी गतियों को प्राप्त नहीं करते ऐसा ज्ञानी लोग कहते हैं।

प्रश्न 34. उत्तर भारत के मध्यप्रदेश स्थित बावनगजा क्षेत्र में स्थित चौरासी (84) फुट ऊँची भगवान आदिनाथ तीर्थङ्कर की दिगम्बर (नग्न) प्रतिमा एवं दक्षिण भारत में कर्नाटक प्रदेश के श्रवणबेलगोल क्षेत्र में स्थित सत्तावन (57) फीट ऊँची भगवान बाहुबली की दिगम्बर (नग्न) प्रतिमा हमें मौन से क्या संदेश (उपदेश) देती हैं?

उत्तर - ऐसी भगवान आदिनाथ तीर्थङ्कर की प्रतिमा एवं भगवान बाहुबली की प्रतिमा हमें मौन से अहिंसा, त्याग, संयम, और दिगम्बरत्व (निष्परिग्रहता) का मंगल संदेश देती है। (जो संदेश

मानव को महान् बनाता है।)

प्रश्न 35. समवसरण किसे बोलते हैं ?

उत्तर - सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से कुबेर जिसकी रचना करता है, जिसमें तीर्थङ्कर केवली की दिव्यध्वनि खिरती है और जिसमें बारह सभाओं की रचना होती है, उसे समवसरण बोलते हैं।

प्रश्न 36. तीर्थङ्कर भगवान के समवसरण में रहने वाली बारह सभाओं के नाम दर्शाओ?

उत्तर - तीर्थंकर भगवान के समवसरण में बारह सभाएं :

1. गणधर आदि सात प्रकार के मुनिराजों की सभा।
2. शचि आदि स्वर्गिक कल्पवासिनी देवियों की सभा।
3. आर्यिका माता एवं मनुष्यों से सम्बन्धित स्त्रियों की सभा।
4. ज्योतिषिनी देवियों की सभा।
5. व्यन्तरवासिनी देवियों की सभा।
6. भवनवासी देवियों की सभा।
7. व्यन्तर देवों की सभा।
8. ज्योतिष्क देवों की सभा।
9. भवनवासी देवों की सभा।
10. कल्पवासी स्वर्गिक देवों की सभा।
11. राजा चक्रवर्ती, विद्याधर मनुष्य जनों की सभा।
12. हाथी, सिंह आदि तिर्यंच गणों की सभा।

प्रश्न 37. समवसरण की बारह सभा सम्बन्धी मुनियों की सभा में विराजमान रहने वाले सात प्रकार के मुनियों के नाम बतलाइए।

उत्तर - सामान्य केवली, पूर्वधर, शिक्षक, विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी, विक्रिया ऋद्धिधारी, अवधिज्ञानी तथा वादी ये सात प्रकार के मुनि समवसरण सम्बन्धी मुनियों की सभा में विराजमान रहते हैं।

प्रश्न 38. भगवान महावीर के समवसरण सम्बन्धी मुनियों की सभा में उपस्थित होने वाले केवली आदि सात प्रकार के मुनीश्वरों की अलग-अलग संख्या बतलाइए।

उत्तर - भगवान महावीर के समवसरण सम्बन्धी मुनियों की सभा में 700 केवलज्ञानी, 300 पूर्वधर, 9900 शिक्षक, 500 विपुलमति मनःपर्ययज्ञानी, 900 विक्रिया ऋद्धिधारी, 1300 अवधिज्ञानी और 400 वादी मुनीश्वर उपस्थित थे।

प्रश्न 39. यहाँ चतुर्थ काल में तीर्थङ्करों के तीर्थ में कितने शलाका पुरुष होते हैं ? एवं उनकी अलग-अलग संख्या बतलाइए।

उत्तर - यहाँ चतुर्थ काल में तीर्थङ्करों के तीर्थ में त्रेसठ (63) शलाका पुरुष होते हैं । 24 तीर्थंकर, 12 चक्रवर्ती, 9 नारायण,9 प्रतिनारायण 9 बलभद्र। 63 शलाका पुरुष।

प्रश्न 40. आदिनाथ से लेकर महावीर तीर्थङ्कर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करों के तीर्थकाल में होने वाले त्रेसठ शलाका पुरुषों के नाम बतलाइए ।

उत्तर - चौबीस तीर्थङ्कर - चौबीस तीर्थङ्करों के नाम कहे जा चुके हैं ।

बारह चक्रवर्ती-1. भरत चक्रवर्ती 2. सगर चक्रवर्ती 3. मगध चक्रवर्ती 4. सनत्कुमार चक्रवर्ती 5. शान्तिनाथ चक्रवर्ती 6. कुन्थुनाथ चक्रवर्ती 7. अरनाथ चक्रवर्ती 8. सुभौम चक्रवर्ती 9. महापद्म चक्रवर्ती 10. हरिषेण चक्रवर्ती, 11. जयसेन चक्रवर्ती 12. ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती।

नौ बलभद्र-1. विजय बलभद्र, 2. अचल बलभद्र, 3. सुधर्म बलभद्र, 4. सुप्रभ बलभद्र, 5. सुदर्शन बलभद्र 6. नन्दीषेण बलभद्र 7. नन्दीमित्र बलभद्र 8. रामचंद्र बलभद्र 9. पद्म बलभद्र ।

नौ नारायण-1. त्रिपृष्ठ नारायण 2. द्विपृष्ठ नारायण 3. स्वयंभू नारायण 4. पुरुषोत्तम नारायण 5. पुरुषसिंह नारायण 6. पुंडरीक नारायण 7. दत्त नारायण 8. लक्ष्मण नारायण 9. कृष्ण नारायण।

नौ प्रतिनारायण- 1 अश्वग्रीव प्रतिनारायण 2. तारक प्रतिनारायण 3. मेरुक प्रतिनारायण 4. मधुकैटभ प्रतिनारायण 5. निशुंभ प्रतिनारायण, 6. बलि प्रतिनारायण 7. प्रहरण प्रतिनारायण 8. रावण प्रतिनारायण और 9. जरासंध प्रतिनारायण।

प्रश्न 41. तीर्थङ्कर कैसे बनते हैं ?

उत्तर - विश्व कल्याण की भावना के साथ सोलह भावनाओं को भाने से (चिन्तन करने से) तीर्थंकर प्रकृति का संचय होता है और तीर्थंकर बनते हैं।

प्रश्न 42. सोलह कारण भावनाएं किसे कहते हैं संक्षेप में वर्णन कीजिए ?

उत्तर -

1. **दर्शन विशुद्धि**-अरहंत भगवान के द्वारा कहे गए वीतराग निर्ग्रन्थ रूप मोक्षमार्ग में सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगादि सहित एवं पच्चीस मल दोष रहित रुचि का होना।
2. **विनयसम्पन्नता** - रत्नत्रय एवं रत्नत्रय के धारक आगम से चलने वाले साधुओं की अंतरंग से आदर, सत्कार रूप विनय करना या नवदेवताओं की विनय करना।
3. **शील व्रतेषु अनतिचार** - अहिंसा, सत्य आदि व्रतों का एवं व्रतों की रक्षा करने वाले शीलों का अतिचार रहित (निर्दोष) पालन करना।
4. **अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग** - निरंतर सम्यग्ज्ञान में अपना उपयोग लगाना अर्थात् सदा सम्यग्ज्ञान के पठन-पाठन आदि में संलग्न रहना।
5. **अभीक्ष्ण संवेग** - पञ्च परिवर्तन रूप संसार के दुःखों से एवं दुःख प्राप्ति के कारणों से सदा भयभीत रहना। अथवा रत्नत्रय जनित हर्ष का होना ।
6. **शक्तितः त्याग**-निज शक्ति के अनुसार रस इत्यादिक का त्याग करना अथवा विधिपूर्वक दान देना।
7. **शक्तितःतप**-अपनी शक्ति के अनुसार जैन मार्गानुकूल तपस्या करना।
8. **साधुसमाधि**-तपस्वी मुनियों के तप में आने वाली विघ्न-बाधाओं को दूर कर उनके संयम की रक्षा करना।

9. **वैयावृत्य करण**-गुणवान् सच्चे साधुजनों की, हाथ पैर इत्यादिक दबाकर अथवा आहार दान और उपकरण आदि का दान देकर उनकी सेवा करना।
10. **अर्हद् भक्ति** - विशुद्ध भावों से गुणानुराग पूर्वक अरहंत भगवान का गुणगान करना ।
11. **आचार्य भक्ति** - विशुद्ध भावों से गुणानुराग पूर्वक आचार्य परमेष्ठी का गुणगान करना।
12. **बहुश्रुत भक्ति**-विशुद्ध भावों से गुणानुराग पूर्वक पच्चीस गुणों (ग्यारह अंग, चौदह पूर्व) के धारी उपाध्याय परमेष्ठी का गुणगान करना ।
13. **प्रवचन भक्ति** -विशुद्ध भावों से गुणानुराग पूर्वक शास्त्र का गुणगान करना।
14. **आवश्यक अपरिहाणि**-सामायिक, स्तवन, वन्दना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और कायोत्सर्ग इन छह आवश्यक कार्यों में कभी हानि न होने देना और प्रतिदिन नियत समय पर उनका अच्छी तरह से पालन करते रहना।
15. **मार्ग प्रभावना** - सम्यग्ज्ञान के द्वारा, तप के द्वारा अथवा जिनेन्द्र भगवान की पूजा द्वारा जगत् में जैनधर्म का प्रकाश फैलाना।
16. **प्रवचन वत्सलत्व**-जैसे गाय को अपने बछड़े (बच्चे) से सहज स्नेह (प्रेम) होता है, वैसे ही साधर्मी जनों को देखकर चित्त का प्रफुल्लित (प्रसन्न) हो जाना।

    विशेष-इन सभी भावनाओं का अथवा इनमें से कुछ भावनाओं का पालन करने से तीर्थङ्कर प्रकृति नाम कर्म का आस्रव होता है, किन्तु इन भावनाओं में दर्शन विशुद्धि भावना का पालन करना परम आवश्यक है ।

प्रश्न 43. ऐसे कौन से तीर्थङ्कर हुए जिनके चचेरे भाई का नाम 'श्रीकृष्ण' नारायण था?

उत्तर - ऐसे बाईसवें तीर्थङ्कर थे 'श्री नेमिनाथ' जी ।

प्रश्न 44. ऐसे कौन से तीर्थङ्कर थे जिनके तीर्थकाल में राम, लक्ष्मण एवं हनुमान (बजरंगबली) ने जन्म लिया और राम एवं हनुमान ने मुनि बनकर मोक्ष पद को प्राप्त किया?

उत्तर - ऐसे बीसवें तीर्थङ्कर हुए-'श्री मुनिसुव्रतनाथ' भगवान।

प्रश्न 45. ऐसे कौन से तीर्थङ्कर हुए जिन्हें मुनि दीक्षा लेने के छह दिन बाद ही केवलज्ञान उत्पन्न हो गया था और समवसरण की रचना हो गई थी?

उत्तर - ऐसे उन्नीसवें तीर्थङ्कर हुए-परम तपस्वी 'श्री मल्लिनाथ' भगवान ।

प्रश्न 46. कौन से तीर्थङ्कर के पुत्रों का नाम भरत एवं बाहुबली था?

उत्तर - प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ (ऋषभदेव) के पुत्रों का नाम भरत एवं बाहुबली था ।

प्रश्न 47. हमारे पिताजी को किन्हीं गृहस्थों (अपने अधीनस्थ राजाओं) के सामने झुकना न पड़े इस मान मर्यादा को रखते हुए जिन कन्याओं ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया था एवं समवसरण में दीक्षा धारण की थी, उन कन्याओं का एवं उनके पिता का नाम क्या था?

उत्तर उन कन्याओं का नाम था ब्राह्मी और सुन्दरी तथा उनके पिता का नाम था, ऋषभदेव (आदिनाथ)।

प्रश्न 48. वर्तमान में यहाँ (भरत क्षेत्र में) कौन से तीर्थङ्कर का तीर्थकाल चल रहा है?

उत्तर - वर्तमान में यहाँ (भरत क्षेत्र में) भगवान महावीर स्वामी तीर्थङ्कर का तीर्थकाल चल रहा है।

अध्याय 3.
जैन श्रावक के कर्तव्य
(अष्ट मूलगुण, रात्रिभोजन त्याग एवं छना जल पीना)

जैन, जन्म से नहीं कर्म से बनते हैं और सच्चे जैनी बनने के अष्ट मूलगुण इत्यादिक रूप जैन श्रावक के कर्तव्यों को जानना परमावश्यक है, एतदर्थ यहाँ तीसरा अध्याय 'जैन श्रावक के कर्तव्य' नाम से दिया गया है।

प्रश्न 1. श्रावक के अष्ट मूलगुण किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो श्रावक पद की पहचान के मुख्य गुण होते हैं, उन्हें श्रावक के अष्ट मूलगुण कहते हैं ।

प्रश्न 2. अष्ट मूलगुणों के नाम क्या हैं ?

उत्तर - श्रावक के अष्ट मूलगुणों के नाम दो प्रकार से हैं -

1. मद्य, मधु और माँस (तीन मकार) का त्याग एवं हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह (पञ्च पाप) का स्थूल रूप से त्याग।
2. मद्य, मधु और माँस के त्याग के साथ-साथ बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर रूप पञ्च उदुम्बर फलों का त्याग। इन आठ वस्तुओं के त्याग से हमारी आत्मा में अष्ट मूलगुण उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न 3. 'श्रावक' इस शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर - 'श्रा' अर्थात् श्रद्धावान् (सम्यग्दृष्टि), 'व' अर्थात् विवेकवान (सम्यग्ज्ञानी), 'क' अर्थात् क्रियावान् (देशचारित्री)। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और देशचारित्र का धारी होता है, वह श्रावक कहलाता है।

प्रश्न 4. मद्य किसे बोलते हैं ?

उत्तर - पदार्थों को सड़ा गलाकर, जीव हिंसापूर्वक एवं गटर-नाली के पानी इत्यादिक से जिसका निर्माण होता है ऐसी नशा उत्पन्न करने वाली शराब को मद्य बोलते हैं।

प्रश्न 5. मद्य-पान में क्या दोष है ?

उत्तर - मद्य (शराब) के नशे में व्यक्ति धर्माचरण को भूल जाता है, कभी माँ को पत्नी और पत्नी को माँ बोलता है और उसके मुख से अनर्थकारी वचन निकलने लग जाते हैं।

प्रश्न 6. मधु क्या चीज है ?

उत्तर - स्वयं के भोजन के लिए मधु मक्खियों के द्वारा अपने मुख में रखकर लाये हुए पदार्थों के रस के उगाल को मधु कहते हैं।

प्रश्न 7. मधु (शहद) को निकालने एवं खाने में क्या दोष आता है ?

उत्तर - मधु को निकालने एवं बूँद मात्र के खाने में धर्म शास्त्रों के अनुसार महान् हिंसा होने से सात गाँवों के जलाने के बराबर का दोष आता है।

प्रश्न 8. मधु के निकालने एवं खाने में इतना बड़ा दोष क्यों है ?

उत्तर - क्योंकि मधु के छत्ते में असंख्यात त्रस जीव रहते हैं और मधु निकालते समय उन जीवों का घात हो जाता है इसलिए इतना भारी दोष आता है।

प्रश्न 9. माँस किसे कहते हैं ?

उत्तर - दो इन्द्रिय आदि त्रस जीवों के शरीर को (सप्त धातुओं से निर्मित) माँस बोलते हैं ।

प्रश्न 10. माँस खाने में क्या दोष आता है ?

उत्तर - माँस खाने में बहुत भारी त्रस जीवों की हिंसा का दोष आता है एवं शरीर में अनेक रोगों की उत्पत्ति होने लग जाती है। (माँस चाहे कच्चा हो, पकाया गया हो, उसमें हमेशा जीवोत्पत्ति होती रहती है)।

प्रश्न 11. मद्य, मधु, माँस खाने वाले प्राणी कौन-सी गति को प्राप्त करते हैं ?

उत्तर - मद्य, मधु, माँस खाने वाले प्राणी नरक, तिर्यञ्चादि बुरी गतियों के फल को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न 12. बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर इन वृक्षों से उत्पन्न हुए पञ्च उदुम्बर फलों को खाने में क्या दोष आता है ?

उत्तर - पंच उदुम्बर फलों के भीतर असंख्यात दो इन्द्रियादि त्रस जीव होते हैं, इसलिए उन फलों को खाने में माँस सेवन के सदृश दोष आता है ।

प्रश्न 13. बिना छना पानी पीने में क्या दोष है ?

उत्तर - बिना छना हुआ जल पीने में त्रस जीवों की हिंसा का दोष होता है। क्योंकि बिना छने जल में हमारी आँखों से न दिखने वाले असंख्यात त्रस जीव पाये जाते हैं।

प्रश्न 14. एक बूंद पानी में यांत्रिक विज्ञान के अनुसार कितने जीव पाए जाते हैं ?

उत्तर - आज के यांत्रिक विज्ञान के अनुसार एक बूंद पानी में छत्तीस हजार चार सौ पचास (36,450) जीव पाए जाते हैं। और हमारे जैनधर्म-विज्ञानानुसार इस संख्या से भी अधिक; बहुत संख्या में जीव पाए जाते हैं ।

प्रश्न 15. श्रावकों से अहिंसा परमोधर्म का पालन किस प्रकार का जल पीने से होता है ?

उत्तर - नदी या कुएं के जल को मोटे छन्ने से छानकर उसकी जीवानी (बिलछानी) को वापस उसी नदी या कुएं में विधिपूर्वक डालकर उस छने पानी को पीने से श्रावकों के अहिंसा परमो धर्म का पालन होता है।

प्रश्न 16. रात्रिभोजन करने में क्या दोष है ?

उत्तर - रात्रि के समय भोजन में गिरे हुए जीव-जंतुओं का ठीक तरह से शोधन नहीं होता इसलिए रात्रिभोजन में बहुत हिंसा का दोष आता है।

प्रश्न 17. आज तो बिजली (लाईट) की बड़ी सुविधा है इसलिए रात्रि में भोजन का शोधन अच्छी तरह से हो सकता है फिर रात्रिभोजन करने में क्या बाधा है ?

उत्तर - नहीं, बिजली (लाईट) के प्रकाश में सूर्य प्रकाश के समान पूर्ण अच्छी तरह से भोजन का शोधन नहीं होता और लाईट जलने से भी अनेक प्रकार के छोटे-बड़े जीवों की उत्पत्ति होना चालू हो जाती है तथा वे जीव भोजन में गिरकर भोजन को अशुद्ध एवं विषैला बना देते हैं अतः रात्रि के समय लाईट में भी भोजन नहीं करना चाहिए।

उदाहरण के लिए जैसे हम ऐसी जगह बैठे हैं जहाँ हमें सूर्य का सीधा दर्शन नहीं होता फिर भी दिन में सूर्य की किरणों के परावर्तन (रिफ्लेक्शन) से हम अपने भोजनादि को अच्छी तरह से शोधन कर लेते हैं। लेकिन ऐसा बिजली (लाईट) में नहीं होता उसका प्रकाश इतनी मात्रा में परावर्तित (रिफ्लेक्टेड) नहीं होता कि हम रात्रि के समय भोजनादिक को अच्छी तरह शोधन कर सकें। इतना ही नहीं; बिजली का अचानक बीच में ही अभाव हो जाने से हम दुविधा (परेशानी) में पड़ जाते हैं। अतः रात्रिभोजन करना किसी भी तरह से ठीक नहीं।

प्रश्न 18. रात्रिभोजन के त्याग के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों के क्या तर्क हैं ? कुछ विशेष तर्कों को बतलाइए।

उत्तर-

1. सूर्यास्त होने पर हमारी पाचन शक्ति (जठराग्नि) कमजोर या मंद हो जाती है ।
2. भोजन पाचन में बहुत सहायक होने वाली प्राणवायु (आक्सीजन गैस) रात्रि के समय पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलती क्योंकि दिन में पेड़-पौधे कार्बन डाई ऑक्साइड ग्रहण करते हैं और ऑक्सीजन गैस छोड़ते हैं लेकिन रात्रि में यह क्रम उल्टा होता है अर्थात् पेड़-पौधे रात्रि में ऑक्सीजन गैस ग्रहण करते हैं एवं कार्बनडाईऑक्साइड छोड़ते हैं इसलिए हमें ऑक्सीजन की मात्रा पर्याप्त रूप से नहीं मिलती और रात्रि में किए गए भोजन का पाचन ठीक से नहीं होता।
3. सूर्यास्त होने पर सूर्य-प्रकाश का अभाव होने से वातावरण में अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो जाती है जो भोजन में गिरकर भोजन को विषाक्त कर देते हैं।
4. मानव को अपनी उदर सम्बन्धी निरोगता रखने हेतु आधा भोजन पाचन होने के उपरान्त ही रात्रि में निद्रा लेनी चाहिए (शयन करना चाहिए)। स्वस्थ मानव द्वारा किए गए भोजन का पाचन लगभग पाँच, छह, सात घण्टे में हो जाता है, अतः विज्ञान के अनुसार गृहस्थ श्रावकों को सायंकाल में सूर्यास्त से 3 घटिका (घड़ी पूर्व) अर्थात् 72 मिनट पूर्व ही भोजन कर लेना चाहिए।
5. रात्रि में किया गया भोजन अधिक प्रमादकारक एवं अजीर्णकारक होता है तथा वह भोजन रात्रि में अनेक बुरे स्वप्नों को भी पैदा करता है।

प्रश्न 19. रात्रिभोजन के त्याग करने में हमें कौन-कौन से लाभ हैं, कोई तीन लाभ बतलाइए ?

उत्तर - रात्रिभोजन त्याग करने से -

1. एक वर्ष में छः महीने के उपवास का फल प्राप्त होता है।
2. अहिंसा परमो धर्म का पालन होता है।

3. आरोग्यता की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न 20. क्या अजैनों के मत में भी रात्रिभोजन त्याग इत्यादिक के बारे में कुछ कहा गया है ?

उत्तर - हाँ, अजैनों के यहाँ कहा गया है कि -

मद्य माँसाशनं रात्रिभोजनं कंद भक्षणं ।

ये कुर्वन्ति वृथा तेषां तीर्थ यात्रा जपस्तपः ॥ महाभारत

अर्थात् जो मद्य (शराब) पीते हैं, माँस खाते हैं, रात्रिभोजन करते हैं और कंदमूल का भक्षण करते हैं उनका तीर्थ यात्रा एवं जप-तप करना सब व्यर्थ है ।

प्रश्न 21. बाजार में बने हुए भोजन के करने में क्या दोष है ?

उत्तर - बाजार में बने हुए भोजन के करने में दोष -

1. पदार्थ अशुद्धि -भोजन बनाने की सामग्री सम्बन्धी अशुद्धि ।
2. शारीरिक अशुद्धि -भोजन बनाने वाले व्यक्ति के शरीर सम्बन्धी अशुद्धि ।
3. जाति अशुद्धि - भोजन बनाने वाले शूद्रादि कुलोत्पन्न हो सकते हैं ।
4. भाव अशुद्धि -भोजन बनाने वाले व्यसनी भी हो सकते हैं ।
5. रोगोत्पत्ति -अशुद्ध भोजन के सेवन से अनेक रोगों की उत्पत्ति ।
6. धर्म हानि -अशुद्ध भोजन सेवन से अहिंसा एवं रत्नत्रय धर्म की हानि ।

प्रश्न 22. जमीकन्द-आलू, मूली, गीला अदरक इत्यादिक के खाने में क्या दोष हैं ?

उत्तर - इन जमीकन्द में सूक्ष्म अनन्त जीवों का निवास होता है इसलिए इन आलू, मूली इत्यादिक वनस्पतियों को 'अनन्तकाय वनस्पति' बोलते हैं और इनके भक्षण करने से अनन्त जीवों का विघात होता है तथा वे वनस्पतियां तामसिक एवं प्रमादवर्द्धक भी होती हैं ।

प्रश्न 23. अष्ट मूलगुणों को धारण करके किस भील (शिकारी) ने चौतीसवें भव में आगे भगवान महावीर बनकर मोक्ष पद को पाया ?

उत्तर - 'पुरुरवा' नामक भील ने अष्ट मूलगुणों को धारण करके आगे चौतीसवें भव में भगवान महावीर बनकर मोक्ष पद को पाया ।

प्रश्न 24. रात्रिभोजन त्याग करने से कौन सा प्राणी सेठ का पुत्र 'प्रीतिंकर' होकर अगले भव में मुनि बनकर मोक्ष गति को प्राप्त हुआ ?

उत्तर - रात्रिभोजन के त्याग करने से एक 'सियार' सेठ का पुत्र प्रीतिंकर होकर, मुनि बनकर मोक्ष गति को प्राप्त हुआ ।

अध्याय 4.
देवदर्शन विधि एवं उसका महत्त्व

जिनके आदर्श जीवन को देखने से हमारा जीवन भी महान् बनता है, ऐसे आदर्श रूप प्रभु के मंदिर में हमें कैसे जाना चाहिए एवं वहाँ क्या-क्या करना चाहिए ? इसकी विधि एवं महत्त्व को जाने बिना हम प्रभु के सच्चे भक्त नहीं बन सकते, अतः यहाँ चौथे अध्याय में 'देव दर्शन विधि' को दर्शाया गया है।

प्रश्न 1. देवदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर - हम जो नमस्कार की मुद्रा में स्थित होकर वीतराग भगवान के गुणों का चिंतन करते हुए उन्हें देखते हैं या उनका स्मरण करते हैं, उसे देवदर्शन कहते हैं।

प्रश्न 2. श्रावकों को मंदिर जी (चैत्यालय) में कैसे आना चाहिए ?

उत्तर - मंदिर जी में जैन श्रावकों को स्नान करके, शुद्ध वस्त्रों के साथ, शुद्ध पूजन द्रव्य लेकर आना चाहिए।

प्रश्न 3. मंदिर जी में आने के लिए पहले स्नान करना आवश्यक क्यों है ?

उत्तर - क्योंकि गृहस्थों द्वारा घरों में आरंभादि पञ्च पाप होते रहते हैं इसलिए उनका शरीर अशुद्ध हो जाता है और उस शारीरिक अशुद्धि को स्नान से दूरकर मंदिर जैसे पवित्र स्थान में आना चाहिए।

प्रश्न 4. चमड़े के सामानों के साथ (उन्हें लेकर या पहनकर) मंदिर में क्यों नहीं जाना चाहिए ?

उत्तर - जैसे आप लोग मृत पंचेन्द्रिय प्राणी या उसके अवयवों के स्पर्श मात्र से अपने शरीर को अशुद्ध मानते हैं (और स्नान करते हैं) वैसे ही स्वयं मृत या मारे गये प्राणी के शरीर से निकाले गये चमड़े के स्पर्श से अपने शरीर को अशुद्ध समझना चाहिए। मंदिर जैसे पवित्र स्थान में जाने के लिए बड़ी शुद्धता की आवश्यकता है तथा जीवों के शरीर से उत्पन्न चमड़ा इत्यादिक में हमेशा सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होती रहती है और उनका उपयोग करने में बहुत जीवों की हिंसा होती है।

प्रश्न 5. मंदिर जी में प्रवेश करने के पहले लोगों को छने जल से पैर धोने की आवश्यकता क्यों है?

उत्तर - क्योंकि रास्ते में आते समय लोगों के पैरों में अशुद्ध पदार्थ लग जाते हैं और बिना पैर धोये मंदिर जी में प्रवेश करने पर मंदिर का वातावरण दूषित होता है।

प्रश्न 6. मंदिर जी (जिनालय) में द्वार से प्रवेश करते समय क्या बोलना चाहिए?

उत्तर - मंदिरजी में प्रवेश करते समय निसही-निसही-निसही ऐसा तीन बार बोलना चाहिए ।

प्रश्न 7. मंदिर जी में प्रवेश करते समय निसही 3 बार बोलने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर - जैसे लोग किसी विशेष जगह अथवा किसी दूसरे के घर में जाने के लिए वहाँ पूछकर या कुछ संकेत (आवाज) करते हुए प्रवेश करते हैं एवं वहाँ से पूछकर या संकेत करते हुए वापस आते हैं जिससे किसी मनुष्य, देव या तिर्यंचादिक को हमारे द्वारा कोई बाधा उपस्थित न हो। उसी तरह हम मंदिर जी आदि में प्रवेश करते समय निसही 3 द्वारा जीवों को संकेत करते हैं कि ''मैं यहाँ प्रवेश कर रहा हूँ, मुझे भी जगह दीजिए'' और मंदिर प्रवेश करते हैं।

प्रश्न 8. प्रदक्षिणा किसकी दी जाती है एवं कितनी दी जाती हैं?

उत्तर - प्रदक्षिणा वीतरागी देव एवं निर्ग्रन्थ गुरु की तीन-तीन दी जाती हैं।

प्रश्न 9. वीतराग देव एवं निर्ग्रन्थ गुरु की तीन-तीन प्रदक्षिणा क्यों दी जाती हैं?

उत्तर - वीतरागी देव (भगवान) एवं निर्ग्रन्थ गुरु के पास जो रत्नत्रय विद्यमान हैं उसकी मुझे भी प्राप्ति हो इस भावना से तीन-तीन प्रदक्षिणा दी जाती हैं।

प्रश्न 10. मंदिर जी में दर्शन करते समय भगवान के सामने किस ओर (तरफ) खड़े होना चाहिए?

उत्तर - जिनालय में दर्शन करते समय भगवान के सामने, भगवान के दायें हाथ की तरफ खड़े होना चाहिए, अगर ऐसी जगह सुलभ न हो तो राग-द्वेष किये बिना, किसी अन्य जगह भी खड़े हो सकते हैं।

प्रश्न 11. जिनेन्द्र देव के दर्शन करते समय लोगों को सबसे प्रथम क्या बोलना चाहिए?

उत्तर - जिनेन्द्र देव के दर्शन करते समय लोगों को सबसे प्रथम णमोकार मन्त्र बोलना चाहिए, तदुपरान्त चत्तारि मंगल पाठ एवं दर्शन स्तोत्र आदि बोलना चाहिए।

प्रश्न 12. जिनेन्द्र भगवान का दर्शन किस भावना से करना चाहिए?

उत्तर - जिनेन्द्र भगवान का दर्शन तीन भावनाओं से करना चाहिए -

1. हे भगवान! मैं भी आप जैसा गुणवान्, भगवान बनूँ ।
2. हे भगवान! मेरे पाप कर्म शीघ्र ही क्षय हों ।
3. हे भगवान! मुझे मोक्ष सुख की प्राप्ति हो ।

प्रश्न 13. भगवान का दर्शन करते समय कैसे या किन भावों का त्याग करना चाहिए?

उत्तर - भगवान का दर्शन करते समय -

1. धन-वैभव की प्राप्ति के भावों का त्याग करना चाहिए।

2. सन्तानादिक की प्राप्ति के भावों का त्याग करना चाहिए।

3. राग-द्वेषात्मक भावों का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न 14. अगर हम लोग भगवान के सामने धन-वैभव, पुत्रादिक की प्राप्ति की भावना या कामना नहीं करेंगे तो हमें इन सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति कैसे होगी ?

उत्तर - दान, पूजादि धर्म करने से जो हमें पुण्य कर्म का अर्जन होता है अथवा जो हमारा पूर्व संचित पुण्य होता है उसी पुण्य कर्म से हमें स्वयमेव सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति होती रहती है।

प्रश्न 15. श्रावकों को भगवान के दर्शन एवं नमस्कार के बाद और किस-किस को नमस्कार करना चाहिए ?

उत्तर - श्रावकों को वीतराग भगवान के नमस्कार के बाद जिनवाणी (शास्त्र) एवं निर्ग्रन्थ दिगम्बर गुरु को नमस्कार करना चाहिए तथा इसके बाद ऐलक, क्षुल्लक, आर्यिका, क्षुल्लिका जी को भी यथायोग्य नमस्कार करना चाहिए।

प्रश्न 16. मंदिर के बाहर सरागी सम्यग्दृष्टि जीवों से परस्पर में जय जिनेन्द्र का व्यवहार कर सकते हैं क्या ?

उत्तर - हाँ ! ऐसा करने में आगम से कोई बाधा नहीं।

प्रश्न 17. जिन-मंदिर में और विशेष क्या-क्या करना चाहिए ?

उत्तर - जिन-मंदिर में और विशेष रूप से पुरुषों द्वारा जिनाभिषेक, वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की पूजा, जप, स्वाध्याय किया जाना चाहिए।

प्रश्न 18. जिनाभिषेक के उपरांत गन्धोदक को किस विधि से लेना चाहिए ?

उत्तर - जिनाभिषेक के गन्धोदक को अपने दाहिने हाथ की बीच की दो अंगुलियों (मध्यमा और अनामिका) से लेकर (नीचे न गिरे अतः गन्धोदक की अंगुलियों के नीचे बायें हाथ को लगाते हुए) माथे पर लगाना चाहिए एवं निम्न श्लोक बोलना चाहिए -

निर्मलं निर्मलीकरणं, पवित्रं पाप नाशनं ।
जिन गन्धोदकं वन्दे, अष्ट कर्म विनाशनं ।।

प्रश्न 19. जप कैसे करना चाहिए ?

उत्तर - णमोकार मन्त्र, अरहंत-सिद्ध, ओम्, इत्यादिक वीतराग मन्त्रों का जप करना चाहिए।

प्रश्न 20. ऐसे वीतराग मन्त्रों का जप करने से हमें क्या फल प्राप्त होता है ?

उत्तर - ऐसे वीतराग मन्त्रों का जप करने से असंख्यात कर्मों की निर्जरा एवं अतिशय पुण्य की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 21. स्वाध्याय क्यों करना चाहिए ?

उत्तर - पुण्य-पाप एवं मोक्षमार्ग को जानने के लिए तथा राग-द्वेष के परिहार के लिए स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रश्न 22. स्वाध्याय करने का क्या फल है ?

उत्तर - स्वाध्याय करने का फल रत्नत्रय की प्राप्ति एवं परम्परा से केवलज्ञान की प्राप्ति है।

प्रश्न 23. मंदिर जी से बाहर आते समय क्या बोलना चाहिए ?

उत्तर - मंदिर जी से बाहर आते समय असहि-असहि-असहि बोलना चाहिए।

प्रश्न 24. असहि का अर्थ क्या है ?

उत्तर - असहि का अर्थ है कि अब मैं बाहर जा रहा हूँ, आप अपनी जगह ग्रहण कर सकते हैं।

प्रश्न 25. मानस्तम्भ किसे कहते हैं ?

उत्तर - मान कषाय को गलाने वाले स्तम्भ विशेष को मानस्तम्भ कहते हैं। (मानस्तम्भ समवसरण में चारों दिशाओं में एक-एक की संख्या से चार होते हैं।)

प्रश्न 26. यहाँ पंचम काल में मानस्तम्भ क्यों बनाते हैं ?

उत्तर - भगवान के समवसरण की स्मृति विशेष के लिए मानस्तम्भ बनाते हैं।

प्रश्न 27. मानस्तम्भ में किसकी प्रतिमा होती है ?

उत्तर - मानस्तम्भ में अरहंत परमेष्ठी की प्रतिमा होती है।

प्रश्न 28. भगवान महावीर के समवसरण के समय मानस्तम्भ देखने से जिसका मान खण्डित हुआ था ऐसे विशेष व्यक्ति का नाम बतलाइए ?

उत्तर - ऐसे विशेष व्यक्ति का नाम था 'इन्द्रभूति गौतम' (जो बाद में मुनि बनकर गणधर परमेष्ठी बना)।

प्रश्न 29. मंदिर के ऊपर शिखर क्यों बनाते हैं ? उसका महत्त्व बतलाइए।

उत्तर - मंदिर के ऊपर शिखर बनाने में मुख्य चार कारण हैं -

1. शिखर बनाने से जिन मंदिर की पूर्ण शोभा होती है।
2. मनुष्य, देव, विद्याधर इत्यादिक को शिखर दिखने से मंदिर के निश्चित स्थान का ज्ञान होता है।
3. शिखर में ओंकारादि मंगल ध्वनि गुंजायमान होती है।
4. मंदिर का उत्तुंग शिखर देखने से मानव का मान खण्डित होता है।

प्रश्न 30. सुना जाता है कि ध्वजा के बिना जिनालय के शिखर की शोभा नहीं होती, अतः श्रावक लोग जो मंदिर के शिखर पर स्वस्तिक सहित त्रिकोण या चतुष्कोण वाली केशरिया ध्वजा लगाते हैं उसमें विशेष क्या लाभ हैं?

उत्तर - इस प्रकार की ध्वजा जिनालय के शिखर के ऊपर लगाने में हमें निम्नलिखित लाभ हैं :-

1. इस प्रकार की ध्वजा से जिनालय की दूर से ही पहचान होती हैं।

2. स्वस्तिक सहित केशरिया ध्वजा शुभ का प्रतीक है।
3. स्वस्तिक सहित केशरिया ध्वजा को अष्ट मंगलों के अंतर्गत ग्रहण किया जाता है।
4. इस प्रकार की स्वस्तिक सहित केशरिया रंग की शुभ एवं मंगल रूप ध्वजा जैनधर्म की प्रभावना का प्रतीक है।

इसी तरह पंच वर्ण की ध्वजा को भी जैनधर्म का प्रतीक माना है, अतः उसे भी लगाना श्रेष्ठ है।

प्रश्न 31. सच्चे देव, शास्त्र, गुरु को परमार्थ वैद्य क्यों कहा गया है?

उत्तर - क्योंकि जैसे शरीर के रोगों का उपचार करने वाले व्यक्ति लौकिक वैद्य कहे जाते हैं, वैसे ही सच्चे देव-शास्त्र-गुरु हमारी आत्मा के जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों का उपचार करते हैं इसलिए उन्हें परमार्थ वैद्य कहा गया है।

प्रश्न 32. महिलाएं (स्त्रियां) भगवान एवं गुरु को स्पर्श क्यों नहीं कर सकतीं?

उत्तर - क्योंकि गुरु अर्थात् महाव्रती मुनि अठारह हजार प्रकार के शीलों के धारक होते हैं तथा जिन शीलों में अचेतन (काष्ठादि से निर्मित) स्त्री का स्पर्श भी निषिद्ध है और भगवान तो मुनि से भी बड़े महान हैं अतः ऐसा जानकर के महिलाओं को पाप एवं दोषों के भय से, महाव्रती अठारह हजार शीलों के धारक भगवान एवं गुरु का स्पर्श नहीं करना चाहिए एवं गुरु आदिक के व्रतों में बाधक नहीं बनना चाहिए।

प्रश्न 33. जिनमंदिर जी में आकर जिनेन्द्र देव के दर्शन करने से पाँच लाभ (महत्त्व) बतलाइए?

उत्तर - जिनमंदिर जी में आकर जिनेन्द्र देव का दर्शन करने से -

1. अनेक उपवासों के बराबर फल प्राप्त होता है।
2. असंख्यात कर्मों की निर्जरा होती है।
3. बहुत पुण्य कर्म की प्राप्ति होती है।
4. मन के विकारी भाव नष्ट हो जाते हैं।
5. दर्शनार्थी का जीवन मंगलमय सुखकारी होता है।

प्रश्न 34. दर्शनस्तोत्र, कषायपाहुड और धवला आदि ग्रन्थों में जिनेन्द्रदेव के दर्शन की महिमा के सम्बन्ध में और क्या विशेष कथन किया गया है?

उत्तर - पूर्वाचार्यों ने दर्शन पाठ-(स्तोत्र) में कहा है कि -

दर्शनं देव देवस्य, दर्शनं पाप नाशनं ।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं, दर्शनं मोक्ष साधनं ॥

अर्थ-देवाधिदेव (वीतराग जिनेन्द्र भगवान) का दर्शन पाप कर्मों का नाश करने वाला है और वह दर्शन स्वर्ग की प्राप्ति के लिए सीढ़ियों के समान है एवं मोक्ष प्राप्ति का श्रेष्ठ साधन (उपाय) है।

कषाय पाहुड की पहली पुस्तक में कहा है कि -

''अरहंत णमोक्कारो संपहियबंधादो असंख्येज्ज गुण कम्मक्खयकारओत्ति''।

अर्थ-अरहंत दर्शन (नमस्कार) तत्कालीन बंध की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण है।

धवला ग्रन्थ की छठवीं पुस्तक में भी कहा गया है कि -**'जिणबिम्बदंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स वि मिच्छत्तादिकम्म कलावस्स खयदंसणादो।**

अर्थ-जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्ति और निकाचित रूप भी मिथ्यात्वादि कर्मकलाप का क्षय देखा जाता है।

प्रश्न 35. एक पत्थर की मूर्ति में पूज्यता कैसे आती है?

उत्तर - पंचकल्याणक प्रतिष्ठा (स्थापना) एवं मंत्र संस्कारादि से एक पत्थर की मूर्ति (प्रतिमा) में पूज्यता आ जाती है एवं उस पञ्चकल्याणक से प्रतिष्ठित मूर्ति में प्रायः कई अतिशय (चमत्कार) भी देखे जाते हैं।

प्रश्न 36. मानव को णमोकार मन्त्र पढ़ने का, जैनधर्म के नियम पालन करने का और जिनमंदिर जाने आदि सद्धर्म का संस्कार कब दिया जाता है?

उत्तर - मानव को यह सद्धर्म का संस्कार बचपन (बालक, बालिका-रूप प्राथमिक अवस्था) में दिया जाता है।

प्रश्न 37. मानव को यह सद्धर्म का संस्कार बचपन में ही देना क्यों आवश्यक है? विशेष उदाहरण द्वारा बतलाइए।

उत्तर - क्योंकि बचपन अवस्था में बच्चों का हृदय या परिणाम बहुत कोमल एवं सरल होता है तथा ऐसे कोमल एवं सरल हृदय पर माता-पिता द्वारा जो सद्धर्म का संस्कार दिया जाता है, वह संस्कार बच्चों पर जीवन के अंत समय तक स्थित बना रहता है। और जब बच्चे धर्म संस्कार के दिये बिना ही बड़े हो जाते हैं एवं हृदय अधर्म के संस्कार के साथ कठोर तथा विकृत हो जाता है तब उनके विकृत हृदय को परिवर्तित करना प्रायः बहुत कठिन होता है। जैसे-1. एक अंगूर (द्राक्ष) की अंकुरित हुई छोटी लता (पौधा) को रस्सी या लकड़ी का सहारा देकर सहजता के साथ योग्य दिशा में ले जाया जा सकता है। लेकिन किसी सहारे के अभाव में उसी लता के विपरीत दिशा में जाने के उपरान्त बड़ी और कठोर होने के उपरान्त उसकी दिशा को परिवर्तित करना बहुत कठिन या असंभव होता है। इसी तरह 2. मिट्टी जब तक कोमल गीली अवस्था में होती है, तब तक उसे घट, दीपक आदि का आकार दिया जा सकता है और जब वही मिट्टी सूखकर कठोर हो जाती है, तब उस सूखी हुई मिट्टी को कोई घटादि का आकार देना संभव नहीं।

उपर्युक्त कथन से भली प्रकार समझते हुए, बच्चों को प्राथमिक (बचपन) अवस्था में

ही धर्म का संस्कार देना परम आवश्यक है।

प्रश्न 38. एक छोटे अल्पज्ञ बालक पर णमोकार मन्त्रादिक के संस्कार का प्रभाव कैसे पड़ सकता है?

उत्तर - ऐसा नहीं ! जब एक पत्थर की अचेतन मूर्ति पर णमोकार मन्त्र, सूरि मन्त्र आदि के संस्कार का प्रभाव पड़ सकता है एवं उस संस्कारित मूर्ति में अतिशय भी हो सकते हैं, तब सचेतन बालक पर णमोकार मन्त्रादिक के संस्कार का प्रभाव क्यों नहीं पड़ सकता ? अर्थात् अवश्य पड़ सकता है।

प्रश्न 39. मंदिर जी में धर्म संस्कार के लिये स्थापित धार्मिक पाठशाला में पढ़ने से (भाग लेने से) भव्यात्माओं को कौन-कौन से अपूर्व लाभ हैं ?

उत्तर - मंदिर जी में धर्म संस्कार के लिये स्थापित धार्मिक पाठशाला में पढ़ने से भव्यात्माओं को ग्यारह अपूर्व लाभ हैं -

1. जैन दर्शन का (जैन फिलासफी का) सच्चा ज्ञान होता है।
2. रूढ़िवाद से हम दूर होते हैं।
3. मंदिर आने की विधि का अथवा दर्शन विधि का हमें ज्ञान होता है।
4. हमारे आराध्य पञ्च परमेष्ठी के गुणों का एवं उनके जीवन दर्शन (चरित्र) का हमें ज्ञान होता है।
5. मंदिर में की जाने वाली समीचीन पूजनादि क्रियाओं का महत्त्व मालूम पड़ता है।
6. सप्तव्यसन जीवन में नहीं आ पाते।
7. पाठशाला में हमें जैन संस्कृति एवं धर्मायतनों की रक्षा की प्रेरणा मिलती है।
8. मुनि या साधु भक्ति, सेवा की हमें शिक्षा मिलती है।
9. पाठशाला में पूर्वाचार्यों द्वारा रचित जिनवाणी का सदुपयोग होता है एवं अनेकान्तमय जिनवाणी के स्वाध्याय से हमें चारों अनुयोगों या तीनों लोकों का ज्ञान होता है।
10. पाठशाला में रहकर धार्मिक कार्य करने से हम पाप कर्म से दूर रहते हैं एवं बहुत पुण्य का सम्पादन तथा असंख्यात कर्मों की निर्जरा करते हैं।
11. पाठशाला से प्राप्त हुआ धर्म संस्कार जीवनपर्यंत स्थायी रहते हुए आत्मोन्नति एवं सद्गति का कारण होता है।

प्रश्न 40. उस उपकारी माँ का नाम क्या था जिसने संकल्प किया था कि मेरे जितने बेटे होंगे मैं उन सभी बेटों को मुनि बनने का संस्कार दूँगी ? जिसके पुण्य से में भी अगले भव में मुनि बन मोक्ष प्राप्त कर सकूँ ?

उत्तर - उस उपकारी माँ का नाम था 'मदालसा माँ'।

अध्याय 5.
व्यसन मुक्ति, शाकाहार
(जैनी की पहचान)

व्यसन से हानि

आज की नई पीढ़ी को बुरे व्यसनों में आसक्त होने के पश्चिमी देशों से आए हुए अनेक साधन उपलब्ध होते जा रहे हैं और आज के बहुतायत लोग ऐसे साधनों एवं बुरी संगति से अपने जैनीपन के लक्षण से परे होते जा रहे हैं, इस कारण यहाँ 'व्यसन मुक्ति, शाकाहार (जैनी की पहचान)' रूप पञ्चम अध्याय का प्रसंग उपस्थित किया गया है।

प्रश्न 1. जैन किसे कहते हैं ?

उत्तर - "**इन्द्रियाणि जयतीति जिनः**" - इन्द्रियों को जीतने वाले जिन कहलाते हैं और ऐसे जिन अर्थात् जिनेन्द्र भगवान के द्वारा बतलाए गये मार्गानुसार जो चलता है,उसे जैन कहते हैं।

प्रश्न 2. जैनी (जैनधर्म के पालक) की पहचान क्या है ?

उत्तर - जैनी की पहचान निम्नलिखित पाँच कर्तव्यों से होती है-

1. सप्तव्यसन का त्याग करना।
2. नित्य वीतराग जिनेन्द्र देव का दर्शन करना।
3. रात्रिभोजन का त्याग करना।
4. जल छान करके पीना।
5. अहिंसा धर्म के पालन हेतु, महा जीव हिंसा से निर्मित चमड़ा, रेशम (सिल्क) आदि की वस्तुओं का उपयोग नहीं करना।

(जैनी भव्यात्माओं को निर्माल्य द्रव्य का भी त्याग करना चाहिए)।

प्रश्न 3. इस लोक में 'व्यसन' शब्द का अर्थ क्या है ?

उत्तर - बहुत मुश्किल से छूटने वाली बुरी आदतें इस लोक में व्यसन कहलाती हैं।

प्रश्न 4. सप्तव्यसन के नाम क्या हैं ?

उत्तर - 1. जुआ खेलना 2. चोरी करना 3. शिकार करना 4. माँस खाना 5. शराब पीना 6.परस्त्री सेवन और 7. वेश्यागमन; ये सप्तव्यसन कहलाते हैं।

प्रश्न 5. सप्तव्यसन से होने वाली पाँच हानियाँ (दोष) बतलाइए ?

उत्तर - व्यसन करने से -

1. मानव का शरीर रोगी बन जाता है।
2. परिणाम क्रूर हो जाते हैं।
3. धर्म से श्रद्धा समाप्त हो जाती है।
4. लोग उसे बुरी नजरों से देखते हैं।
5. पाप के बन्ध से दुर्गति में गमन करता है।

प्रश्न 6. लोगों के लिए तम्बाखू खाने से क्या हानियाँ हैं ?

उत्तर - लोगों के लिए तम्बाखू खाने से मुख्य रूप से दो हानियाँ हैं-

1. तम्बाखू खाने से व्यक्ति को बहुत नशा आता है।
2. तम्बाखू में वैज्ञानिकों के अनुसार 'निकोटिन' नामक जहर होता है जिससे तम्बाखू खाने वाले बहुतायत व्यक्तियों को कैंसर रोग हो जाता है।

प्रश्न 7. शाकाहार किसे कहते हैं ?

उत्तर - वनस्पतियों से उत्पन्न आहार को शाकाहार कहते हैं।

शाकाहार में सभी प्रकार के धान्य, फल-फूल, साग-सब्जियां एवं दूध से निर्मित पदार्थ ग्रहण किए जाते हैं।

प्रश्न 8. मानव का आहार क्या है ?

उत्तर - मानव का आहार शाकाहार है।

प्रश्न 9. शाकाहारी पशुओं में से कोई ग्यारह पशुओं के नाम लिखिए ?

उत्तर - गाय, बैल, भैंस, बन्दर, ऊंट, घोड़ा, हाथी, हिरण, बकरी, खरगोश और जेब्रा।

प्रश्न 10. माँसाहारी कौन कहलाता है ?

उत्तर - जो अण्डा खाता है एवं मछली, मुर्गे, बकरे आदि जीवों के माँसादि को खाता है, वह माँसाहारी कहलाता है।

प्रश्न 11. माँसाहारी जानवरों में से कोई छह जानवरों के नाम लिखिए ?

उत्तर - चीता, सिंह, कुत्ता, बिल्ली, सर्प और सियार।

प्रश्न 12. शाकाहारी और माँसाहारी प्राणी में शरीरादि की अपेक्षा कुछ अंतर बतलाइए ?

उत्तर – शाकाहारी और माँसाहारी प्राणी में अंतर–

शाकाहारी	मांसाहारी
1. माँसाहारी प्राणी के दांत नुकीले होते हैं ।	1.शाकाहारी प्राणियों के दांत चौकोर जैसे होते हैं ।
2. माँसाहारी प्राणी के नाखून लंबे एवं नुकीले होते हैं ।	2. शाकाहारी प्राणियों के नाखून छोटे एवं चौकोर जैसे होते हैं ।
3. माँसाहारी प्राणी जिह्वा के द्वारा पानी पीता है ।	3. शाकाहारी प्राणी ओष्ठ (ओंठ) के द्वारा पानी पीते हैं ।
4. माँसाहारी प्राणी क्रूर परिणाम वाला होता है ।	4. शाकाहारी प्राणी स्वभाव से ही शांत परिणामी होते हैं ।

प्रश्न 13. दूध कैसे बनता है ?

उत्तर – गाय, भैंस इत्यादिक शाकाहारी प्राणियों का दूध उनके द्वारा किये गए शाकाहार से बनता है ।

प्रश्न 14. शाकाहारी प्राणियों का दुग्ध शाकाहारी एवं शुद्ध है इसके सम्बन्ध में कुछ योग्य तर्क दीजिए ?

उत्तर –

1. गाय आदि शाकाहारी प्राणी जो शाकाहार (भोजन) करते हैं, उनके शरीर में उससे अर्थात् किये गए शाकाहार के कुछ अंश से सीधा दुग्ध तैयार होता है ।
2. गायादि के शरीर में स्थित दुग्ध का रक्त माँस, चर्बी आदि सप्त धातुओं से बिल्कुल भी सम्बन्ध नहीं है ।
3. परीक्षा के लिए अगर गाय आदि को नीम खिलायी जाए तो दुग्ध कड़वा निकलता है ।
4. गायादि के शरीर में दुग्ध स्थिर रहने की थैली अन्य स्थानों से बिल्कुल भिन्न होती है ।
5. गायादिक पशुओं का पूरा दुग्ध उसका बच्चा नहीं पी सकता और अगर बाध्य करके पिलाया भी जाए तो बीमार हो जाता है ऐसा चिकित्सक लोग कहते हैं ।
6. अगर गाय आदिक प्राणियों का दुग्ध न निकाला जाए तो उसके अंदर स्थित वह दुग्ध उनको कष्ट का कारण होता है ।
7. ऐसे शाकाहारी प्राणियों का दुग्ध (शुद्ध) और उससे निर्मित दही एवं घी को धर्म शास्त्रों के अन्तर्गत षट् रसों में ग्रहण किया गया है तथा जिनका सेवन महापुरुषों के द्वारा भी हुआ है ।

   विशेष–गायादिक का दुग्ध उसके बच्चे को नहीं पिलाया जाना या मात्रा में कम पिलाना और अविवेक क्रूरता अपनाना यह महापाप का कारण है । माँसाहारियों के सम्पर्क का दुग्धादि संदिग्ध होने से त्याज्य है, ग्रहण करने योग्य नहीं है ।

प्रश्न 15. शाकाहार करने से होने वाले पाँच लाभ बतलाइए ?

उत्तर – शाकाहार करने से –

1. शरीर में अनेक रोगों की उत्पत्ति नहीं होती ।

2. परिणाम सुशान्त रहते हैं।
3. धर्म में अच्छा मन लगता है, जिनालय में प्रवेश करने एवं शास्त्र छूने की योग्यता रहती है।
4. मुख से दुर्गन्ध नहीं आती।
5. शरीर शक्तिमान (बलशाली) बनता है।

प्रश्न 16. क्या किसी ने कभी सिंह को भी शाकाहारी बनाया था ?

उत्तर - हाँ! जयपुर नगर में राजतन्त्र काल में 'दीवान अमरचन्द जैन' ने एक सिंह को जलेबी खिलाकर उसे शाकाहारी बनाया था।

प्रश्न 17. चमड़े में रखे हुए पदार्थों के सेवन करने में क्या दोष आता है ?

उत्तर - माँस के समान दोष आता है।

प्रश्न 18. आज के समय में चमड़े से निर्मित वस्तुएं जैसे-थैली, पादत्राण (जूता-चप्पल), पट्टा (बेल्ट), टोप आदि के उपयोग करने में क्या दोष आता है ?

उत्तर - आज के समय में ये सभी वस्तुएं प्रायः अनेक संज्ञी-पञ्चेन्द्रिय प्राणियों की हिंसा करके उनके चमड़े से बनाई जाती हैं, इसलिए इनके उपयोग करने से संज्ञी पञ्चेन्द्रिय प्राणी की हिंसा का दोष आता है।

प्रश्न 19. आज के वैज्ञानिक युग में निर्मित दन्तशुद्धि पदार्थ (टूथपेस्ट), केशसुरक्षा द्रव (शैम्पू), ओष्ठलेप (लिपिस्टिक), नाखून लेप (नेलपॉलिश) आदि सौन्दर्य प्रसाधन की वस्तुएं भी हिंसा से बनी हुई हैं क्या ?

उत्तर - हाँ! कोई-कोई कारखाने (फैक्ट्री) इन वस्तुओं को चर्बी, हड्डी का चूरा या रक्तादि मिलाकर बड़े हिंसक तरीके से बनाते हैं, तथा इन पदार्थों के परीक्षण हेतु हजारों प्राणियों के प्राणघात होते हैं ।

प्रश्न 20. स्नान शुद्धि लेप जिसे लोग साबुन (सोप) बोलते हैं, वह भी क्या अशुद्ध तरीके से बनाया जाता है ?

उत्तर - हाँ! कोई-कोई स्नान लेपों (साबुनों) में आजकल पशुओं की चर्बी मिलाई जाती है।

प्रश्न 21. आज के इस वैज्ञानिक युग में गृहस्थ लोग अपनी दैनिक चर्या में इस भारी हिंसा के दोष से कैसे बच सकते हैं ?

उत्तर - लोगों को बाजार से आवश्यक सामग्री खरीदते समय दुकानदार से पूछना चाहिए कि यह सामग्री हिंसक तरीके से बनी है या अहिंसक तरीके से बनी है। लोग अगर अपनी दैनिक चर्या में विवेक के साथ काम करेंगे तो इस हिंसा के दोष से अवश्य बच सकेंगे।

प्रश्न 22. नेमिनाथ भगवान ने संसार से वैरागी बन गृह का त्याग क्यों कर दिया था ?

उत्तर - नेमिनाथ भगवान ने, बंधन में बंधे हुए पशुओं की हिंसा होगी; ऐसा जानकर संसार से वैरागी बन गृह का त्याग कर दिया था। (जिससे जगत् को अहिंसा परमो धर्म के पालन का महान् संदेश मिला)।

अध्याय 6.
पूजन माहात्म्य

आज पूजा के माहात्म्य एवं उसकी विधि की अनभिज्ञता में एकान्त पक्षी या निश्चयवादी लोग भक्त नहीं भगवान बनेंगे ऐसे मिथ्या वचनों का प्रचार कर रहे हैं और एक तरफ अंध श्रद्धालु देवमूढ़ता से मंडित लोग वीतराग प्रभु की भक्ति छोड़कर मिथ्यात्व पोषक सरागी देवी, देवताओं की भक्ति-पूजा में लीन हो रहे हैं, अतः पूजा के फल को दर्शाते हुए एवं मिथ्यात्व के निराकरण हेतु यहाँ 'पूजन माहात्म्य' रूप छठवें अध्याय को प्रकट किया है।

प्रश्न 1. पूजा किसे कहते हैं ?

उत्तर - पूज्य के उत्तम गुणों के गान को पूजा कहते हैं।

प्रश्न 2. पूज्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - वीतरागी सच्चे देव, सच्चे गुरु और सच्चे शास्त्र को पूज्य कहते हैं।

प्रश्न 3. पूजक (पूजन करने वाला) कौन होता है।

उत्तर - सच्चे देव, सच्चे गुरु, सच्चे शास्त्र पर अटूट श्रद्धा रखने वाला पूजक होता है।

प्रश्न 4. पूजन करने का अधिक श्रेष्ठ समय कौन सा है ?

उत्तर - पूजन का अधिक श्रेष्ठ समय प्रातःकाल है।

प्रश्न 5. श्रावकों को नित्य पूजा प्रातःकाल में ही करना अधिक श्रेष्ठ क्यों है ?

उत्तर -
1. प्रातःकाल (सूर्योदय) का वातावरण मनोहर, सुसौम्य होता है अतः ऐसे सुंदर वातावरण में प्राणियों के परिणाम धर्म के योग्य अधिक सुशान्त, प्रमाद से रहित निर्मल होते हैं।
2. दर्शन व पूजा एक मंगल क्रिया है और ऐसी क्रिया मंगलकारी विघ्ननाशक होने से श्रावकों को अपने दैनिक कार्यों के पहले (प्रारम्भ के समय) प्रातःकाल में करना अधिक श्रेष्ठ है।

पद्मनन्दी पञ्चविंशतिका शास्त्र में भी कहा गया है कि -

ये जिनेन्द्रं न पश्यन्ति, पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फलं जीवितं तेषां, तेषां धिक् च गृहाश्रमम् ॥ 15 ॥
प्रातरुत्थाय कर्तव्यं, देवता गुरु दर्शनम् ।
भक्त्या तद्वन्दना कार्या, धर्मश्रुतिरुपासकैः ॥16 ॥

अर्थ-जो जीव भक्ति से जिनेन्द्र भगवान का न दर्शन करते हैं, न पूजन करते हैं और न ही स्तुति करते हैं उनका जीवन निष्फल है तथा उनका गृहस्थाश्रम में रहना धिक्कार है। श्रावकों को प्रातःकाल में उठ करके भक्ति से जिनेन्द्र देव तथा निर्ग्रन्थ गुरु का दर्शन और उनकी वन्दना

करके धर्म श्रवण करना चाहिए। (तत्पश्चात्, अन्य कार्यों को करना चाहिए)।

प्रश्न 6. पूजा कितने प्रकार की होती है और कौन-कौन सी ?

उत्तर - पूजा मुख्यतः दो प्रकार की होती है -

1. द्रव्य पूजा 2. भाव पूजा ।

प्रश्न 7. द्रव्य पूजा किसे बोलते हैं ?

उत्तर - गृहस्थों द्वारा जो शुद्ध अष्ट द्रव्यों के साथ वीतराग देव, शास्त्र, गुरु के गुणों का गान किया जाता है, उसे द्रव्य पूजा कहते हैं।

प्रश्न 8. भाव पूजा किसे बोलते हैं ?

उत्तर - मुख्यतः गृह त्यागियों द्वारा शुद्ध भावों से जो देव-शास्त्र-गुरु की स्तुति, वन्दना, भक्ति की जाती है, वह भाव पूजा कहलाती है।

प्रश्न 9. अन्य तरह से पूजा के भेद कौन से हैं ?

उत्तर - शास्त्रों में पूजा के 1. नित्य पूजा 2. नैमित्तिक पूजा ऐसे दो भेद भी कहे गए हैं।

प्रश्न 10. नित्य पूजा एवं नैमित्तिक पूजा के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर -

1. **नित्य पूजा**-शरीर एवं वस्त्रादिक की शुद्धता के साथ जो प्रतिदिन अपने गृह में या जिनालय में, पञ्चकल्याणक में प्रतिष्ठित जिनेन्द्र भगवान की या सच्चे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की पूजन की जाती है वह नित्य पूजा कहलाती है। आयतनों के योग्य दान देना इसी पूजा का भेद है।
2. **नैमित्तिक पूजा**-जो पूजा विशेष पर्व या विशेष तिथियों में की जाती है, उसे नैमित्तिक पूजा कहते हैं। उसे मुख्य रूप से सात तरह की समझना चाहिए जैसे -

(1) **चतुर्मुख (सर्वतोभद्र) पूजा**-जो मण्डलेश्वर राजा, महाराजाओं द्वारा पूजा की जाती है, उसे चतुर्मुख सर्वतोभद्र पूजा कहते हैं।

(2) **कल्पद्रुम पूजा**-जो छह खण्ड पृथ्वी के अधिपति चक्रवर्ती के द्वारा मनवांछित वस्तु देकर पूजा की जाती है, उसे कल्पद्रुम जिनेन्द्र पूजा कहते हैं।

(3) **अष्टाह्निक पूजा**-जो भव्यात्माओं द्वारा नन्दीश्वर पर्व में पूजा की जाती हैं, उसे अष्टाह्निक पूजा कहते हैं।

(4) **इन्द्रध्वज पूजा**-जो इन्द्रादिक देवों द्वारा पूजा की जाती है, उसे इन्द्रध्वज पूजा कहते हैं।

(5) **सोलहकारण पूजा**-जो सोलहकारण पर्व में पूजा की जाती हैं, उसे सोलहकारण पूजा कहते हैं।

(6) **दशलक्षण पूजा**-जो दशलक्षण (पर्युषण) पर्व में पूजा की जाती है, उसे दशलक्षण पूजा कहते हैं।

(7) **कल्याणक पूजा**-जो भगवान के कल्याणकों में पूजा की जाती है, उसे कल्याणक पूजा

कहते हैं।

प्रश्न 11. द्रव्य पूजा करते समय लोगों को शुद्ध वस्त्र पहनने की आवश्यकता क्यों है?

उत्तर - बहिरंग शुद्धि का अंतरंग शुद्धि पर बड़ा प्रभाव पड़ता है अर्थात् वस्त्रादिक की शुद्धि होने पर मन भी पवित्र बनता है। इसी तरह अशुद्ध स्थान पर जाने पर या अशुद्ध वस्तु के स्पर्श होने पर वस्त्रादिक में बैक्टेरिया या वायरस की उत्पत्ति होती है ऐसा वैज्ञानिकों का भी कहना है।

प्रश्न 12. पूजन की अष्ट द्रव्यों के नाम बतलाइए?

उत्तर - पूजन की अष्ट मंगल द्रव्यों के नाम - 1. दिव्य जल 2. दिव्य चन्दन 3. दिव्य अक्षत 4. दिव्य पुष्प 5. दिव्य चरु 6. दिव्य दीप 7. दिव्य धूप 8. दिव्य फल।

प्रश्न 13. पूजन करते समय भव्यों का क्या उद्देश्य होता है?

उत्तर - पूजन करते समय भव्यों का उद्देश्य कर्मक्षय एवं मोक्ष प्राप्ति होता है।

प्रश्न 14. पूजन की अष्ट द्रव्यों को चढ़ाते समय वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में क्या भावना भाना चाहिए?

उत्तर - वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में -

1. दिव्य जल को चढ़ाते समय- मेरे जन्म-जरा-मृत्यु रूपी रोग नष्ट हो जाएं।
2. दिव्य चंदन को चढ़ाते समय - मेरा संसार ताप (दुःख) मिट जाए।
3. दिव्य अक्षत को चढ़ाते समय- मुझे अक्षय (मोक्ष) पद की प्राप्ति हो।
4. दिव्य पुष्प को चढ़ाते समय- मेरी कामवासना नष्ट हो जाए।
5. दिव्य चरु को चढ़ाते समय -मेरे क्षुधारोग (भूख)का निवारण हो जाए।
6. दिव्य दीप को चढ़ाते समय - मेरा अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हो जाए।
7. दिव्य धूप को चढ़ाते समय - मेरे अष्ट कर्म नष्ट हो जाएं।
8. दिव्य फल को चढ़ाते समय - मुझे मोक्ष फल की प्राप्ति हो।

ऐसी भावना भानी चाहिए।

प्रश्न 15. हमारे अहिंसा प्रधान जैनधर्म में यहाँ पूजा के प्रसंग में दिव्य पुष्प से कौन-सा पुष्प लिया गया है?

उत्तर - हमारे अहिंसा प्रधान जैनधर्म में यहाँ पूजा के प्रसंग में दिव्य पुष्प से दैविक स्वर्णमय, रत्नमय पुष्प या पृथ्वीकाय रूप कल्पवृक्ष से प्राप्त (द्वि-इन्द्रियादिक त्रस जीवों के सम्पर्क से रहित) पुष्प लिया गया है।

प्रश्न 16. आज ऐसे स्वर्गिक स्वर्णमय, रत्नमय पुष्पों एवं कल्पवृक्ष से प्राप्त नाना प्रकार के शुद्ध पुष्पों के अभाव में दयावान, विवेकवान श्रावकगण सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पूजन करते समय जो 'सूखे पुष्प लवंग' या पीले चावलों (अक्षतों) का प्रयोग करते हैं अर्थात् स्थापना निक्षेप से चावलों को पीला कर उनमें दिव्य पुष्पों की स्थापना कर लेते हैं, उनका ऐसा कार्य श्रेष्ठ, प्रशंसनीय है क्या?

उत्तर - हाँ! अवश्य श्रेष्ठ प्रशंसनीय है।

विशेष-श्रावक प्रयोजनीय एकेन्द्रिय सम्बन्धी स्थावर जीवों का त्यागी तो नहीं होता लेकिन उसे द्वि-इन्द्रियादिक त्रस जीवों की हिंसा से अवश्य बचना चाहिए।

प्रश्न 17. वीतराग देव शास्त्र-गुरु के चरणों में अर्घ चढ़ाते समय क्या बोलना चाहिए?

उत्तर - वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में अर्घ चढ़ाने के पहले यह पद्य बोलना चाहिए और बाद में अर्घ चढ़ाना चाहिए।

देव- उदक चंदन तंदुल पुष्पकैः, चरुसुदीप सुधूप फलार्घ्यकैः।
धवल मंगल गान रवाकुले, जिन गृहे जिननाथ महं यजे॥
ॐ ह्रीं अर्हं श्री महावीर तीर्थंकराय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामिति स्वाहा।

शास्त्र-उदक चंदन तंदुल पुष्पकैः चरु सुदीप सुधूप फलार्घ्यकैः।
धवल मंगल गान रवाकुले, जिनगृहे जिन शास्त्रमहं यजे॥
ॐ ह्रीं श्री जिनशास्त्रेभ्यो अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामिति स्वाहा।

गुरु- उदक चंदन तंदुल पुष्पकैः, चरुसुदीप सुधूप फलार्घ्यकैः।
धवल मंगल गान रवाकुले, जिनगृहे मुनिराज महं यजे॥
ॐ ह्रः गुरुवरश्री 108 ------ मुनीन्द्राय अनर्घ पद प्राप्ताय अर्घं निर्वपामिति स्वाहा।

प्रश्न 18. इस प्रकार वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में अर्घ चढ़ाते समय क्या भावना भाना चाहिए?

उत्तर - मुझे भी आपके समान अनर्घ पद की प्राप्ति हो ऐसी भावना भाना चाहिए।

प्रश्न 19. अनर्घ पद किसे कहते हैं?

उत्तर - पञ्चपरमेष्ठी के पद को अनर्घ पद बोलते हैं। (अनर्घ का अर्थ बहुमूल्य होता है)।

प्रश्न 20. पूजन में 'स्वाहा' शब्द आता है उसका अर्थ क्या है?

उत्तर - जैनाचार्य श्री भावसेन द्वारा रचित एक 'कातन्त्ररूपमाला' व्याकरण शास्त्र है, उसके कारक प्रकरण में 'स्वाहा' का अर्थ हुताशनाय दिया है और हुताशनाय का अर्थ होता है 'अग्नि में जलाने के लिए'। प्रतिष्ठा रत्नाकर में शान्तिकं पौष्टिकं च भी अर्थ है।

प्रश्न 21. जिनेन्द्र भगवान की आराधना (भक्ति) की सामर्थ कितनी होती है यह बतलाइये?

उत्तर - जिनेन्द्र भगवान की एक भक्ति मात्र इतनी सामर्थ रखती है कि वह भक्ति दुर्गति का निवारण कर देती है, आत्मा को पुण्य से भरपूर कर देती है और अंत में मुक्ति रूपी लक्ष्मी अर्थात् मोक्ष को प्रदान करा देती है; अर्थात् वीतराग प्रभु का भक्त दुर्गतियों से छूटता हुआ सातिशय पुण्य सम्पदा को पाता हुआ एक दिन मोक्ष पद को भी पा लेता है। पूज्यपादाचार्य ने समाधि भक्ति में कहा ही है कि-

एकापि समर्थेयं जिन भक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम्।
पुण्यानि च पूरयितुं, दातुं मुक्ति-श्रियं कृतिनः॥8॥

प्रश्न 22. श्रावक शुद्ध अष्ट जलादि द्रव्यों को शोधनादि करके दिन में सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पूजा

करता है तब क्या उसकी द्रव्य पूजा में आरम्भ हिंसा का दोष नहीं आता ?

उत्तर - आचार्य श्री समन्तभद्र स्वामी ने वासुपूज्य भगवान की स्तुति करते समय कहा है-हे भगवान! आपकी पूजा करते समय लोगों को हिंसा का लेश मात्र (सूक्ष्म) दोष आता है, लेकिन बहुत पुण्य राशि का अर्जन होता है, जैसे-समुद्र के समान जल की राशि में पड़ी हुई विष की कणिका का कोई अस्तित्त्व नहीं वैसे ही लोगों को उस पूजा द्वारा अर्जित हुए समुद्र के समान पुण्य राशि के सामने एक विष की कणिका के बराबर आरम्भ के दोष का कोई अस्तित्त्व नहीं, वह सूक्ष्म दोष समुद्र के समान अपार पुण्य में विलीन हो जाता है, बदल जाता है।

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य, सावद्य लेशो बहुपुण्य राशौ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य, न दूषिका शीत शिवाम्बुराशौ ॥ 58 स्व. स्तो. ॥

प्रश्न 23. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के समान अष्ट जलादि द्रव्यों से कोई यक्ष, यक्षिणी देवादिक की पूजा करने में कौन-सा दोष आता है ? शास्त्रों के उदाहरण देकर समझाइए।

उत्तर - रत्नकरण्डक श्रावकाचार,अष्टपाहुड, कार्तिकेयानुप्रेक्षा एवं सर्वार्थसिद्धि आदि ग्रंथों के अनुसार भारी (घोर) मिथ्यात्व का दोष आता है।

इस प्रसंग में सोमदेव सूरि (आचार्य) ने भी यशस्तिलकचम्पू काव्य में इस प्रकार कहा है कि -

देवं जगत्त्रयी नेत्रं, व्यन्तराद्याश्च देवताः ।
समं पूजा विधानेषु, पश्यन दूरं व्रजेदधः ॥

अर्थ-तीनों जगत को देखने के लिए नेत्र स्वरूप अरहंत देव को तथा व्यन्तरादिक देवों को जो पूजा-विधान में समान देखता है (मानता है) वह बहुत दूर नीचे जाता है अर्थात् नरक का पात्र होता है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने भी मोक्षपाहुड में कहा है कि -

सपरावेक्खं लिंगं, राईदेवंअसंजदं वंदं।
मण्णई मिच्छादिट्ठि, ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्ती ॥93 ॥

अर्थ-पर की अपेक्षा सहित (विषयों की आशा सहित)लिंग अर्थात् कुगुरु, रागीदेव (वस्त्र शृंगारादिक सहित देव) और असंयमी को जो वन्दनीय मानता है वह मिथ्यादृष्टि है शुद्ध सम्यक्त्वी नहीं, शुद्ध सम्यक्त्वी इन्हें (कुगुरु, रागी देव एवं असंयमी को) वन्दनीय (पूजनीय) नहीं मानता।

प्रश्न 24. वृक्ष, वाहन रुपया-पैसा एवं तराजू आदि की पूजा क्यों नहीं करना चाहिए और करने में क्या दोष आता है ?

उत्तर - वृक्ष तो एकेन्द्रिय तिर्यञ्च जीव हैं एवं वाहन इत्यादिक सभी अचेतन जड़ पदार्थ हैं और इनमें कोई स्थापना के मंत्रों द्वारा भगवान की प्रतिष्ठा नहीं हुई है, तथा ना ही इनमें रत्नत्रयादिक धार्मिक गुण हैं, इस प्रकार ऐसा जानते हुए भी जो लोग इनकी पूजादि करते हैं उन्हें दुर्गति को प्राप्त कराने वाले बड़े मिथ्यात्व का दोष आता है।

प्रश्न 25. शत्रुओं को पराजित करने वाला तलवार आदि शस्त्रों में प्रधान शस्त्र चक्ररत्न जब चक्रवर्ती की आयुध (शस्त्र) शाला में उत्पन्न होता है तब चक्रवर्ती वहाँ आयुधशाला में जाकर उस चक्ररत्न आयुध का आदर मात्र करता है या उसकी अष्ट द्रव्य आदिक से पूजा करने लग जाता है ?

उत्तर - 1. वह चक्ररत्न आयुध शत्रुओं की हिंसा का कारण होने से हिंसोपकरण समान है।

2. वह चक्ररत्न आयुध अचेतन जड़ वस्तु है, कोई भगवान की मूर्ति नहीं।

3. वह चक्ररत्न आयुध चक्रवर्ती आदि में कोई रत्नत्रयादिक धार्मिक गुणों की उत्पत्ति का कारण नहीं।

4. वह चक्ररत्न आयुध सांसारिक वस्तु है, आदि। इस कारण उस चक्ररत्न आयुध की, आयुध शाला में उत्पत्ति के समय चक्रवर्ती उसकी स्वीकारता रूप आदर मात्र करता है, उसकी अष्ट द्रव्य या अर्घादिक से पूजा कदापि नहीं करता। क्योंकि जैनी व्यक्ति तो रत्नत्रयादिक धार्मिक गुणों का उपासक होता है। (चक्ररत्न आयुध हिंसोपकरण समान क्यों हैं ? ऐसा पूछो तो इसका उत्तर यह है कि भरत चक्रवर्ती ने बाहुबली को मारने के भाव से बाहुबली के ऊपर चक्र चलाया था। लक्ष्मण नारायण ने अर्धचक्री रावण को चक्ररत्न आयुध से मार गिराया था। कृष्ण ने जरासन्ध को चक्ररत्न से परास्त किया था, ऐसा पुराण ग्रन्थों से जाना जाता है)।

प्रश्न 26. दीपावली के दिन किस लक्ष्मी की पूजा करनी चाहिए ?

उत्तर - दीपावली के दिन अनंत चतुष्टय या केवलज्ञान रूप लक्ष्मी अर्थात् शास्त्र की पूजा करना चाहिए।

प्रश्न 27. सरागी स्त्री लौकिक लक्ष्मी की पूजा करने में महा मिथ्यात्व का दोष क्यों आता है ?

उत्तर - क्योंकि वह लौकिक लक्ष्मी स्त्री पर्याय से युक्त संसारी होती है एवं शृंगारादि से युक्त होती है और ऐसी सरागी शृंगारादि से युक्त स्त्री रूप लक्ष्मी में अणुव्रत तथा महाव्रतादि गुण भी नहीं पाए जाते इसलिए केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी अर्थात् शास्त्र को छोड़कर अन्य लौकिक लक्ष्मी की पूजा करने में महा मिथ्यात्व का दोष आता है।

प्रश्न 28. श्रावक लोगों को दीपावली के दिन शास्त्र के साथ और किसकी पूजा करनी चाहिए ? एवं पूजा दिन में करना चाहिए या रात्रि में ?

उत्तर - श्रावकों को दीपावली सम्बन्धी अमावस्या के दिन निर्वाण कल्याणक, भगवान महावीर, शास्त्र एवं गणधर परमेष्ठी की पूजा करनी चाहिए। तथा पूजा दिन में ही करना चाहिए कोई भी द्रव्य पूजा रात्रि में नहीं करना चाहिए। अन्यथा भारी हिंसा का दोष लगता है।

प्रश्न 29. दीपावली के पावन प्रसंग में लोग निर्वाण कल्याणक, भगवान महावीर, शास्त्र एवं गणधर परमेष्ठी की पूजा क्यों करते हैं ?

उत्तर - क्योंकि दीपावली के पावन प्रसंग में अमावस्या की सुबह भगवान महावीर केवली को मोक्ष

हुआ था अर्थात् उन्हें मोक्ष (निर्वाण) लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी और अमावस्या के सायंकाल में महामुनि गौतम गणधर परमेष्ठी को केवलज्ञान प्रकट हुआ था अर्थात् उन्हें अनन्त चतुष्टय या केवलज्ञान लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी। इसीलिए सभी लोग दीपावली अमावस्या के दिन सुबह निर्वाण कल्याणक एवं भगवान महावीर की पूजा करते हैं और उसी दिन सायंकाल में केवलज्ञान लक्ष्मी रूप शास्त्र एवं गणधर परमेष्ठी की पूजा करते हैं।

प्रश्न 30. हम जैनों की भी कोई नित्य परम पूज्य माता है क्या?

उत्तर - हाँ! हमारी नित्य परम पूज्य माता जिनवाणी माता (शास्त्र) हैं ।

प्रश्न 31. तीर्थंकर जिनेन्द्र भगवान हम जैनियों के कुल देवता क्यों कहे जाते हैं?

उत्तर - **''इन्द्रियाणि जयतीति जिनः''** पंचेन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने वाले जिनेन्द्र भगवान कहलाते हैं और उनके संदेशों या मार्ग को जो मानता है, वह जैन कहलाता है। अर्थात् हमारे जैन कुल के निर्माता जिनेन्द्र भगवान हैं इसलिए जिनेन्द्र भगवान हम जैनियों के कुल देवता कहे जाते हैं।

प्रश्न 32. हमारे जैनधर्म का श्रेष्ठ पर्व-दशलक्षण पर्व (पर्युषण पर्व) होने के उपरांत कोई अजैन लोग नवरात्रि कार्यक्रम मनाते हैं, तब हमारे जैन लोग भी नवरात्रि क्यों नहीं मनाते?

उत्तर - क्योंकि हमारे जैन सम्यग्दृष्टि लोग तीर्थंकर या पंच परमेष्ठी के उपासक (भक्त) हैं, सरागियों (देवी-देवताओं) के नहीं और हमारे जैन दर्शन में (शास्त्र) में कहीं भी नवरात्रि मनाने का वर्णन नहीं आता इसलिए हमारे जैन कदापि, भूलकर भी अजैनों का कार्यक्रम नवरात्रि नहीं मनाते।

प्रश्न 33. वीतराग देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करते समय श्रावकों को अक्षतादि पूजा द्रव्य देव-शास्त्र-गुरु से कितने दूर चढ़ाना चाहिए?

उत्तर - श्रावकों को अक्षतादि पूजा द्रव्य देव-शास्त्र-गुरु के कम-से-कम तीन चार हाथ दूर चढ़ाना चाहिए।

प्रश्न 34. वीतराग केवली जिनेन्द्र भगवान के बिल्कुल नजदीक अक्षतादि द्रव्य चढ़ाने से क्या दोष आता है?

उत्तर - हमारे वीतराग केवली जिनेन्द्र भगवान क्षुधा, पिपासा, राग, द्वेष आदि अठारह दोषों से रहित होते हैं, शृंगारादि एवं सचित्तादि वस्तुओं के त्यागी होते हैं, उन्हें भूख, प्यासादिक न लगने से वे केवली भगवान कवलाहारी आदि नहीं होते और ऐसे केवली भगवान के बिल्कुल नजदीक (या ऊपर) पूजन सम्बन्धी अक्षतादि द्रव्य चढ़ाने से कोई भी अन्य लोग हमारे वीतराग केवली जिनेन्द्र भगवान को सरागी, कवलाहारी एवं सचित्त स्पर्शी इत्यादिक का दोषारोपण कर सकते हैं इसलिए श्रावकों को विवेक के साथ पूजन सम्बन्धी अक्षतादिक द्रव्य भगवान से कम-से-कम तीन चार हाथ दूर चढ़ाना चाहिए।

प्रश्न 35. पंचकल्याणक से प्रतिष्ठित केवली वीतराग भगवान की मूर्ति में पुनः मात्र गर्भ कल्याणक एवं जन्म कल्याणक की क्रियाएँ कर सकते हैं क्या?

उत्तर - नहीं, कदापि नहीं। क्योंकि अगर पंचकल्याणक से प्रतिष्ठित त्यागमयी केवली वीतराग भगवान की मूर्ति में पुनः मात्र गर्भ कल्याणक एवं जन्मकल्याणक की सराग रूपी क्रियाएं करेंगे तो केवली वीतराग भगवान की मूर्ति की प्रतिष्ठा एवं वीतरागता भी समाप्त या नष्ट हो जाएगी, तब ऐसी स्थिति में उस मूर्ति का दर्शन, वंदन आदि क्रियाएँ सम्यग्दृष्टि जीव एवं मुनिजन कैसे कर सकेंगे ? अर्थात् नहीं कर सकेंगे। हाँ! जिस वीतराग भगवान की मूर्ति पर जीर्णोद्धार के रूप में पुनः लेपादि किया गया है उसका पञ्चकल्याणक करने में यहाँ निषेध नहीं है। लेकिन आज कुछ लोग तीर्थङ्कर की जन्म जयन्ती मनाते समय पञ्चकल्याणक की प्रतिष्ठित वीतराग भगवान की मूर्ति को गर्भ में रख देते हैं एवं उस वीतराग मूर्ति को पालना (झूला) में झुलाने लग जाते हैं तथा वस्त्रादिक से उसकी पूजा करने लग जाते हैं जो आगमानुसार सर्वथा गलत है।

प्रश्न 36. पूजा के पर्यायवाची नाम क्या हैं ?

उत्तर - अर्चना, उपासना, भक्ति, स्तुति, विनय, वैय्यावृत्त, परिचर्या, सपर्या, आराधना इत्यादि पूजा के पर्यायवाची नाम हैं।

प्रश्न 37. पूजन करने का फल क्या है ?

उत्तर - वीतराग देव-शास्त्र-गुरु की पूजन करने का फल-1.दुःखों का नाश 2.कर्मों का क्षय 3.पुण्य का संचय 4. परम्परा से मोक्ष पद की प्राप्ति है।

प्रश्न 38. ऐसे कौन से जैन विद्वान् थे, जिनके लड़के को सर्प ने काट लिया था और वे लड़के को सर्प द्वारा काटे जाने का समाचार ज्ञात होने पर भी वीतराग भगवान की पूजन करते समय पूजा में लीन रहे, भगवान की पूजा छोड़कर अपने लड़के के पास नहीं गए तथा ऐसी वीतराग जिनेन्द्र भगवान की पूजा (भक्ति) के माहात्म्य से जिनके लड़के का विष स्वतः उतर गया था ?

उत्तर - ऐसे जैन विद्वान् थे महाकवि 'धनञ्जय जी'।

प्रश्न 39. वह कौन सा प्राणी था जिसका, समवसरण में पूजा के लिये जाते समय रास्ते में राजा श्रेणिक के हाथी से मरण हुआ और पूजा के भावों से देवगति में उत्पन्न हुआ तथा राजा श्रेणिक से पहले देवगति से आकर भगवान महावीर की पूजा के लिए समवसरण में उपस्थित हो गया था ?

उत्तर - वह था एक तिर्यञ्च प्राणी 'मेंढ़क'।

प्रश्न 40. देव-शास्त्र-गुरु और जिनालय आदिक धर्मायतनों की पूजा अथवा जीर्णोद्धार आदि के निमित्त दान में दिया गया द्रव्य एवं देव-शास्त्र-गुरु आदि धर्मायतनों की पूजन आदि में चढ़ा दिया गया द्रव्य जिसे (अपना स्व स्वामीपना निकल जाने से) निर्माल्य द्रव्य कहते हैं, ऐसे निर्माल्य रूप द्रव्य को ग्रहण (सेवन या उपभोग) करने में आगम के अनुसार क्या दोष आता है ?

उत्तर - निर्माल्य ग्रहण में दोष या हानि -

1. रयणसार ग्रन्थ के अनुसार -

जिणुद्धार- पतिट्ठा, जिणपूजा, तित्थवंदणा वसेसधणं।
जो भुंजइ सो भुंजइ, जिण दिट्ठं - णिरयगइ - दुक्खं ॥ 32 ॥

अर्थ-जिन मंदिर का जीर्णोद्धार, जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, मंदिर प्रतिष्ठा, जिनेन्द्र पूजा, तीर्थ वन्दना (आदि धार्मिक कार्यों) के हेतु समर्पित अथवा प्रदान किए दान द्रव्य को जो व्यक्ति ग्रहण (भोग) करता है, वह व्यक्ति आगे नरकगति के दु:ख भोगता है। ऐसा जिनेन्द्र भगवान ने कहा है-

पुत्त-कलत्त-विदूरो, दारिद्दो पंगु- मूक बहिरंधो।
चांडालाइ कुजादो, पूजा- दाणाइ - दव्व हरो ॥33॥ (रयणसार)

अर्थ-पूजा, दान आदि के द्रव्य हरने वाले व्यक्ति पुत्र-स्त्री से रहित हो जाते हैं और दरिद्र, पंगु, मूक, बधिर, अंधे हो जाते हैं एवं चाण्डाल आदि बुरे (नीच) कुलों में उत्पन्न होते हैं।

खय- कुट्ठ- मूल-सूला, लूय-भयंदर-जलोयरक्खि-सिरो।
सीदुण्ह - वाहिराई - पूयादाणंतराय - कम्मफलं ॥36॥ (रयणसार)

अर्थ-जो पूजा, दान में अन्तराय डालते हैं (पूजा, दान में विघ्न उपस्थित करते हैं अथवा जो द्रव्य पूजा दान के लिए दान में दे दिया गया है उसे उसी पूजा, दान में सदुपयोग न करते हुए उस द्रव्य का स्वयं अपने सांसारिक जीवन के लिए उपयोग कर लेते हैं) ऐसे लोग क्षयरोग, कुष्ठरोग, मूलरोग, शूल रोग, वातिक रोग, भगंदर रोग, जलोदर रोग, नेत्र रोग, सिर रोग और सन्निपात आदि अनेक रोगों से भव-भव में पीड़ित रहते हैं।

2. प्रबोधसार तत्त्वदर्शन के अनुसार -

नारक तिर्यग्योनिषु, बहुकाल - दु:ख भरति भवार्णवे।
विश्रान्ति - मो- क्षणमपि - पूजा - दानादि- द्रव्य हरम् ॥72॥

अर्थ-पूजा, दान आदि के द्रव्य को हरने वाले लोग नरक, तिर्यंच योनि आदि बुरी गतियों के दु:खों को सहन करते हुए संसार समुद्र में चिरकाल तक भ्रमण करते रहते हैं। उस पाप कर्म का फल उन्हें एक क्षण भर भी विश्रान्ति नहीं लेने देता।

सदुर्गन्धं गात्रं प्रभवति नरा दुर पुनरपि।
न किञ्चिद्विश्रान्ति सुलभ - नृ भवेऽमंगलमिदम् ॥
मुहुर्भक्तोच्छिष्टौ-र्भरति जठरं मा खलु सुखम्।
प्रतिष्ठा जीर्णोद्धार-धनं हरणाधान्ति मनुजा: ॥74॥ (प्र.सार तत्त्वदर्शन)

अर्थ-धर्मायतन प्रतिष्ठा एवं जिनालय आदि के जीर्णोद्धार के धन को जो ग्रहण करता है, वह जीव मरकर दुर्गन्ध शरीर वाला होता है, लोग उसे धिक्कारते रहते हैं। उसे थोड़ी भी सुख शान्ति नहीं मिलती और उसके जीवन में हमेशा अमंगल और अपशकुन होते रहते हैं। वह दूसरों के द्वारा खाकर छोड़ी गई जूठन के द्वारा अपना पेट भरता है, इस प्रकार उसका जीवन बड़ा दु:खदायी होता है।

प्रश्न 41. उस बेटे का नाम क्या था जिसने पिछले जन्म में निर्माल्य का सेवन किया था और उस निर्माल्य खाने का फल जिसे इस जन्म में मिला था कि अपनी माता मृष्टदाना के गर्भ में आते ही घर का सारा वैभव (धन) नष्ट हो गया, जिसके पिता कामवृष्टि का मरण हो गया एवं धीरे-धीरे कुटुम्बी लोगों का भी मरण हो गया और जिसकी माँ मृष्टदाना दूसरे अन्य घरों में कोई घरेलू कार्य (धान्य पीसना आदि कार्य) करके अपना और अपने बेटे का गुजारा करने लगी। तथा जिस बेटे को एक दिन उसकी माँ ने किसी के खेत में कुछ मजदूरी (कार्य) करने भेजा और दिन भर मजदूरी करने के बाद जब सायंकाल में खेत का मालिक-सुकृतपुण्य उस बेटे को मजदूरी देने लगा तब उस बेटे के मुख को देखकर उसने पूछा कि तुम किसके बेटे हो ? ऐसा पूछने पर उस बेटे ने उत्तर दिया कि मैं सेठ कामवृष्टि का बेटा हूँ। तब ऐसा सुनकर मालिक बोला अरे! वह कामवृष्टि सेठ तो इस नगर का मालिक था एवं मैं उसका सेवक था तथा जिसके प्रसाद (कृपा) से मैं इस नगर का मालिक बन सका और बेटा तुम्हारी अभी ऐसी स्थिति कैसे हो गई ? इस प्रकार उस बेटे के बारे में बड़े दुःख के साथ विचार करते हुए मालिक सुकृतपुण्य ने उस बेटे के हाथों में सोने की मुहरें दी और देते ही वे स्वर्ण की मुहरें उस बेटे के हाथों में अग्नि के अंगार बन गयीं और उसके हाथ जल गए। ऐसी स्थिति देखकर मालिक को बड़ा आश्चर्य हुआ एवं उसने विचार किया कि यह बेटा तो पुण्यहीन आत्मा है। इसके बाद उस मालिक ने उसे मनचाहे चने के दाने दिए और वह बेटा उन चने के दानों को अपनी पोटरी में बांधकर अपने घर की ओर चल दिया एवं घर पहुँचते-पहुँचते उसकी पोटरी के चने एक मुट्ठी मात्र शेष रह गए (बच गए) बाकी और सभी रास्ते में गिर गए क्योंकि पोटरी फटी हुई थी। घर में पहुँचते ही उसकी माँ मृष्टदाना ने पूछा, बेटा मजदूरी में क्या लाए हो ? तब बेटे ने कहा - माँ एक मुट्ठी चने। माँ आश्चर्य युक्त शब्दों में बोली अरे ! सुबह से शाम तक मजदूरी करने के बाद एक मुट्ठी चने .....? ऐसे आश्चर्य युक्त माँ के शब्दों को सुनकर बेटा बोला माँ मिला तो बहुत था लेकिन ..... यह सब सुनकर माँ बोली ओ बेटा ! जब से तू मेरे घर में आया तब से इस घर का सारा वैभव नष्ट हो गया, तेरे पिता का एवं कुटुम्बियों का मरण हो गया और अभी भी तुझे तेरा कर्म नहीं छोड़ रहा है तू तो इस जन्म में बड़ा पाप लेकर आया है, तूने पूर्व जन्म में कुछ भी पुण्य नहीं किया। इसलिए तेरा नाम सार्थक है -----।

उत्तर - ऐसे बेटे का नाम था - 'अकृतपुण्य'।

प्रश्न 42. (हरिवंश पुराण के सर्ग 18 में सुप्रतिष्ठ केवली भगवान के कहे अनुसार) वह कौन-सा व्यक्ति था जिसने वृषभनाथ भगवान के तीर्थ में, अयोध्या के राजा रत्नवीर्य के राज्य में सेठ सुरेन्द्र दत्त के बारह वर्ष के लिए बाहर (विदेश) जाते समय, सेठ सुरेन्द्र दत्त के द्वारा, बारह वर्ष में आने वाली अष्टमी, चतुर्दशी, अष्टाह्निक पर्व और चतुर्मास की विशेष पूजाओं की व्यवस्था हेतु दी गई धन राशि को सप्त व्यसनों में गंवा दिया था एवं जो ऐसे कुकृत्य के पाप से तैंतीस (33) सागर तक नरक गति का महा दुःख भोगने नीचे सप्तम नरक में पहुँचा था और आगे जो परंपरा से अन्धकवृष्टि हुआ था।(अन्धकवृष्टि वसुदेव के पिता थे)।

उत्तर - वह व्यक्ति था 'रुद्रदत्त'।

अध्याय 7.
जैन धर्म का माहात्म्य

जैनधर्म में जो दान, पूजा, शील, उपवास इत्यादिक उत्तम लक्षणों वाले धर्म कहे गए हैं उनका माहात्म्य किस-किस तरह प्रकट किया गया है इसे जान कर भव्यों के अन्तस् में ऐसे महान् सद्धर्म को विधिवत् विशुद्धि पूर्वक पालन / धारण करने की भावना उत्पन्न होती है। इस निमित्त से यहाँ 'जैनधर्म माहात्म्य' नामक सातवें अध्याय का लेखन हुआ है।

प्रश्न 1. धर्म किसे कहते हैं एवं अधर्म किसे कहते हैं?

उत्तर- श्री स्वामी समन्तभद्र आचार्य रचित रत्नकरण्डक श्रावकाचार ग्रन्थ के अनुसार-

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः ।
यदीयप्रत्यनीकानि, भवन्ति भवपद्धतिः ॥3॥

अन्वयार्थ-(धर्मेश्वरा) धर्म के ईश्वर जिनेन्द्र देव **(तानि)** उन **(सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि)** सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को **(धर्मं)** धर्म **(विदुः)** जानते (कहते) हैं **(यदीयप्रत्यनीकानि)** जिनके विपरीत-मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र **(भवपद्धतिः)** संसार के मार्ग अधर्म **(भवन्ति)** होते हैं।

संक्षेपार्थ-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को धर्म कहते हैं एवं मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र को अधर्म कहते हैं।

प्रश्न 2. धर्म का शाब्दिक या निरुक्त अर्थ क्या है?

उत्तर- **''धरतीति धर्मः''** अर्थात् जो सांसारिक दुःखों से उठाकर (निकालकर) स्वर्ग, मोक्ष, सुख में रख देता है (पहुँचा देता है), उसे धर्म कहते हैं।

प्रश्न 3. कई शास्त्रों में अहिंसा एवं क्षमादि दश भावों को भी धर्म कहा गया है उनका ग्रहण (समावेश) किसमें होता है?

उत्तर- अहिंसा एवं क्षमा आदि दश भावों का ग्रहण (समावेश) सम्यक्चारित्र धर्म में होता है।

प्रश्न 4. इस लोक में क्या किसी ने सम्यग्दर्शन धर्म का विशिष्ट माहात्म्य प्रकट किया था? और अगर किया था तो कैसे?

उत्तर- हाँ! रानी 'चेलना' ने किया था। मिथ्यामार्ग में स्थित अजैन राजा 'श्रेणिक' को सम्यग्दृष्टि बनाया था, जिससे उस राजा श्रेणिक को समवसरण के पावन दर्शन का सौभाग्य मिला एवं आगे वह राजा तीर्थङ्कर बनेगा।

प्रश्न 5. ऐसे कौन से आचार्य थे जिनके द्वारा सम्यग्दर्शन के साथ तीर्थङ्कर की स्तुति की जाने पर (करने पर) काशी, बनारस में शंकर रुद्र की पिण्डी फूट गई थी एवं उसी जगह अंदर से चन्द्रप्रभ तीर्थङ्कर की मूर्ति ऊपर आ गई थी और अजैन राजा शिवकोटि जैनधर्म के इस विशिष्ट माहात्म्य

को देखकर बहु प्रजा जनों के साथ जैनधर्मी बन गया था ?

उत्तर - ऐसे महान् आचार्य थे, स्वामी 'समन्तभद्र' जी।

प्रश्न 6. इस पञ्चमकाल में किसने सम्यग्ज्ञान रूपी धर्म की महिमा से जैनधर्म का माहात्म्य प्रकट किया था एवं जो एकपाठी कहलाते थे ?

उत्तर - इस पञ्चमकाल में दिगम्बर जैनधर्मी 'श्री अकलंक देव'' ने बौद्धों को शास्त्रार्थ में हराकर, उनका मान खण्डित कर सम्यग्ज्ञान रूपी धर्म की महिमा से जैनधर्म का माहात्म्य प्रकट किया था।

प्रश्न 7. ऐसे महामुनि का नाम बताओ जिनके द्वारा सम्यग्ज्ञान रूपी धर्म की महिमा से बलि आदि मंत्री अविजित हो गए थे एवं खड्ग से (तलवार से) उन मुनि पर उपसर्ग करने से वे मंत्री जैनधर्म की महिमा द्वारा उसी जगह कीलित (स्तब्ध) हो गए थे ?

उत्तर - ऐसे महामुनि थे अकम्पनाचार्य के शिष्य 'श्रुतसागर' जी ।

प्रश्न 8. सम्यक्चारित्र धर्म के माहात्म्य को किसने प्रकट किया था ? एक उदाहरण बतलाइए ।

उत्तर - जंगल में अजगर सर्प का उपसर्ग होने पर भी देशव्रत रूप चारित्र धर्म की रक्षा में लीन 'अनंगसरा' नामक कन्या ने सम्यक्चारित्र धर्म के माहात्म्य को प्रकट किया था।

प्रश्न 9. दशलक्षण धर्म कौन-कौन से हैं एवं उनके संक्षिप्त अर्थ बतलाइए ?

उत्तर - दशलक्षण धर्मों के नाम एवं उनका संक्षिप्त अर्थ-

1. उत्तम क्षमा- क्रोध का अभाव एवं शान्त रूप परिणामों का होना ।
2. उत्तम मार्दव - मान का अभाव एवं मृदुता रूप परिणामों का होना।
3. उत्तम आर्जव - मायाचार का अभाव एवं सरलता रूप परिणामों का होना।
4. उत्तम शौच- लोभ का अभाव एवं संतोष रूप परिणामों का होना।
5. उत्तम सत्य- अच्छे लोगों के साथ शास्त्रानुसार कल्याण के वचन बोलना।
6. उत्तम संयम- पञ्चेन्द्रिय के विषय एवं त्रस, स्थावर जीवों की हिंसा से दूर होना।
7. उत्तम तप- सांसारिक इच्छाओं का त्याग एवं बारह तपों का पालन करना।
8. उत्तम त्याग - ज्ञानादि एवं उपकरणादि (पिच्छिका, शास्त्र आदि धर्मोपकरणों) का दान देना।
9. उत्तम आकिञ्चन्य- सम्पूर्ण परिग्रह से (अंतरंग-बहिरंग परिग्रह से) रहित होना।
10. उत्तम ब्रह्मचर्य - कुशील त्याग के साथ शील द्वारा आत्मा में रमण करना।

प्रश्न 10. इन दशलक्षण धर्मों में प्रत्येक धर्म के साथ 'उत्तम' विशेषण क्यों लगाया ?

उत्तर - इन दशलक्षण धर्मों का सम्बन्ध लौकिकता से नहीं बल्कि इन धर्मों का सम्बन्ध कर्म निर्जरा एवं मोक्ष से है, इसलिए इन धर्मों के साथ उत्तम विशेषण लगाया है।

प्रश्न 11. दशलक्षण धर्मों का माहात्म्य प्रकट करने वाले कौन होते हैं ?

उत्तर - दशलक्षण धर्मों का माहात्म्य प्रकट करने वाले रत्नत्रय से सम्पन्न महाव्रती, महातपस्वी,

दिगम्बर मुनिराज होते हैं।

प्रश्न 12. जैन धर्म में और किस-किस को धर्म नाम से कहा गया है?

उत्तर - जयधवला सिद्धान्त ग्रन्थ के अनुसार- **''दाणं पूजा सीलमुववासो चेदि चउव्विहो सावय धम्मो''** दान, पूजा, शील और उपवास ये श्रावकों के चार धर्म हैं। (इन चार धर्मों का भी रत्नत्रय धर्म में समावेश हो जाता है)।

प्रश्न 13. दान धर्म कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तर - दान धर्म चार प्रकार का होता है -1. आहार दान 2. औषध दान 3. उपकरण दान (संयम, ज्ञानादि का साधन रूप उपकरण) और 4. आवास दान।

प्रश्न 14. वह कौन-सा राजा था जिसने अर्ककीर्ति और अमितगति नामक चारण मुनियों को भक्ति पूर्वक आहार दान दिया था तथा जिसके माहात्म्य से वह राजा अपनी पत्नी सत्यभामा के साथ भोगभूमि में उत्पन्न हुआ था एवं आगे परम्परा से शान्तिनाथ तीर्थङ्कर हुआ था?

उत्तर - वह 'श्रीषेण' राजा था।

प्रश्न 15. ऐसी कौन सी महिला थी जिसने पूर्व भव सम्बन्धी नागश्री नामक कन्या की अवस्था में मुनिदत्त नामक मुनि को औषध दान दिया था और उस औषध दान के प्रभाव (फल) से जिसमें सर्वोषधि ऋद्धि (शक्ति या गुण) की प्राप्ति हुई थी?

उत्तर - ऐसी महिला थी 'वृषभसेना'।

प्रश्न 16. श्री कौण्डेश नामक मुनि बहुत बड़े शास्त्रों के पारगामी (महाज्ञानी) हुए यह कौन से दान का फल था?

उत्तर - कौण्डेश नाम के मुनि की पूर्व भव सम्बन्धी गोविन्द नामक ग्वाले की अवस्था में पद्मनन्दी नाम के मुनि को यह 'शास्त्र दान' (ज्ञानोपकरण दान) देने का फल था।

प्रश्न 17. उन दो मुनिराजों का नाम बताओ जिन्हें जंगल में एक शूकर ने आवास दान दिया था (अपनी गुफा में ठहरने का स्थान दिया था) एवं उस शूकर ने एक व्याघ्र के उपसर्ग से उन मुनि महाराजों की रक्षा की थी तथा ऐसे आवास दान के प्रभाव (माहात्म्य) से वह शूकर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ था?

उत्तर - उन दो मुनि महाराजों का नाम था-'समाधिगुप्त' मुनि महाराज और 'त्रिगुप्त' मुनि महाराज।

प्रश्न 18. वह कौन-सा राजा था जिसके पूजा धर्म के माहात्म्य से कैलास पर्वत पर देवों ने प्रसन्न होकर उसे दो शक्तियां प्रदान की थीं एवं भविष्यकाल में जो तीर्थङ्कर बनेगा?

उत्तर - वह राजा था लंकाधिपति 'रावण'।

प्रश्न 19. ऐसी कौन-सी महिला थी जिसके द्वारा की गई सिद्धचक्र मण्डल पूजा के माहात्म्य से उसके पति श्रीपाल का कुष्ठ रोग दूर हो गया था?

उत्तर - ऐसी महिला थी सती 'मैनासुन्दरी'।

प्रश्न 20. ऐसे कौन से महान् पुरुष थे जिनके शील धर्म के माहात्म्य से सूली का सिंहासन बन गया था?

उत्तर - ऐसे महान् पुरुष थे सेठ 'सुदर्शन जी'।

प्रश्न 21. वे कौन से तद्भव मोक्षगामी मुनिराज थे जो अप्सराओं के द्वारा अनेक उपसर्ग किए जाने पर भी अपने शील धर्म से विचलित नहीं हुए एवं उपसर्ग सहते-सहते केवलज्ञानी बन गए ?

उत्तर - वे (लक्ष्मण के ज्येष्ठ भ्राता) तद्भव मोक्षगामी 'राम' मुनिराज थे।

प्रश्न 22. ऐसे महापुरुष का नाम बताओ जिन्होंने एक वर्ष तक अखण्ड उपवास करके उपवास धर्म का माहात्म्य प्रकट किया ?

उत्तर - ऐसे महापुरुष थे प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव के पुत्र प्रथम कामदेव श्री बाहुबली मुनीश्वरजी ।

प्रश्न 23. वह कौन सा प्राणी था, जिसने चारण ऋद्धिधारी मुनियों से अहिंसा परमो धर्म का माहात्म्य सुनकर माँस खाना छोड़ दिया था एवं आगे परम्परा से जो तीर्थङ्कर श्री महावीर हुआ ?

उत्तर - वह था एक वनराज 'सिंह' ।

प्रश्न 24. ऐसे कौन से महान् व्यक्ति थे जिन्होंने जैनधर्म की रक्षा में अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की थी एवं जो द्विपाठी कहलाते थे ?

उत्तर - ऐसे महान् व्यक्ति थे श्री 'निकलंक' जी।

प्रश्न 25. वे कौन से-आचार्य थे जिनके द्वारा रचित भक्तामर स्तोत्र रूप आदिनाथ भगवान की भक्ति के माहात्म्य से उनके शरीर पर डाली गईं सांकलें एवं अड़तालीस (48) ताले टूट गए और दिगम्बर जैन धर्म की महती प्रभावना सारे जगत् में फैल गई थी ?

उत्तर - वे आचार्य थे दिगम्बर मुनि श्री 'मानतुङ्ग' जी ।

प्रश्न 26. भक्तामर स्तोत्र कौन से छन्द में लिखा गया है ?

उत्तर - भक्तामर स्तोत्र बसन्ततिलका छन्द में लिखा गया है।

प्रश्न 27. भक्तामर स्तोत्र में कितने छन्द हैं ?

उत्तर - भक्तामर स्तोत्र में अड़तालीस छन्द हैं।

प्रश्न 28. महाप्रभावक आचार्य श्री श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के संघ में कितने मुनि थे एवं उनके प्रमुख शिष्य का नाम क्या था ?

उत्तर - श्री श्रुत केवली भद्रबाहु स्वामी के संघ में चौबीस हजार मुनि थे एवं उनके प्रमुख शिष्य का नाम 'मुनि विशाखाचार्य' था।

प्रश्न 29. श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के चरणों में कौन से प्रमुख राजा ने नग्न दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी ?

उत्तर - श्री श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी के चरणों में सम्राट 'चन्द्रगुप्त' राजा ने नग्न दिगम्बरी दीक्षा धारण की थी।

प्रश्न 30. श्रवणबेलगोला के पर्वत पर स्थित नग्न दिगम्बर मूर्ति कौन से जैन श्रावक ने बनवाई थी ?

उत्तर - श्रवणबेलगोला के पर्वत पर स्थित नग्न दिगम्बर मूर्ति श्री 'चामुण्डराय' जैन श्रावक ने बनवाई थी।

प्रश्न 31. तमिलनाडु देश के तिरुमलै क्षेत्र पर स्थित भ. नेमिनाथ की दिगम्बर मूर्ति कब बनाई गई थी ?

उत्तर - तिरुमलै क्षेत्र पर स्थित भ. नेमिनाथ की दिगम्बर मूर्ति पंच पाण्डवों के समय बनवाई गई थी।

अध्याय 8.
रत्नत्रय का स्वरूप

जिन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को धर्म शास्त्रों में रत्नत्रय धर्म के नाम से पुकारा गया है तथा जिनकी समष्टी (एकता) का नाम मोक्षमार्ग कहा गया है, मोक्ष रूपी मंजिल की प्राप्ति हेतु जिस मार्ग की अति आवश्यकता होती है क्योंकि बिना मार्ग के मंजिल की प्राप्ति नहीं होती, अतः ऐसे उन सम्यग्दर्शनादि रूप रत्नत्रय या त्याग, संयम रूप मोक्षमार्ग को समझना बहुत आवश्यक है। इस कारण इस अध्याय में संक्षिप्त रूप से 'रत्नत्रय के स्वरूप' की चर्चा की गई है।

प्रश्न 1. रत्नत्रय किसे कहते हैं?

उत्तर - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं।

प्रश्न 2. रत्नत्रय के कितने भेद हैं एवं उनके नाम बताओ?

उत्तर - रत्नत्रय के दो भेद हैं- 1. निश्चय रत्नत्रय एवं 2. व्यवहार रत्नत्रय।

प्रश्न 3. निश्चय रत्नत्रय किसे कहते हैं एवं उसे कौन प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - आत्म विशुद्धिपूर्वक निज शुद्धात्मा पर श्रद्धान करना, निज शुद्धात्मा को जानना और निज शुद्धात्मा में लीन रहना, यह निश्चय रत्नत्रय कहलाता है। ऐसे निश्चय रत्नत्रय को, व्यवहार रत्नत्रय से विशुद्ध, पञ्चेन्द्रिय विषयों के त्यागी, महाव्रती, आत्मलीन दिगम्बर मुनि महाराज ही प्राप्त कर सकते हैं। (श्रावक केवल ऐसे निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति की भावना मात्र रख सकता है)।

प्रश्न 4. व्यवहार रत्नत्रय किसे कहते हैं एवं उसे कौन प्राप्त कर सकता है?

उत्तर - सच्चे वीतरागी, देव-शास्त्र-गुरु पर परम श्रद्धा रखना, जिनेन्द्र देव की वाणी (सच्चे शास्त्र) को हृदय से मानना एवं जिनेन्द्र देव द्वारा बताए गए समीचीन मोक्षमार्ग पर चलना यह व्यवहार रत्नत्रय कहलाता है। ऐसे इस व्यवहार रत्नत्रय को स्वरूपाचरण से निचली अवस्था में दिगम्बर मुनि एवं कोई भी अशुभोपयोग से रहित योग्य भव्य श्रावक अवस्था रूप पुण्यात्मा प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न 5. मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र यह कौन सा व्यवहार है एवं कौन सा मार्ग है?

उत्तर - मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र यह असमीचीन (मिथ्या) व्यवहार है एवं संसार का मार्ग है।

प्रश्न 6. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह कौन सा व्यवहार है?

उत्तर - व्यवहार रत्नत्रय की अवस्था में स्थित जीव के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह समीचीन व्यवहार है एवं मोक्षमार्ग है।

प्रश्न 7. जब निश्चय रत्नत्रय से ही साक्षात् मोक्ष पद की प्राप्ति होती है तब व्यवहार रत्नत्रय की क्या आवश्यकता है?

उत्तर- निश्चय रत्नत्रय से ही साक्षात् मोक्ष पद प्राप्त होता है, यह बात ठीक है लेकिन निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति के लिए व्यवहार रत्नत्रय निमित्त कारण है अर्थात् व्यवहार रत्नत्रय के माध्यम से निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति होती है। जैसे नीचे की सीढ़ी ऊपर की सीढ़ी चढ़ने के लिए सहकारी निमित्त कारण है, उसी तरह व्यवहार रत्नत्रय निश्चय रत्नत्रय को प्राप्त कराते हुए परम्परा से मोक्ष का कारण है।

अतः अगले तीन अधिकारों में व्यवहार रत्नत्रय रूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का वर्णन किया जा रहा है।

व्यवहार दो तरह का होता है-एक समीचीन व्यवहार और एक असमीचीन व्यवहार। वीतरागी देव-शास्त्र और गुरु की श्रद्धा पूर्वक पूजा, दान आदिक नियम व्रतों का अनुष्ठान करना समीचीन व्यवहार कहलाता है एवं गृह सम्बन्धी आरम्भ, सारम्भ या हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह रूप पञ्च पापों को करना असमीचीन व्यवहार कहलाता है। अतः जब तक गृहस्थ पञ्च पाप रूप असमीचीन व्यवहार को छोड़कर साधुपद को प्राप्त करके शुद्धोपयोग द्वारा शुद्धात्मा की प्राप्ति नहीं कर लेता तब तक उसे निश्चय रत्नत्रय की प्राप्ति नहीं होती।

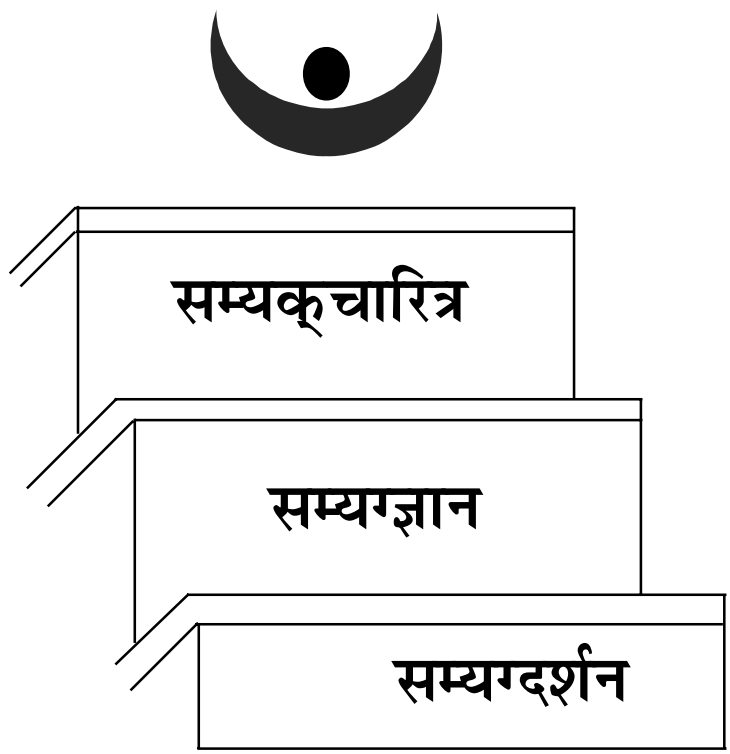

अध्याय 9.
सम्यग्दर्शन धर्म माहात्म्य

व्यवहार सम्यग्दर्शन धर्म वर्णन एवं उसका माहात्म्य

शास्त्रों में जिस सम्यग्दर्शन को मोक्षमहल की प्रथम सीढ़ी कहकर वर्णित किया है क्योंकि उस सम्यग्दर्शन के बिना ग्यारह अंग का ज्ञान और सकल चारित्र भी सम्यक् (समीचीन) नहीं कहे जाते, वे मिथ्या ही कहलाते हैं एवं जिस सम्यग्दर्शन के अभाव में तीर्थङ्कर भगवान के समवसरण का दर्शन सुलभ नहीं होता, तथा जिस सम्यग्दर्शन के सद्भाव हो जाने पर मनुष्यों को वैमानिक (सौधर्मेन्द्रादिक) देवों की आयु के अलावा अन्य आयु का बन्ध अवश्य रूप से नहीं होता, ऐसे नरक तिर्यञ्चादिक दुर्गतियों की भटकन से बचाने वाले महान् सम्यग्दर्शन को आगमानुसार एवं तर्कों के माध्यम से समझाते हुए भव्यों के लिए इस अध्याय में उसे अवश्य प्राप्त करने की प्रेरणा देते हुए 'सम्यग्दर्शन धर्म माहात्म्य' की विशिष्ट विवेचना की गई है।

प्रश्न 1. सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं उसका लक्षण बतलाइए?

उत्तर - श्री स्वामी समन्तभद्र आचार्य विरचित रत्नकरण्डक श्रावकाचार के अनुसार -

श्रद्धानं परमार्थाना-माप्तागम-तपोभृताम्।
त्रिमूढापोढ-मष्टाङ्गं, सम्यग्दर्शन-मस्मयम्।।4॥

अन्वयार्थः- (परमार्थानाम्) परमार्थभूत **(आप्तागमतपो-भृताम्)** देव, शास्त्र और गुरु का **(त्रिमूढापोढम्)** तीन मूढ़ताओं से रहित **(अष्टाङ्गम्)** आठ अंगों सहित और **(अस्मयम्)** आठ प्रकार-के मदों से रहित **(श्रद्धानम्)** श्रद्धान करना **(सम्यग्दर्शनम्)** सम्यग्दर्शन कहलाता है।

आचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित मोक्षपाहुड के अनुसार -

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्तं॥90॥

अन्वयार्थ - (**हिंसारहिए धम्मे**) हिंसा रहित धर्म (**अट्ठारह दोस वज्जिए देवे**) अठारह दोष से रहित देव (**णिग्गंथे**) निर्ग्रन्थ श्रमण (**पव्वयणे**) प्रवचन (समीचीन शास्त्र) के (**सद्दहणं**) श्रद्धान करने से (**सम्मत्तं होइ**) व्यवहार सम्यग्दर्शन होता है।

प्रश्न 2. सभी शास्त्रों में प्रायः सबसे पहले सम्यग्दर्शन का महत्त्व बताते हैं इसका कारण क्या है?

उत्तर - सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बिना जीव का मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र नहीं बनता। ज्ञान और चारित्र में सम्यक्ता लाने के लिए सम्यग्दर्शन की बड़ी आवश्यकता है। इसलिए सभी शास्त्रों में प्रायः सम्यग्दर्शन का महत्त्व सबसे पहले बताया जाता है।

प्रश्न 3. सम्यग्दर्शन को छोड़कर क्या मात्र सम्यग्ज्ञान या सम्यक्चारित्र से मोक्ष पद नहीं मिल सकता?

उत्तर - नहीं, क्योंकि तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के प्रथम सूत्र में कहा है कि -"**सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः**" जिसका अर्थ है कि- सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र की एकता का नाम मोक्षमार्ग है और अकेला सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान या सम्यक्चारित्र का नाम मोक्ष मार्ग नहीं। इस प्रकार जब तक यह रत्नत्रय रूप मोक्ष का मार्ग (रास्ता) जीव को प्राप्त नहीं होता तब तक यह जीव संसार अवस्था से मोक्ष अवस्था को प्राप्त नहीं करता। और सभी जानते हैं कि मार्ग के बिना मंजिल कहाँ? अर्थात् मार्ग से ही मंजिल मिलती है।

प्रश्न 4. जो जीव विशेष पुण्य के अभाव में पूर्ण रत्नत्रय धर्म को (अणुव्रतों या महाव्रतों को) ग्रहण नहीं कर पाते, लेकिन स्वल्प पुण्योदय से जो मात्र सम्यग्दर्शन धर्म को ग्रहण कर लेते हैं, वे जीव उस सम्यग्दर्शन धर्म के प्रभाव से कौन-कौन सी बुरी गतियों को प्राप्त नहीं होते?

उत्तर - श्री स्वामी समन्तभद्र आचार्य रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहते हैं कि

सम्यग्दर्शनशुद्धा नारकतिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि।
दुष्कुल विकृताल्पायुर्दरिद्रतां च व्रजन्ति नाप्यव्रतिकाः ॥35॥

अन्वयार्थ :-(**सम्यग्दर्शनशुद्धाः**) शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव (**अव्रतिकाः**) व्रत रहित होने पर (**अपि**) भी (**नारकातिर्यङ्नपुंसकस्त्रीत्वानि**) नारक, तिर्यञ्च, नपुंसक और स्त्रीपने को (**च**) और (**दुष्कुलविकृताल्पायुर्दरिद्रताम्**) नीचकुल, विकलांग अवस्था, अल्पायु और दरिद्रता को (**न व्रजन्ति**) प्राप्त नहीं होते हैं।

प्रश्न 5. नरक, तिर्यञ्च आदि महा दुर्गतियों से बचने के लिए मात्र सम्यग्दर्शन कैसे सहायक होता है?

उत्तर - जैसे अनेक मगरमच्छादि से सहित समुद्र को पार करने के लिए एक नौका सहायक होती है वैसे ही इन नरक, तिर्यञ्चादि दुर्गतियों के समुद्र से पार होने के लिए एक नौका रूप सम्यग्दर्शन जीवों को बड़ा सहायक होता है।

प्रश्न 6. फिर हमें ऐसी महान् वस्तु 'सम्यग्दर्शन' ग्रहण करने के लिए क्या प्रयत्न करना चाहिए?

उत्तर - ऐसे महान् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हेतु हमें सच्चे देवादिक का स्वरूप समझना चाहिए एवं मिथ्यात्व छोड़कर वीतराग देव-शास्त्र-गुरु की भक्ति में रत होना चाहिए।

प्रश्न 7. सच्चे देव का स्वरूप क्या है?

उत्तर - रत्नकरण्डकश्रावकाचार के अनुसार सच्चे देव का लक्षण -

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण, सर्वज्ञेनागमेशिना ।
भवितव्यं नियोगेन, नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ।। 5 ॥

अन्वयार्थ :- (**नियोगेन**) नियम से (**आप्तेन**) आप्त को (**उत्च्छिन्नदोषेण**) दोषरहित -वीतराग (**सर्वज्ञेन**) सर्वज्ञ और (**आगमेशिना**) आगम का स्वामी-हितोपदेशी (**भवितव्यम्**) होना चाहिए (**हि**) क्योंकि (**अन्यथा**) अन्य प्रकार से (**आप्तता**) आप्तपना (**न भवेत्**) नहीं हो सकता।

प्रश्न 8. जिन अठारह दोषों से रहित सर्वज्ञ भगवान होते हैं, वे अठारह दोष कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - आचार्य श्री कुन्दकुन्द विरचित नियमसार ग्रन्थ के अनुसार -

छुहतण्हभीरुरोसो रागो मोहो चिंताजरा रुजामिच्चू ।
सेदं खेद मदो रइ विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो ॥6 ॥

अन्वयार्थ - (**छुह तण्ह भीरु रोसो**) भूख, प्यास, भय, क्रोध (**रागो मोहो चिंता जरा रूजा मिच्चू**) राग, मोह, चिंता, वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु, (**सेदं खेद मदो रइ**) पसीना, खेद, मद, रति (**विम्हियणिद्दा जणुव्वेगो**) विस्मय, निद्रा, जन्म और अरति ये अठारह दोष हैं।

प्रश्न 9. सच्चा शास्त्र कौन-सा होता है, उसका लक्षण बतलाइए ?

उत्तर - रत्नकरण्डक श्रावकाचार में सच्चे शास्त्र का लक्षण इस प्रकार बतलाया है -

आप्तोपज्ञमनुल्लङ्घ्य - मदृष्टेष्टविरोधकं ।
तत्त्वोपदेशकृत्सार्वं, शास्त्रं कापथघट्टनं ।।9 ॥

अन्वयार्थ :- [**तत्**] वह (**शास्त्रम्**) शास्त्र (**आप्तोपज्ञम्**) भगवान् के द्वारा कहा गया है (**अनुल्लङ्घ्यम्**) खण्डनरहित (**अदृष्टेष्टविरोधकम्**) प्रत्यक्ष और अनुमानादि के विरोध से रहित (**तत्त्वोपदेशकृत्**) तत्त्व का उपदेश करने वाला (**सार्वम्**) सबका हितकारी और (**कापथघट्टनम्**) मिथ्यामार्ग का खण्डन करने वाला है।

प्रश्न 10. सच्चे गुरु कौन होते हैं, उनका लक्षण बतलाइए ?

उत्तर - रत्नकरण्डक श्रावकाचार के अनुसार सच्चे गुरु का लक्षण -

विषयाशावशातीतो, निरारम्भोऽपरिग्रहः ।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस् तपस्वी स प्रशस्यते ।। 10 ॥

अन्वयार्थ :- [**यः**] जो (**विषयाशावशातीतः**) विषयों की आशा के वश से रहित हो (**निरारम्भः**) आरम्भ रहित हो (**अपरिग्रहः**) परिग्रह रहित हो और (**ज्ञानध्यानतपोरक्तः**) ज्ञान, ध्यान तथा तप में लवलीन हो (**सः**) वह (**तपस्वी**) गुरु (**प्रशस्यते**) प्रशंसनीय है।

प्रश्न 11. सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों के नाम एवं संक्षिप्त रूप से उनका स्वरूप बतलाइए ?

उत्तर - रत्नकरण्डक श्रावकाचार के अनुसार सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों का स्वरूप -

1. **निः शंकित अंग** -देव-शास्त्र-गुरु रूप तत्त्व यही है, ऐसा ही है, अन्य नहीं, अन्य प्रकार नहीं, इस प्रकार मोक्षमार्ग के विषय में अकम्प, अटूट श्रद्धा रखना निःशंकित अंग है।
2. **निःकांक्षित अंग**-कर्मों के अधीन, नष्ट हो जाने वाले, दुःखों से सहित एवं पाप के कारण भूत सांसारिक सुखों के प्रति जो अरुचि या अनास्था रखना है, वह निःकांक्षित अंग है।
3. **निर्विचिकित्सा अंग**-स्वभाव से अपवित्र, किन्तु रत्नत्रय से पवित्र शरीर में ग्लानि (घृणा) रहित होकर गुणों से प्रेम करना निर्विचिकित्सा अंग है।
4. **अमूढ़दृष्टि अंग**-मिथ्यात्वादि रूप कुमार्ग में स्थित जीवों की मन-वचन-काय से विनय, स्तुति, नमस्कार, प्रशंसा आदि नहीं करना अमूढ़दृष्टि अंग है।
5. **उपगूहन अंग**-स्वभाव से निर्मल रत्नत्रय रूप मार्ग की अज्ञानी तथा असमर्थ मनुष्यों के आश्रय से होने वाली निन्दा को जो दूर करते हैं (या ढकते हैं) उनके उस दूर करने रूप कार्य को उपगूहन अंग कहते हैं।
6. **स्थितिकरण अंग**-जो धर्म स्नेही लोग, रत्नत्रय मार्ग से विचलित होते हुए लोगों को फिर से उसी रत्नत्रय मार्ग में स्थित करते हैं, उनके उस स्थित करने रूप कार्य को स्थितिकरण अंग कहते हैं।
7. **वात्सल्य अंग**-मोक्षमार्ग में चलने वाले अपने सहधर्मी जनों के प्रति जो मायाचार से रहित, अच्छे भावों के साथ यथायोग्य आदर-सत्कार किया जाता है,उसे वात्सल्य अंग कहते हैं।
8. **प्रभावना अंग**-अज्ञान रूपी (मिथ्यात्वादि सम्बन्धी) अंधकार के फैलाव को दूर कर, अपनी शक्ति के अनुसार अर्थात् शक्ति को न छुपाते हुए जिनशासन के माहात्म्य को प्रकट करना, प्रभावना अंग कहलाता है।

प्रश्न 12. सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों का माहात्म्य किस-किस ने प्रकट किया था?

उत्तर - सम्यग्दर्शन के निःशंकित अंग का अञ्जनचोर ने, निःकांक्षित अंग का अनन्तमती ने, निर्विचिकित्सा अंग का उद्दायन राजा ने, अमूढ़दृष्टि अंग का रेवती रानी ने, उपगूहन अंग का जिनेन्द्र भक्त सेठ ने, स्थितिकरण अंग का वारिषेण मुनि ने, वात्सल्य अंग का विष्णुकुमार मुनि ने और प्रभावना अंग का वज्रकुमार मुनि ने महान् माहात्म्य प्रकट किया था।

प्रश्न 13. क्या अष्ट अंगों से रहित सम्यग्दर्शन हमें संसार से छुड़ाकर मोक्ष प्राप्त नहीं करा सकता?

उत्तर - नहीं, अष्ट अंगों से रहित सम्यग्दर्शन संसार के भ्रमण को नष्ट करने में समर्थ नहीं, क्योंकि जैसे एक अक्षर से भी हीन मंत्र विष की वेदना को दूर करने में समर्थ नहीं। आगम में कहा भी है-

नांगहीनमलं छेत्तुं दर्शनं जन्मसन्ततिम्।
न हि मन्त्रोऽक्षरन्यूनो, निहन्ति विषवेदनां॥21॥ (र.श्रा.)

प्रश्न 14. वे तीन मूढ़ताएं कौन-सी हैं जो हमारे सम्यग्दर्शन में बाधक होती हैं?

उत्तर - वे मूढ़ताएं-लोकमूढ़ता, देवमूढ़ता और गुरुमूढ़ता के भेद से तीन प्रकार की हैं, जो हमारे

सम्यग्दर्शन में बाधक हैं।

प्रश्न 15. मूढ़ता का शाब्दिक अर्थ क्या है?

उत्तर - मूढ़ता का शाब्दिक अर्थ है, अज्ञानता (अविवेकता)। जो देव, शास्त्र (धर्म) गुरु के विषय में अज्ञानता (अविवेकता) है, उसी को यहाँ मूढ़ता कहा गया है।

प्रश्न 16. लोकमूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर - रत्नकरण्डकश्रावकाचार के अनुसार -

आपगासागरस्नानमुच्चयः सिकताश्मनाम्।
गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥22॥

अन्वयार्थ :- धर्म मानकर (**आपगासागरस्नानम्**) नदी और समुद्र में स्नान करना (**सिकताश्मनाम्**) बालू और पत्थरों का (**उच्चयः**) ढेर लगाना (**गिरिपातः**) पर्वत से गिरना (**च**) और (**अग्निपातः**) अग्नि में पड़ना (**लोकमूढम्**) लोकमूढ़ता (**निगद्यते**) कही जाती है।

प्रश्न 17. देवमूढ़ता किसे कहते हैं?

उत्तर - रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहते हैं कि -

वरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः।
देवता यदुपासीत देवता मूढमुच्यते ॥23॥

अन्वयार्थ :- (**वरोपलिप्सया**) वरदान प्राप्त करने की इच्छा से (**आशावान्**) आशा से युक्त हो (**रागद्वेषमलीमसाः**) राग-द्वेष से मलिन (**देवताः**) देवों की (**यत्**) जो (**उपासीत**) आराधना की जाती है (**तत्**) वह (**देवतामूढम्**) देवमूढ़ता (**उच्यते**) कही जाती है।

प्रश्न 18. गुरुमूढ़ता किसे जानना चाहिए?

उत्तर - रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहते हैं कि -

सग्रन्थारम्भहिंसानां संसारावर्त्तवर्त्तिनाम्।
पाषण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पाषण्डिमोहनम् ॥24॥

अन्वयार्थ :-(**सग्रन्थारम्भहिंसानां**) परिग्रह, आरम्भ और हिंसा सहित, तथा (**संसारावर्तवर्तिनाम्**) संसार भ्रमण के कारणभूत कार्यों में लीन (**पाषण्डिनाम्**) अन्य कुलिंगियों को (**पुरस्कारः**) अग्रेसर करना / प्रोत्साहित करना (**पाषण्डिमोहनम्**) पाषण्डिमूढ़ता-गुरुमूढ़ता (**ज्ञेयम्**) जानने के योग्य है।

प्रश्न 19. रत्नकरण्डकश्रावकाचार के अलावा हमारे अन्य शास्त्रों में भी देवमूढ़ता के बारे में (सम्बन्ध में) कुछ कहा गया है क्या?

उत्तर - हाँ, आचार्य श्री नेमिचन्द्र द्वारा विरचित द्रव्यसंग्रह शास्त्र की 41वीं गाथा की ब्रह्मदेव सूरि विरचित संस्कृत टीका में कहा गया है कि **तत्र क्षुधाद्यष्टादशदोषरहितमनन्त-ज्ञानाद्यिनन्तगुण सहितं वीतराग सर्वज्ञदेवतास्वरूपमजानन् ख्यातिपूजालाभरूपलावण्य-सौभाग्यपुत्रकलत्रराजादिविभूतिनिमित्तं रागद्वेषोपहार्त्तरौद्रपरिणत क्षेत्रपाल चण्डिका**

मिथ्यादेवानां यदाराधनं करोतिजीवस्तत्रदेवता मूढत्वं भण्यते ।

अर्थ- क्षुधातृषादि अठारह दोषों से रहित अनन्त ज्ञानादि अनन्त गुणों से सहित जो श्री वीतराग सर्वज्ञदेव हैं उनके स्वरूप को नहीं जानता हुआ जीव ख्याति (लोक प्रसिद्धि) पूजा, लाभ, रूप, लावण्य, सौभाग्य, पुत्र, स्त्री और राज्य आदि की सम्पदा को प्राप्त करने के लिए जो राग तथा द्वेष से युक्त (सरागी) और आर्त्त तथा रौद्रध्यान रूप परिणामों के धारक क्षेत्रपाल चंडिका आदि मिथ्यादृष्टि देवों की आराधना करता है, उसको देवमूढ़ता कहते हैं। **न च ते देवाः किमपि फलं प्रयच्छन्ति कथमिति चेत् ? रावणेन राम स्वामि लक्ष्मीधर विनाशार्थं बहुरूपिणी विद्या साधिता, कौरवैस्तु पाण्डव निर्मूलनार्थं कात्यायनी विद्या साधिता, कंसेन च नारायण विनाशार्थं बह्वयोऽपि विद्याः समाराधितास्ताभिकृतं न किमपि राम स्वामि पाण्डवनारायणानाम्। तैस्तु यद्यपि मिथ्यादेवता नानुकूलितास्तथापि निर्मल सम्यक्तोपार्जिततेन पूर्वकृत पुण्येन सर्वं निर्विघ्नं जातमिति।**

अर्थ-और ये क्षेत्रपाल चण्डिका आदि देव कुछ भी फल नहीं देते हैं। फल कैसे नहीं देते? यदि ऐसा पूछो तो इसका उत्तर यह है कि - रावण ने श्री रामचंद्र जी और लक्ष्मण जी के विनाश के लिए बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी, और कौरवों ने पाण्डवों का मूल से नाश करने के लिए कात्यायनी विद्या सिद्ध की थी, तथा कंस ने श्रीकृष्ण नारायण के नाश के लिए बहुत-सी विद्याओं की आराधना की थी। परंतु उन विद्याओं ने श्री रामचंद्र जी, पाण्डव और श्री कृष्ण नारायण का कुछ भी अनिष्ट नहीं किया। और श्री रामचंद्र आदि ने इन मिथ्यादृष्टि देवों को अनुकूल नहीं किया अर्थात् उनकी आराधना नहीं की तो भी निर्मल सम्यक्त्व से उपार्जित पूर्व के पुण्य से उन सबके सभी विघ्न दूर हो गए।

प्रश्न 20. अष्ट मद कौन-कौन से हैं, उनके नाम बतलाइए?

उत्तर - रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहते हैं -

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः ।
अष्टावाश्रित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गतस्मयाः ॥25॥ ।

अन्वयार्थ :- (**ज्ञानम्**) ज्ञान, (**पूजाम्**) प्रतिष्ठा, (**कुलम्**) कुल, (**जातिम्**) जाति, (**बलम्**) बल, (**ऋद्धिम्**) धनसम्पत्ति, (**तपः**) तप (**च**) और (**वपुः**) शरीर (**अष्टौ**) इन आठ पदार्थों का (**आश्रित्य**) आश्रय लेकर (**मानित्वम्**) गर्वित होने को (**गतस्मयाः**) गर्व से रहित गणधर आदिक (**स्मयम्**) गर्व/मद (**आहुः**) कहते हैं।

प्रश्न 21. हमारे सम्यग्दर्शन में बाधक होने वाले षट् अनायतन किसे कहते हैं?

उत्तर - 1. कुदेव 2. कुगुरु 3. कुधर्म 4. कुदेव (रागी देव) के सेवक 5. कुगुरु (परिग्रही, आरम्भी गुरु) के सेवक 6. कुधर्म (वीतराग धर्म से विपरीत धर्म) के सेवक, इस प्रकार ये षट् अनायतन कहलाते हैं। जो हमारे सम्यग्दर्शन में बाधक हैं, इन छहों की विनय, पूजा, नमस्कार आदि करने से मिथ्यात्व होता है।

प्रश्न 22. सम्यग्दर्शन सम्बन्धी सम्यक्त्व क्रिया एवं मिथ्यादर्शन सम्बन्धी मिथ्यात्व क्रिया की आगमिक परिभाषा बतलाइए?

उत्तर - आचार्य पूज्यपादस्वामी ने सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ में एवं आचार्य अकलंकदेव ने राजवार्तिक (तत्त्वार्थवार्तिक) ग्रन्थ में छठवें अध्याय के पाँचवें सूत्र की टीका में इस इस प्रकार कहा है कि - **''तत्र चैत्य गुरु प्रवचन पूजादि लक्षणा सम्यक्त्ववर्धनी सम्यक्त्व क्रिया''। ''अन्यदेवता स्तवनादि रूपा मिथ्यात्व हेतुकी प्रवृत्ति मिथ्यात्व क्रिया''।**

अर्थ-देव-गुरु -शास्त्र की पूजा इत्यादिक लक्षण रूप सम्यक्त्व को बढ़ाने वाली क्रिया सम्यक्त्व क्रिया है और सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के अलावा अन्य (सरागी) देव इत्यादिक का स्तवन आदि रूप मिथ्यात्व को करने वाली (बढ़ाने वाली) क्रिया मिथ्यात्व क्रिया है।

प्रश्न 23. कई देव इत्यादिकों ने मुनियों एवं मुनि अवस्था में स्थित तीर्थङ्करों की उपसर्गादि होने पर उनकी रक्षा की थी इसलिए उनकी पूजादि करने में क्या बाधा है?

उत्तर - यदि ऐसा है कि रक्षा मात्र करने से कोई संसारी पूज्य बन जाता है तो इस प्रकार मुनियों एवं जैन धर्म की रक्षा करने वाले जीव बहुत संख्या में हुए हैं, जिनके सैकड़ों उदाहरण हमारे प्रथमानुयोग के पुराण ग्रन्थों में पाए जाते हैं। जैसे कि -

1. युग के आदि में आदिनाथ (वृषभनाथ) मुनि महाराज को छह महीने के उपवास के बाद लगभग छह महीने तक आहार ग्रहण में अशुभ कर्म के उदय से अंतराय आया और बाद में राजा श्रेयांस ने जातिस्मरण (पिछले भव का ज्ञान) द्वारा मुनियों की नवधाभक्ति जानकर आदिनाथ मुनिराज को संयम रक्षा हेतु सर्वप्रथम इक्षुरस का आहारदान दिया और उनके मुनिधर्म की रक्षा की।
2. बीसवें तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत भगवान के काल में कुंथलगिरि से मोक्ष जाने वाले कुलभूषण एवं देशभूषण मुनिराजों के ऊपर कुंथलगिरि के पास अग्निप्रभ देव आकर भयानक आवाज करता हुआ उपसर्ग करता था तब उस समय राम, लक्ष्मण वहाँ आए और अपने पुरुषार्थ से उस देव को भगाकर उन मुनियों की रक्षा की और उसी समय ध्यान एकाग्र हो जाने से उन दोनों मुनियों को कैवल्य की उपलब्धि हुई।
3. भगवान महावीर के काल में जंगल में ध्यानस्थ चारण ऋद्धिधारक महातपस्वी यशोधर मुनि के ऊपर (गले में) जब मुनिधर्म की परीक्षा हेतु अजैन राजा श्रेणिक ने मरा हुआ सर्प डाला था और वे मुनि अनेक चींटियों के द्वारा खाए जाने पर भी तीन दिन तक मौन अविचल रहे और बाद में जब जैनधर्मी सम्यग्दृष्टि रानी चेलना को यह समाचार मालूम पड़ा तब उसने जंगल में आकर उस उपसर्ग का निवारण किया।
4. रत्नकरण्डकश्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा कि-जंगल में एक सुअर ने दो मुनियों को आवास दान देकर एवं उन मुनियों को व्याघ्र के उपसर्ग से बचाकर उनके संयम

धर्म की रक्षा की थी और जिसके फल से वह सुअर स्वर्ग में उत्पन्न हुआ था, इत्यादि। और आज हमारी सारी जैन समाज भक्तिपूर्वक मुनियों के आहार-विहार में सहयोगी बनकर उनके संयम धर्म की रक्षा करती है तथा समाज के कई अध्यक्ष, उपाध्यक्ष आदि महोदय जन हमारे तीर्थक्षेत्रों एवं जैन मंदिरों की रक्षा करने में हमेशा प्रयत्नशील रहते हैं इसलिए क्या ये सभी राजा श्रेयान्स, राम, लक्ष्मण, रानी चेलना, सुअर तिर्यञ्च एवं अध्यक्ष-उपाध्यक्ष आदि धर्म रक्षक होने से हमारे आराधनीय, उपासनीय हैं? और क्या इनकी मूर्ति बनाकर इनकी पूजा करना चाहिए? तो ! नहीं, क्योंकि ये सच्चे देवादिक की कोटी में नहीं आते और यदि हम ऐसे रक्षकों की ही पूजा करते रहेंगे तो सारा समय निकल जाएगा और हम इन सैकड़ों रक्षकों की पूजाराधना पूर्ण नहीं कर पाएंगे तथा फिर तीर्थङ्कर भगवान या सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करने को समय ही नहीं मिलेगा। इसलिए हमारे जैन शास्त्रों में तो त्यागमय धार्मिक गुणों की पूजा कही गई है, जो दशलक्षण धर्म एवं रत्नत्रय धर्म से युक्त होते हैं, ऐसे पञ्चपरमेष्ठी या सच्चे देव-शास्त्र-निर्ग्रन्थ गुरु हमारे पूज्य हैं एवं नमस्कार करने योग्य हैं।

प्रश्न 24. हमारे जिनालयों में पञ्च परमेष्ठी ही पूज्य हैं अन्य देवगति के देवादिक नहीं, ऐसा क्यों?

उत्तर - धार्मिक दृष्टि एवं गहन दृष्टि के साथ विचार करने पर हमारी यह शंका शीघ्र ही दूर हो जाती है, जैसे संसार से विरक्त साधु तो दूर रहे, गृह त्यागी, धवलवस्त्रधारी कोई एक ब्रह्मचारी जी हैं जिन्होंने घर छोड़ दिया, घर से मोह छोड़ दिया, कामवासना का त्यागकर ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया रंगीन कपड़े छोड़ दिए, सब शृंगार छोड़ दिया आदि और दूसरी ओर कोई एक देवगति के देव या देवी जी हैं, जो संसार के वैभव (परिग्रह) के राग से सहित हैं, पत्नी-पति के मोह से युक्त हैं, जिन्होंने कामवासनाएं नहीं छोड़ी, उन्होंने अभी ब्रह्मचर्य व्रत का कोई संकल्प नहीं लिया **(कायप्रवीचारा आ ऐशानात्)**जो रंगीन कपड़ों के धारी हैं एवं अनेक प्रकार के शृंगार इत्यादिक से सहित हैं तथा असंयमी हैं। इस प्रकार ऐसे ब्रह्मचारी जी एवं देव-देवी इन दोनों में कौन बड़ा व कौन छोटा है? ऐसी धार्मिक गुणों की अपेक्षा तुलना करने पर देव-देवी से त्यागी ब्रह्मचारी जी बड़े ठहरते हैं और ऐसे देव या देवी से बड़े ब्रह्मचारी जी की आप लोग कभी अष्टद्रव्य से पूजा एवं अभिषेक, आरती नमोऽस्तु इत्यादिक नहीं करते तब फिर उन त्यागी ब्रह्मचारी जी से छोटे देव या देवी की इस प्रकार पूजा इत्यादिक कैसे कर सकते हैं? अर्थात् नहीं कर सकते। और करेंगे तो पूज्यपाद आचार्य एवं अकलंक देव आदि ने इसे मिथ्यात्व क्रिया कहा है इसलिए ऐसा करने में मिथ्यात्व का दोष आता है। एवं देव-देवी से बड़े ब्रह्मचारी जी या क्षुल्लक, ऐलक जी इत्यादिक की भी पूजा अभिषेक का प्रसंग प्राप्त होता है तथा जिनवाणी में कहे गए 'पञ्च गुरुणं वन्दे' वीतरागाय नमः एवं 'चत्तारि सरणं पव्वज्जामि' आदि वाक्य झूठे सिद्ध होते हैं इसलिए हमें ऐसा महान् 'णमोकार मन्त्र', 'वीतरागाय नमः' एवं 'चत्तारि मंगल पाठ' रूप वाक्यों पर श्रद्धान करते हुए इन पाँच परमेष्ठियों की पूजा-अर्चना करना चाहिए एवं

सम्यग्दृष्टि बनना चाहिए।

प्रश्न 25. तो फिर क्या जैनशासन देव, देवियों का अस्तित्त्व ही नहीं मानता ?

उत्तर – नहीं; ऐसा नहीं; जैनशासन देव, देवियों का अस्तित्त्व तो मानता है लेकिन उन्हें आराधनीय नहीं मानता। जैनशासन उन देव-देवियों को पञ्च परमेष्ठियों का भक्त एवं सेवक मानता है एवं प्रसंगानुसार उनके अच्छे कार्यों की प्रशंसा भी करता है।

प्रश्न 26. सच्चे वीतराग देव के अलावा अन्य देवगति के देवों की पूजा इत्यादिक नहीं करना चाहिए यह तो हमें मालूम हो गया, लेकिन हम हमारे विशेष मंडल विधान, पञ्चकल्याणक आदि कार्यक्रमों में शामिल होने के लिए आगम के स्वरूप से सहित एवं अस्त्र-शस्त्रादिक से रहित ऐसे सौधर्म इन्द्र इत्यादिक देवों को बुला सकते हैं क्या ?

उत्तर – हाँ! ऐसे विशेष मण्डल विधान एवं पञ्चकल्याणक आदि सुअवसरों पर उन्हें अवश्य बुला सकते हैं।

प्रश्न 27. अर्घ क्यों और किसको चढ़ाया जाता है ?

उत्तर – अनर्घ पद की प्राप्ति हेतु पञ्च परमेष्ठियों या वीतराग गुणों को चढ़ाया जाता है।

प्रश्न 28. अगर हम लोग यक्ष इत्यादिक देवों की एवं कुगुरु आदि की अर्घादिक से पूजा नहीं करेंगे तो हमारी रक्षा कैसे हो सकेगी ?

उत्तर – आचार्य स्वामी कार्तिकेय मुनि द्वारा विरचित स्वामिकार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्र में कहा गया है कि-

जइ देवो विय रक्खइ, मंतो, तंतो य खेत्तपालो य ।
मियमाणं पि मणुस्सं, तो मणुया अक्खया होंति ॥25॥
एवं पेच्छन्तो विहु, गह-भूय-पिसाय- जोइणी जक्खं ।
सरणं मण्णइ मूढ़ो, सुगाढ़ मिच्छत्त भावादो ॥27॥

अर्थ-यदि कदाचित् मरते हुए मनुष्य की क्षेत्रपालादि देव और मन्त्र, तन्त्रादि रक्षा करने में समर्थ होते तो यह मनुष्य अक्षय हो जाता। इस तरह सम्पूर्ण संसार को शरण रहित देखता हुआ यह मूढ़ प्राणी तीव्र मिथ्यात्व के भाव से ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी, चण्डिका तथा यक्षादि की शरण को मानता है। अर्थात् यक्षादि की शरण को मानना तीव्र मिथ्यात्व का भाव है।

आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने समाधिभक्ति में कहा है कि –

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥ 16 ॥

अर्थ-तीनों लोकों में जीवों की रक्षा करने वाला वीतराग देव से उत्कृष्ट कोई देव न तो हुआ है और न होगा। इसलिए सच्चे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की पूजा करने से जो पुण्य कर्म का अर्जन होता है, उससे हमारी रक्षा होती है।

प्रश्न 29. हमारे घरों में बहुत पहले से इन (सरागी) राग-द्वेष सहित कुदेवादिक की पूजा, नमस्कार, विनय आदि कार्य चल रहा है, अतः उसे छोड़ने में भय उत्पन्न होता है, इसलिए इस भय को दूर

करने के लिए कोई आगम है क्या ?

उत्तर - हाँ; अवश्य है, सराग देव-देवी की पूजादिक छोड़ने का भय अज्ञान या कर्म सिद्धान्त की अनभिज्ञता का परिणाम है। सराग देव-देवी की पूजा जब मिथ्यात्व है तो मिथ्यात्व भी एक पाप है और पाप के फल से दुःख आते हैं तथा वीतराग पंच परमेष्ठी की पूजा सम्यक्त्व है और सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) से पुण्य बढ़ता है एवं पाप कर्मों का संवर (रुकना) होता है जिससे स्वयमेव कुदेवादिक की बाधा दूर होकर सम्यग्दृष्टि देवों द्वारा सुरक्षा भी प्राप्त होती है। अतः आचार्य समन्तभद्र स्वामी रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहते हैं कि -

भयाशास्नेह लोभाच्च कुदेवागमलिंगिनाम् ।
प्रणामं विनयं चैव न कुर्य्युः शुद्ध दृष्टयः ॥30॥

अन्वयार्थ :- (**शुद्धदृष्टयः**) शुद्धसम्यग्दृष्टि जीव (**भयाशास्नेह-लोभात्**) भय, आशा, प्रेम और लोभ से (**कुदेवागम लिङ्गिनाम्**) कुदेव, कुशास्त्र और कुगुरुओं के लिए (**प्रणामम्**) प्रणाम को (**च**) और (**विनयम्**) विनय को (**एव**) भी (**न कुर्य्युः**) नहीं करें।

प्रश्न 30. यहाँ मंदिरों में जो देवगति के देवों की आकृतियां बनी रहती हैं, उनका स्वरूप (आकार) आगम के आधार से कैसा होना चाहिए ?

उत्तर - जिनेन्द्र भगवान के उपासक देव-देवियों की उपासना (आराधना) करना तो मिथ्यात्व है ही क्योंकि वे सरागी एवं असंयमी होते हैं, लेकिन उन्हें आगम के स्वरूप से विपरीत कुरूप इत्यादिक रूप से बनाना देवों का अवर्णवाद भी है क्योंकि वे देवगति के देव, देवाधिदेव अरहंत भगवान, शास्त्र एवं निर्ग्रन्थ गुरु के चरणों में विनय से नीचे बैठते हैं और अतिशय सुन्दर होते हैं। जैसा कि आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने नंदीश्वरभक्ति में लिखा है -

कटक - कटि- सूत्र- कुण्डल- केयूर प्रभृति भूषितांगौ स्वंगौ।
यक्षौ कमल दलाक्षौ, परिनिक्षिपतः सलील चामर युग्लम् ॥17॥

अर्थ-कटकादि विविध अलंकारों से भूषित सुन्दर शरीर वाले, कमल की पांखुड़ियों की तरह जिनके दोनों नेत्र विस्तृत खुले हुए हैं, ऐसे दो यक्ष भगवान के दोनों ओर चँवर ढोर रहे हैं। ऐसे होते हैं, भगवान के भक्त यक्ष देव। (प्रथमानुयोग के ग्रन्थों में कहा गया है कि चक्रवर्ती के चरणों की सेवा में नियुक्त 32 (बत्तीस) यक्ष चक्रवर्ती के ऊपर चँवर ढोरते हैं एवं चक्रवर्ती के स्त्री आदि चौदह रत्नों की एक-एक हजार यक्ष देव सुरक्षा करते हैं इसलिए वे यक्षादि देव सम्यग्दृष्टि मनुष्यों से बहुत छोटे होने से वन्दनीय नहीं हैं।)

विशेष-जिनालय में जिनेन्द्र भगवान के आजू-बाजू चँवरधारी यक्ष और जिनालय के बाहर दरवाजे के आजू-बाजू दण्डधारी देव बनाने में कोई बाधा नहीं है। अगर चँवरधारी देव न बना पाएं तो कम-से-कम दो चँवर अवश्य लगा देना चाहिए, क्योंकि समवसरण में भगवान के ऊपर चौंसठ चँवरधारी चँवर ढोरते हैं लेकिन चँवरधारी अदृश्य रहते हैं, चँवर, मात्र दूर से

दिखते हैं। इसी तरह अगर जिनालय में समवसरण की रचना करना हो तो पहले मुनि, राजन् इत्यादिक की सभा बनाने के पश्चात् उन सौधर्म इत्यादिक देवों और शचि आदिक देवियों को भी भगवान से नीचे एवं भगवान की तरफ पीठ किए बिना, हाथ जोड़कर नमस्कार की विनीत मुद्रा में बना सकते हैं न कि आशीर्वाद की मुद्रा में।

प्रश्न 31. कोई-कोई लोग आज अज्ञानता के वश वीतरागी देवाधिदेव के समान सरागी देवों को पूजने लगे हैं (उनकी अष्टविध अर्चना, अभिषेक, आरती आदि करने लगे हैं) उन्हें इस मिथ्यात्व क्रिया का क्या फल मिलेगा ?

उत्तर - आचार्य सोमदेव ने कहा है कि -

देवं जगत्त्रयीनेत्रं, व्यन्तराद्याश्च देवताः ।
समं पूजा विधानेषु, पश्यन् दूरं व्रजेदधः ॥(य.ति.च.)

अर्थ-तीनों जगत् (लोकों) को देखने के लिए नेत्र स्वरूप अरहंत को तथा व्यन्तरादिक देवों को जो पूजा विधान में समान देखता है (मानता है) वह बहुत दूर नीचे जाता है अर्थात् नरक का पात्र होता है।

प्रश्न 32. हमारे जैनागम में कितने एवं कैसे लिंग (भेष) कहे गए हैं ?

उत्तर - आचार्य कुन्दकुन्द देव ने दर्शन पाहुड़ में कहा है कि -

एगं जिणस्य रूवं, बीयं उक्किट्ठसावयाणं तु।
अवरट्ठियाण तइयं, चउत्थपुण लिंग दंसणंणत्थि ॥ 18 ॥

(एगं जिणस्य रूवं) एक जिनेन्द्र भगवान का रूप अर्थात् निर्ग्रन्थ रूप नग्न भेष (बीयं) दूसरा (उक्किट्ठसावयाणं) उत्कृष्ट श्रावकों का अर्थात् ऐलक, क्षुल्लक का (तु) और (तइयं) तृतीय (अवरट्ठियाण) जघन्य स्थान में स्थित आर्यिका एवं क्षुल्लिका का लिंग अर्थात् भेष है (चउत्थ पुणलिंग) इसके अलावा चौथा कोई लिंग-भेष (दंसणं णत्थि) जिन दर्शन या जिनशासन में नहीं है।

विशेष : इस गाथा में आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने श्वेताम्बर साधुओं और मठाधिपति-भट्टारकों को जिनागम से असम्मत बतलाया है जिनमें परिग्रह त्यागकर पुनः परिग्रह अंगीकार किया जाता है।

प्रश्न 33. हमारे जैन शास्त्रों के अनुसार पूज्य रूप से लक्ष्मी एवं सरस्वती (जिनवाणी) का स्वरूप कैसा है ? क्या वह लक्ष्मी या सरस्वती स्त्री पर्याय सहित शृंगार एवं वस्त्रों वाली है अथवा इन शृंगार एवं वस्त्रों से रहित वीतराग गुणों से सहित है ?

उत्तर - हमारे जैनागम में तो मुक्ति (मोक्ष) को एवं अनन्तचतुष्टय रूप केवलज्ञान को लक्ष्मी नाम से पुकारा गया है न कि धन-वैभव तथा स्त्री को। वीतराग गुणों से सहित, ऐसी मुक्ति एवं अनन्त चतुष्टय रूप केवलज्ञान लक्ष्मी को हम जैनी लोग पूज्य मानते हैं और सरस्वती भी जिनवाणी (शास्त्र) अर्थात् तीर्थङ्करों की वाणी को कहा गया है। सरस्वती केवल स्त्री लिंग वाचक शब्द है

जिसे उदाहरण रूप में माता कहकर पुकारा गया है। वह जैन धर्म में तीर्थङ्करों से निकली और आचार्यों-मुनियों द्वारा शास्त्र रूप में लिखी गई सरस्वती-जिनवाणी (शास्त्र), कोई शृंगार सहित स्त्री पर्याय रूप स्त्री नहीं, क्योंकि वह जिनवाणी (शास्त्र), शृंगार, परिग्रह के त्यागी मुनियों द्वारा भी पूज्य मानी गई है। इसलिए वीतराग गुणों से सहित शास्त्र की पूजा ही केवलज्ञान लक्ष्मी की एवं जिनवाणी (सरस्वती) की पूजा कहलाती है।

प्रश्न 34. धार्मिक गुणों की अपेक्षा हमारे जैन मनुष्य बड़े हैं या देवगति के देव?

उत्तर - पञ्च कल्याणक में दीक्षा कल्याणक का एक विशेष प्रसंग इस संदर्भ में स्मरणीय है कि जब तीर्थङ्कर राजकुमार को संसार से वैराग्य उत्पन्न होता है तब उन्हें पालकी में बिठाकर जंगल में ले जाने की तैयारी होती है और उसी समय सौधर्म इन्द्रादिक देव स्वर्ग से नीचे आकर मनुष्यों को बोलते हैं कि सबसे पहले हम देवगण 'वैरागी राजकुमार' की पालकी उठाएंगे और मनुष्य लोग बोलते हैं कि-नहीं, पहले हम मनुष्य लोग 'वैरागी राजकुमार' की पालकी उठाने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे। इस प्रकार बार-बार बोलते हुए देव और मनुष्यों में वाद-विवाद जैसा होता है तदुपरान्त सभी इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि-देवों एवं मनुष्यों (दोनों) में से जो धार्मिक गुणों में बड़े होंगे वे ही पालकी उठाने का सौभाग्य प्राप्त करेंगे। तब वहाँ धार्मिक गुणों का विचार करते हुए तुलना की जाती है कि -

1. देवगति के देव संकल्पपूर्वक कोई पञ्चेन्द्रिय के विषयों का त्याग नहीं कर सकते। जबकि मनुष्य, संकल्पपूर्वक पञ्चेन्द्रिय विषयों का त्याग कर सकते हैं।
2. देव; मुनियों को अतिथिसंविभाग व्रतपूर्वक आहारदान नहीं दे सकते। जबकि मनुष्य मुनियों को अतिथिसंविभाग व्रतपूर्वक निर्दोष आहारदान दे सकते हैं।
3. देव; मुनिपद, श्रावकपद रूप संयम को धारण नहीं कर सकते। जबकि मनुष्य श्रेष्ठ मुनिपद एवं श्रावकपद को धारण कर सकते हैं।
4. देव उत्तर शरीर को बनाकर अर्थात् विक्रिया से दूसरा शरीर बनाकर (नीचे) मध्यलोक में धार्मिक कार्य में शामिल होने हेतु आते हैं और उनका मूल शरीर वहीं (स्वर्गिक) भोगों में लीन रहता है। जबकि मनुष्य पञ्चेन्द्रिय के विषयों से दूर होकर मूल शरीर से ही धार्मिक कार्य करने देव-शास्त्र-गुरु के चरणों में आते हैं।
5. देवगति के किसी भी देवों को वर्तमान भव से मोक्ष (मुक्ति) पाने की योग्यता नहीं। जबकि किन्हीं भव्य मनुष्य (पुरुष) को चतुर्थकाल में उसी भव से मोक्ष (मुक्ति, निर्वाण) पाने की योग्यता है।

उपर्युक्त इन्हीं कारणों की अपेक्षा मनुष्य धार्मिक गुणों में बड़ा है। ऐसा निर्णय होने के उपरांत पहले मनुष्यों को वैरागी राजकुमार (तीर्थङ्कर) की पालकी उठाने का सौभाग्य मिला, बाद में सौधर्म इन्द्र इत्यादिक देवों को मिला। इसलिए मनुष्य पर्याय दुर्लभता बताते हुए

मंगतरायकृत बारहभावना में कहा है कि- **नरकाया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्राणी** --। अर्थात् देव लोग हमेशा मनुष्य पर्याय प्राप्त करना चाहते हैं; लेकिन आज के कई अज्ञानी मनुष्य देव, देवियों को तरसते हैं या देवपर्याय के वैषयिक सुखों की कामना करते हैं यह बड़े आश्चर्य की बात है।

प्रश्न 35. रागी देव एवं असंयमी की वन्दना नमस्कार के सम्बन्ध में आचार्य कुन्दकुन्द देव ने क्या कहा है?

उत्तर - दर्शनपाहुड में आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ने कहा है कि - "**असंजदं ण वन्दे गंथ विहीणो वि सो ण वंदिज्ज**" असंयमी वंदनीय नहीं; चाहे वह नग्न भी क्यों न हो। (अर्थात् पहले गुणस्थान से लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक रहने वाले जो असंयमी देव, मनुष्यादि हैं वे वन्दनीय, आराधनीय नहीं।) और आगे मोक्षपाहुड में कहा है कि -

सपरावेक्खं लिङ्गं राई देवं असंजदं वंदं ।
मण्णइ मिच्छादिट्ठि ण हु मण्णइ सुद्ध सम्मत्ती ॥93 ॥

अर्थ-पर की अपेक्षा सहित लिंग अर्थात् कुगुरु, रागी देव और असंयमी को जो वंदनीय मानता है वह मिथ्यात्वी (मिथ्यादृष्टि) है शुद्ध सम्यक्त्वी जीव कभी उन्हें वन्दनीय नहीं मानता।

प्रश्न 36. इस जगत् में जीवों को धन, वैभव, सम्पत्ति कौन देता है एवं जीवों का उपकार एवं अपकार कौन करता है?

उत्तर - आचार्य स्वामी कार्तिकेय मुनि ने अपने कार्तिकेयानुप्रेक्षा शास्त्र में कहा है कि -

णय कोवि देदी लच्छी, ण कोवि जीवस्य कुणयं उवयारं ।
उवयारं अवयारं, कम्मं पि सुहासुहं कुणदि ॥319 ॥
भत्तीय पुज्जमाणो, विंतर देवो वि देदि जदि लच्छी ।
तो किं धम्मं कीरदि एवं चित्तेहि सद्दिट्ठी ॥320 ॥

अर्थ-इस जीव को कोई देवी-देवता इत्यादिक लौकिक लक्ष्मी (धन, वैभव, सम्पत्ति) नहीं देता और न कोई उपकार करता है, उपकार और अपकार तो पूर्व संचित शुभाशुभ कर्म के अनुसार होता है। भक्तिपूर्वक व्यन्तरादिक देवों को पूजने से यदि वे धन, वैभव, सम्पत्ति देते तो फिर धर्म करने की क्या आवश्यकता है। ऐसा सम्यग्दृष्टि विचार करता है।

इसी तरह आचार्य अमितगति विरचित सामायिकपाठ में भी कहा है कि -

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥30 ॥

अन्वयार्थः- (**आत्मना**) अपने द्वारा (**पुरा**) पहले (**यत् कर्म**) जो कर्म (**स्वयं कृतम्**) स्वयं किये गए हैं (**तदीयम्**) उनका (**शुभाशुभम् फलम्**) शुभ और अशुभ फल (**स्फुटं**) स्पष्ट रूप से (**लभते**) प्राप्त होता है (**यदि**) यदि (**परेण दत्तम्**) दूसरे के द्वारा दिया गया

(**लभ्यते**) [सुख दुःख] प्राप्त होता है (**तदा**) तब (**स्वयं कृतम् कर्म**) स्वयं के किये गए कर्म (**निरर्थकम्**) निरर्थक हो जावेंगे।

प्रश्न 37 आगम में जो पाँच प्रकार के मिथ्यात्व कहे हैं उनके नाम एवं उनका संक्षेप में अर्थ बतलाइए ?

उत्तर

1. **एकान्त मिथ्यात्व**-अनन्त धर्मात्मक वस्तु में से किसी एक अंश को ही मानना, सात नयों में से किसी एक नय को ही मानना, सप्त भंगों में से किसी एक भंग को ही मानना जैसे- (1.1)वस्तु को केवल क्षणिक ही मानना नित्य नहीं मानना आदि। (1.2)सात नयों में से केवल निश्चयनय को मानना व्यवहार आदि नयों को नहीं मानना या व्यवहार को मानना निश्चय आदि नयों को नहीं मानना। (1.3)सप्तभंगों में से केवल वस्तु को अस्ति रूप मानना किसी भी अपेक्षा से नास्ति आदि रूप नहीं मानना अथवा नास्ति रूप मानना अस्ति आदि रूप नहीं मानना आदि।
2. **विपरीत मिथ्यात्व** - वस्तु स्वरूप से विपरीत श्रद्धान करना जैसे-सग्रन्थ देव या गुरु को निर्ग्रन्थ, सच्चा देव गुरु मानना, केवली को कवलाहारी (ग्रासाहारी) मानना, स्त्री को मुक्ति मानना इत्यादि।
3. **संशय मिथ्यात्व** - वस्तु के सच्चे स्वरूप में संशय करना जैसे स्वर्गादि गतियां हैं या नहीं, मोक्ष है या नहीं, धर्म का लक्षण अहिंसा, दया है या नहीं, (दर्शन,ज्ञान,चारित्र की एकता) मोक्षमार्ग है या नहीं।
4. **विनय मिथ्यात्व**-सत्य या असत्य धर्म की पहचान अथवा सत्य या असत्य रूप देव-शास्त्र-गुरु की पहचान किए बिना ही जिस किसी सरागी, मिथ्या देव-देवी, कुशास्त्र कुगुरु इत्यादिक षट् अनायतनों की विनय करना, सभी देवता एवं सभी मतों को समान रूप मानना विनय या वैनयिक मिथ्यात्व कहलाता है।
5. **अज्ञान मिथ्यात्व**-जिसमें हित-अहित का कुछ भी विवेक नहीं होता, ऐसी श्रद्धा को अज्ञान मिथ्यात्व कहते हैं। जैसे-पशु हिंसा (पशु बलि) में धर्म रूप श्रद्धा करना, पेड़-पौधों में एवं वाहन (गाड़ी, मोटर) इत्यादिक में पूज्य एवं भगवान की कल्पना करना आदि।

प्रश्न 38. तीनों कालों में एवं तीनों लोकों में सम्यक्त्व के समान कल्याण रूप एवं मिथ्यात्व के समान अकल्याण रूप कोई अन्य वस्तु है क्या ?

उत्तर - नहीं, रत्नकरण्डकश्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि -

न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि ।
श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनूभृताम् ॥34॥

अन्वयार्थ :- (**तनूभृताम्**) प्राणियों के (**त्रैकाल्ये**) तीनों कालों में और (**त्रिजगत्यपि**) तीनों लोकों में भी (**सम्यक्त्वसमम्**) सम्यग्दर्शन के समान (**श्रेयः**) कल्याणरूप (**च**) और (**मिथ्यात्वसमम्**) मिथ्यादर्शन के समान (**अश्रेयः**) अकल्याणरूप (**किंचित्**) किंचित्

(**अन्यत्**) दूसरा (**न**) नहीं है ।

प्रश्न 39. मिथ्यात्व रूपी रूढ़ि छोड़े बिना एवं सम्यग्दर्शन को धारण किए बिना क्या जीव को सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र की प्राप्ति हो सकती है ?

उत्तर - नहीं, रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहा है कि -

विद्यावृत्तस्य संभूतिस्थितिवृद्धिफलोदयाः ।
न सन्त्यसति सम्यक्त्वे बीजाभावे तरोरिव ॥32 ॥

अन्वयार्थ :- (**बीजाभावे**) बीज के अभाव में (**तरोःइव**) वृक्ष की तरह (**सम्यक्त्वे असति**) सम्यग्दर्शन के न होने पर (**विद्यावृत्तस्य**) ज्ञान और चारित्र की (**सम्भूति-स्थिति-वृद्धि-फलोदयाः**) उत्पत्ति, स्थिति, वृद्धि और फल की उद्भूति (**न सन्ति**) नहीं होती।

(शास्त्रों में कहा है कि-सम्यग्दर्शन के बिना ग्यारह अंग और नौ पूर्वों का विशाल ज्ञान भी मिथ्याज्ञान कहलाता है तथा पाँच महाव्रतों का आचरण भी मिथ्याचारित्र कहलाता है। ऐसा मिथ्याज्ञान एवं मिथ्याचारित्र इस जीव ने अनन्त बार प्राप्त किया है, परन्तु उसके द्वारा वह मोक्ष रूप फल को प्राप्त नहीं कर सका।)

प्रश्न 40. मिथ्यात्व रूपी रूढ़ि या मूढ़ता के सम्बन्ध में एक उपयुक्त उदाहरण दीजिए ?

उत्तर - मिथ्यात्व रूपी रूढ़ि या मूढ़ता के सम्बन्ध में एक उपयुक्त उदाहरण इस प्रकार है कि एक ग्राम में कुछ अजैन महिलाएं किसी विशेष दिन प्रधान महिला को आगे करके एक कुम्भकार के घर के पास अपनी-अपनी टोकनी में कुछ सामान रखकर पेड़ की पूजा करने गईं। सभी महिलाएं प्रायः वही क्रिया करती जाती थीं जो प्रधान महिला करती थी, इस प्रकार पेड़ की पूजा रूप मिथ्यात्व की क्रिया करने के उपरान्त सभी महिलाएं जब वापस लौटने लगीं तब बीच रास्ते में ही कुम्भकार का एक गधा आकर खड़ा हो गया, ऐसी स्थिति में सबसे आगे रहने वाली प्रधान महिला ने उस गधे को रास्ते में से हटाने (भगाने) हेतु उस गधे के ऊपर अपना हाथ रखा और कौतुकवश उसके कुछ थोड़े बाल नोच लिए एवं उसकी इस क्रिया को उसके पीछे रहने वाली सभी महिलाओं ने देखा एवं वे सभी महिलाएं सोचने लगीं कि यह भी कोई पूजा से सम्बन्धित करने योग्य क्रिया है। अतः प्रधान महिला की इस क्रिया को देखकर वे सभी महिलाएं भी गधे के बाल नोचती चली गईं और थोड़ी ही देर में वह गधा बिना बाल का हो गया। आगे सभी महिलाएं अपने-अपने घर पहुँचीं और घर पर पहुँचते ही एक महिला के पति देव ने पत्नी से पूछा कि-तुम इतनी देर से कहाँ गईं थी ? तो उसने कहा कि मैं अपनी सहेलियों के साथ पेड़ की पूजा करने गयी थी। फिर से उसके पतिदेव ने पूछा कि वहाँ पेड़ की पूजा में तुमने क्या-क्या किया? तब उस महिला ने उत्तर दिया कि-मुझे कुछ आता नहीं जो-जो हमारे साथ रहने वाली महिला ने किया वही मैंने किया और आगे फिर उसके पति ने पूछा कि तुम यह टोकनी में रखकर क्या लाई हो? तब उसने कहा कि-अरे यह तो बाल नोचकर लायी हूँ गधे के। यह सुनते

ही उसके पति को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह अपनी पत्नी से बोला कि पूजा में गधे के बाल नोचने की क्या आवश्यकता थी? यह रूढ़ि या मूढ़ता कहाँ से आई? तब उस पत्नी ने कहा नहीं-नहीं मुझे मालूम नहीं मेरी आगे वाली सहेली (महिला) ने गधे के बाल नोच लिए इसलिए मैंने नोच लिए। फिर से उसके पतिदेव ने जोर से बोलते हुए कहा कि उस सहेली से जाकर तो पूछो उसने गधे के बाल क्यों नोचे? ऐसा पतिदेव के कहने पर उसने अपने आगे रहने वाली महिला से जाकर पूछा तो उसने कहा कि मुझे क्या मालूम मेरी आगे रहने वाली महिला ने नोचे इसलिए मैंने नोच लिए। फिर उससे भी आगे रहने वाली महिला से पूछा तो उसने भी यही कहा कि मेरे आगे वाली महिला ने नोचे इसलिए मैंने नोच लिए। इस प्रकार किसी को भी मालूम नहीं कि गधे के बाल क्यों नोचे। सभी अपनी आगे वाली महिला की ओर इशारा करती चली गईं। आखरी में जब वह सभी पूछते-पूछते प्रधान (हेड) महिला के पास पहुँची और उससे पूछा कि पूजा कार्यक्रम के बाद आपने गधे के बाल क्यों नोचे? तब उस प्रधान महिला ने लौटकर पूछा कि मुझे देख कर तुम सब महिलाओं ने भी क्या गधे के बाल नोच लिए ? तो उत्तर मिला हाँ, तब वह प्रधान महिला बड़े आश्चर्ययुक्त शब्दों में बोली अरे! मैंने तो उस गधे को रास्ते में से भगाने के लिए उसके ऊपर अपना हाथ रखा था और कौतुक (मजाक) वश उसके थोड़े से बाल नोच लिए थे, मुझे क्या मालूम था कि मेरे पीछे रहने वाली सभी महिलाएं भी मुझे गधे के बाल नोचता देखकर, उस गधे के बाल नोच-नोचकर उसे बिना बाल का कर देंगी। देखो भाई देखा-देखी में एक गधा बिना बाल का हो गया। इसी तरह बिना सोचे-समझे देखा-देखी में सरागी देवों या वृक्ष, धन, पैसा आदि अदेवों की पूजा आदि मिथ्या क्रियाओं के करने का नाम रूढ़ि या मूढ़ता होता है। और ऐसी रूढ़ि या मूढ़ताओं का त्याग करने वाला ही सच्चा अमूढ़दृष्टि अंग का धारक सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

प्रश्न 41. क्या जो शरीर एवं धन-वैभव आदि पुद्गलों को आत्मा रूप समझता है उसे हम सम्यग्दृष्टि कह सकते हैं ?

उत्तर - नहीं कह सकते हैं; क्योंकि सम्यग्दृष्टि तो शास्त्र के श्रद्धान के अन्तर्गत जीव, पुद्गल आदि षट् द्रव्यों और जीव, अजीव आदि सप्त तत्त्वों का सच्चा श्रद्धानी होता है तथा वह शरीर एवं धन वैभव आदि पुद्गलों का अस्तित्व आत्मा (जीव) से भिन्न-भिन्न ही समझता है।

प्रश्न 42. गृहीत मिथ्यात्व एवं अगृहीत मिथ्यात्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो जीव के द्वारा इस भव में किसी संयोगवश, सांसारिक कार्यों में लीन कुदेव, कुगुरुआदिक की उपासना रूप मिथ्यात्व ग्रहण कर लिया जाता है, उसे गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

जो इस जीव के अनादिकाल से शरीर एवं धन, वैभव आदि को आत्मा या अपनत्व रूप मानने की प्रवृत्ति रूप मिथ्यात्व चला आ रहा है, उसे अगृहीत मिथ्यात्व कहते हैं।

प्रश्न 43. सम्यक्त्व के उन पच्चीस मल दोषों के नाम बतलाइए जिनके छोड़ने पर शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है ?

उत्तर - सम्यक्त्व के पच्चीस मल दोष -

- **त्रिमूढ़ता**-लोक मूढ़ता देव मूढ़ता, और गुरुमूढ़ता ।
- **षड् अनायतन**-कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र, कुदेव का सेवक, कुगुरु का सेवक, कुशास्त्र का सेवक। इनकी विनय, उपासना, पूजा, अर्चना करना दोष है।
- **अष्ट शंकादिक दोष**-शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ़दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य और अप्रभावना। ये अष्ट शंकादिक दोष सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों से विपरीत होते हैं।
- **अष्टमद**-ज्ञानमद, पूजामद, कुलमद, जातिमद, बलमद, ऋद्धिमद, तपमद और रूपमद। इस प्रकार इन पच्चीस मल दोषों को छोड़ना चाहिए जिससे शुद्ध सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 44. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के लिए जीवों को क्या कोई गति या गोत्र का बंधन है?

उत्तर - नहीं; ऐसा कोई बंधन नहीं, सम्यग्दर्शन की प्राप्ति तो चारों गति के जीवों को एवं किसी भी ऊँच, नीच गोत्र वालों को हो सकती है। (आवश्यक यह है कि वह सच्चे धर्म का श्रद्धालु हो।)

प्रश्न 45. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति चारों गतियों के जीवों में भी कैसे जीवों को हो सकती है या सम्यग्दर्शन प्राप्त करने की योग्यता किस जीव को है?

उत्तर - चारों गति वाले संज्ञी पञ्चेन्द्रिय, पर्याप्तक, विशुद्धि युक्त, जाग्रत एवं साकार उपयोग से सहित भव्य जीव ही सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सकता है।

प्रश्न 46. योग्य मनुष्यों को पञ्चमकाल में जन्म से कितने वर्ष बाद सम्यग्दर्शन की प्राप्ति (उत्पत्ति) हो सकती है?

उत्तर - योग्य मनुष्यों को पञ्चम काल में जन्म से आठ वर्ष अन्तर्मुहूर्त काल के बाद सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो सकती है।

प्रश्न 47. क्या यहाँ पञ्चमकाल में कोई भी जीव सम्यग्दर्शन के साथ जन्म धारण नहीं कर सकता (उत्पन्न नहीं हो सकता)?

उत्तर - नहीं, पञ्चम काल में जितने भी जीव जन्म धारण करते हैं, वे सभी मिथ्यात्व के साथ ही जन्म धारण करते हैं। (इसलिए पञ्चमकाल में उत्पन्न हुए जीवों की जन्म जयन्ती या जन्म दिवस मनाने से मिथ्यात्व का दोष आता है।)

प्रश्न 48. सम्यग्दर्शन के सामान्य से कितने भेद हैं? एवं उनका लक्षण बतलाइए?

उत्तर - सम्यग्दर्शन के सामान्य से तीन भेद हैं-उपशम सम्यग्दर्शन, क्षयोपशम सम्यग्दर्शन और क्षायिक सम्यग्दर्शन।

1. **उपशम सम्यग्दर्शन**-अनादि मिथ्यादृष्टि के चारित्र मोहनीय सम्बन्धी अनन्तानुबन्धी कषाय की क्रोध, मान, माया, लोभ इन चार एवं दर्शन मोहनीय सम्बन्धी मिथ्यात्व प्रकृति इस

प्रकार इन पाँच प्रकृतियों के उपशम से, तथा सादि मिथ्यादृष्टि के अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व एवं सम्यक्त्व प्रकृति, इन सात प्रकृतियों के उपशम से जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है, उसे उपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं।

2. **क्षयोपशम सम्यग्दर्शन** -मिथ्यात्व, सम्यङ् मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन छह सर्वघाती प्रकृतियों के वर्तमानकाल में उदय में आने वाले निषेकों का उदयाभावी क्षय तथा आगामी काल में उदय में आने वाले निषेकों का सदवस्था रूप उपशम और सम्यक्त्व प्रकृति नामक देशघाती प्रकृति का उदय रहने पर जो सम्यग्दर्शन होता है, उसे क्षयोपशम सम्यग्दर्शन कहते हैं। (इसका दूसरा नाम वेदक सम्यग्दर्शन भी है।)

3. **क्षायिक सम्यग्दर्शन**-मिथ्यात्व, सम्यङ्मिथ्यात्व, सम्यक्त्वप्रकृति और अनन्तानुबन्धी सम्बन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ इन सात प्रकृतियों के क्षय से जो सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है,उसे क्षायिक सम्यग्दर्शन कहते हैं।

प्रश्न 49. उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक सम्यग्दर्शन इन तीन में से आज यहाँ (भरतक्षेत्र में) कौन-कौन से सम्यग्दर्शनों की प्राप्ति हो सकती है ?

उत्तर - आज (वर्तमान में) यहाँ क्षायिक सम्यग्दर्शन के बिना उपशम (प्रथमोपशम) और क्षयोपशम इन दो सम्यग्दर्शनों की प्राप्ति हो सकती है।

प्रश्न 50. आज यहाँ क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति क्यों नहीं हो सकती ?

उत्तर - क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति केवली, श्रुतकेवली के पादमूल में हुआ करती है और आज तो यहाँ केवली, श्रुतकेवली का सद्भाव नहीं है इसलिए आज यहाँ के जीवों को क्षायिक सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न 51. क्षायिक सम्यग्दर्शन की क्या महिमा है ?

उत्तर - उपशम सम्यग्दर्शन एवं क्षयोपशम सम्यग्दर्शन तो कई बार उत्पन्न होकर छूट सकते हैं परन्तु क्षायिक सम्यग्दर्शन एक बार उत्पन्न होकर कभी छूटता नहीं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि या तो उसी भव से मोक्ष चला जाता है या तीसरे भव में या चौथे भव में अवश्य मोक्ष चला जाता है, चौथे भव से अधिक संसार में नहीं रहता। जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि बद्धायुष्क (जिसे सम्यग्दर्शन होने के पहले ही दूसरे भव की आयु का बंध हो गया है) होने से (प्रथम पृथ्वी) नरक में जाता है अथवा देवगति में उत्पन्न होता है एवं वह वहाँ से मनुष्य होकर मोक्ष जाता है। इसलिए वह तीसरे भव में मोक्ष जाता है। और जो बद्धायुष्क भोगभूमि में मनुष्य या तिर्यञ्च होता है, वह वहाँ से देवगति में आता है एवं वहाँ से आकर मनुष्य होकर मोक्ष पाता है, इस प्रकार उसका चौथे भव में मोक्ष जाना बनता है। इन चार भवों में वर्तमान का भव भी समाहित है ।

विशेष-चारों गति सम्बन्धी आयु का बंध होने पर सम्यक्त्व हो सकता है, इसलिए

बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि का चारों गतियों में जाना संभव है। परन्तु यह नियम है कि सम्यक्त्व के काल में यदि मनुष्य और तिर्यञ्च को आयु का बंध होता है तो नियम से देवायु का ही बंध होता है और नारकी तथा देव को नियम से मनुष्यायु का ही बंध होता है।

प्रश्न 52. सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में आवश्यक निमित्त कौन से हैं?

उत्तर - कुन्दकुन्दाचार्य विरचित नियमसार ग्रन्थ के अनुसार-

सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अन्तरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी॥53॥

अन्वयार्थ - (**जिणसुत्तं**) जिनसूत्र [और] (**तस्स जाणया पुरिसा**) उनके जानने वाले निर्ग्रन्थ गुरु (**सम्मत्तस्स णिमित्तं**) सम्यक्त्व के निमित्त हैं। (**दंसणमोहस्स खयपहुदी**) दर्शन मोहनीय का क्षय, उपशम आदि (**अन्तरहेऊ भणिदा**) अन्तरंग हेतु कहे हैं।

सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ के अनुसार भी तिर्यञ्च एवं मनुष्यों में पूर्व भव का जातिस्मरण, धर्म श्रवण और जिनबिम्ब दर्शन ये तीन सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में निमित्त कारण कहे गए हैं।

प्रश्न 53. सम्यग्दृष्टि के चार आवश्यक गुण कौन से हैं?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि के चार आवश्यक गुण-प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य हैं।

1. **प्रशम**-क्रोधादि कषायों एवं रागादि की तीव्रता का न होना, प्रशम गुण है।
2. **संवेग**-कर्म बंधन के कारणभूत संसार से हमेशा भयभीत रहना, संवेग गुण है।
3. **अनुकम्पा**-सब जीवों पर दया भाव रखते हुए प्रवृत्ति करना, अनुकम्पा गुण है।
4. **आस्तिक्य**-अहिंसा परमो धर्म, जीवादि तत्त्व, षड्द्रव्यों एवं मोक्षमार्ग का स्वरूप जैसा सच्चे वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु ने बतलाया है, वैसा ही है अन्य नहीं, अन्य प्रकार से नहीं ऐसा अटूट श्रद्धान करना आस्तिक्य गुण है।

प्रश्न 54. सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) धारण करने का विशिष्ट फल क्या है?

उत्तर - आचार्य समन्तभद्र स्वामी विरचित रत्नकरण्डकश्रावकाचार में दर्शनाधिकार के अंतिम श्लोक में कहा गया है कि -

देवेन्द्रचक्रमहिमानममेयमानम्,
राजेन्द्रचक्रमवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्।
धर्मेन्द्रचक्रमधरीकृतसर्वलोकं,
लब्ध्वा शिवं च जिनभक्तिरुपैति भव्यः।।41॥

अन्वयार्थ :- (**जिनभक्तिः**) जिनेन्द्रदेव का भक्त (**भव्यः**) सम्यग्दृष्टि पुरुष (**अमेय-मानम्**) अपरिमित प्रतिष्ठा अथवा ज्ञान से सहित (**देवेन्द्रचक्र महिमानम्**) इन्द्रसमूह की महिमा को (**अवनीन्द्रशिरोऽर्चनीयम्**) राजाओं के मस्तक से पूजनीय (**राजेन्द्रचक्रम्**) चक्रवर्ती के चक्ररत्न को (**च**) और (**अधरीकृतसर्वलोकम्**) समस्त लोक को नीचा करने

वाले (**धर्मेन्द्रचक्रम्**) तीर्थङ्कर के धर्मचक्र को (**लब्ध्वा**) प्राप्त कर (**शिवम्**) मोक्ष को (**उपैति**) प्राप्त होता है।

प्रश्न 55. सम्यग्दर्शन का संसारी जीव की आगामी आयु, वेद, गति आदि पर क्या महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है?

उत्तर - ऐसा नियम है कि आयु कर्म का बन्ध हो जाने पर वह छूटता नहीं है। इसलिए जिस जीव को सम्यग्दर्शन होने के पहले नरकायु का बन्ध हो चुका है, उसे नरक अवश्य जाना पड़ता है, परन्तु वह पहले नरक के नीचे नहीं जाता। नरक में नपुंसक वेद के अतिरिक्त दूसरा वेद होता नहीं है, इसलिए प्रथम नरक तक उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि जीव को नपुंसक वेद में भी उत्पन्न होना पड़ता है। जिस जीव को सम्यग्दर्शन होने के पूर्व तिर्यञ्च अथवा मनुष्यायु का बन्ध हो चुका है उसे तिर्यञ्च और मनुष्यों में अवश्य ही उत्पन्न होना पड़ता है परन्तु वह नियम से भोगभूमि का ही तिर्यञ्च एवं मनुष्य होता है, कर्मभूमि का नहीं और भोगभूमि के बाद नियम से देव होता है। इसी प्रकार जिस जीव के सम्यग्दर्शन होने के पहले देवायु का बन्ध हो गया है वह देवों में उत्पन्न होता है, परन्तु वैमानिक देवों में ही उत्पन्न होता है भवनत्रिकों में नहीं। सम्यग्दृष्टि जीव स्त्री पर्याय में उत्पन्न नहीं होता है। यदि उसे सम्यग्दर्शन के पूर्व स्त्री वेद का बन्ध पड़ गया है तो वह पुरुषवेद के रूप में परिवर्तित हो जाता है। तिर्यञ्चों और मनुष्यों में उत्पन्न होने वाले सम्यग्दृष्टि जीवों में पूर्वबद्ध नपुंसक वेद भी पुरुषवेद के रूप में परिवर्तित हो जाता है। मनुष्य और तिर्यञ्च के सम्यग्दर्शन के काल में यदि आयु कर्म का बन्ध होता है तो नियम से वैमानिक देवों की आयु का ही बन्ध होता है और नारकी तथा देवों के सम्यग्दर्शन के काल में यदि आयु का बन्ध होता है तो कर्मभूमि के मनुष्य की ही आयु का बन्ध होता है, अन्य का नहीं। गुणस्थानों के अनुसार नरकायु का बन्ध पहले गुणस्थान तक, तिर्यञ्च आयु का दूसरे गुणस्थान तक, मनुष्य का चौथे गुणस्थान तक और देवायु का सातवें गुणस्थान तक ही बन्ध होता है। तीसरे गुणस्थान में किसी आयु का बन्ध नहीं होता और चौथे गुणस्थान तक जो मनुष्य आयु का बन्ध बताया है, वह देव और नारकियों की अपेक्षा से होता है क्योंकि तिर्यञ्च और मनुष्य के मनुष्यायु का बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है। सम्यग्दृष्टि जीव नीच कुल, विकलांग, अन्तर्मुहूर्त आदि की क्षुद्र आयु तथा दरिद्रता को प्राप्त नहीं होता। यह अव्रत सम्यग्दृष्टि की महिमा है। व्रत सहित सम्यग्दृष्टि जीव नियम से ऋद्धिधारी वैमानिक देव ही होता है। आगम का ऐसा नियम है कि जिस जीव के देवायु को छोड़कर अन्य आयु का बन्ध हो गया है, उसे उस पर्याय में न अणुव्रत प्राप्त होते हैं और न महाव्रत तथा अणुव्रत और महाव्रत के काल में यदि आयु का बंध होता है तो नियम से देवायु का बंध होता है। परन्तु सम्यग्दर्शन के लिए ऐसा नियम नहीं है क्योंकि उसकी प्राप्ति चारों आयु का बन्ध होने पर भी हो सकती है।

(रत्नकरण्डकश्रावकाचार के 35वें श्लोक के ऊपर विद्वान् (पं.) श्री पन्नालाल

साहित्याचार्य द्वारा आगमानुसार लिखित विशेषार्थ से उद्धृत)

प्रश्न 56. वे कौन से महान् व्यक्ति थे जिन्होंने ऐसा श्रेष्ठ नियम लिया था कि मैं सच्चे वीतरागी देव, शास्त्र, गुरुके अलावा अन्य किसी के चरणों में प्रणाम नहीं करूंगा और रावण राजा के राज्य में रहकर भी रावण राजा के चरणों में प्रणाम नहीं किया एवं आगे मुनि बनने पर जिनके रत्नत्रय से जिन्हें ऐसी विशेषता (ऋद्धि) प्राप्त हुई थी कि कैलास पर्वत पर जिनके माध्यम से (कैलास पर्वत पर बने हुए जिनालयों की रक्षा हेतु) पैर का अंगूठा दबाने मात्र से कैलास पर्वत के नीचे स्थित एवं पर्वत को हिलाकर उपसर्ग करने में तत्पर लंका का राजा रावण रो पड़ा था ?

उत्तर - ऐसा श्रेष्ठ नियम लेने वाले महान् व्यक्ति थे 'वालि राजन्' और आगे वे राजन, 'वालि मुनि' बने थे।

प्रश्न 57. सम्मेदशिखर की यात्रा प्रारम्भ होते समय आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज (चारित्र चक्रवर्ती) ने एक पंडित को किस प्रसंग पर कैसा उत्तम सम्यग्दर्शन का उपदेश दिया था ?

उत्तर - दक्षिणभारत से उत्तरभारत की ओर सम्मेदशिखर जी की यात्रा प्रारंभ होते समय आचार्य श्री शान्तिसागर जी महाराज से एक पंडित जी ने कहा कि-महाराज उत्तर भारत में मुनियों का विहार करना बड़ा कठिन है, वहाँ अंग्रेजों का जबरदस्त शासन है एवं मुनि संघ पर कुछ उपसर्ग हो सकता है। इसलिए अपने इस संघ के साथ कोई देवी की (यक्षिणी आदि की) मूर्ति रख लेना चाहिए। तब शांतिसागर जी महाराज ने इस प्रसंग पर उत्तर देते हुए कहा कि-अरे पंडितजी लगता है आप सम्यग्दृष्टि नहीं हैं, आप आगम नहीं जानते क्या ? पूज्यपाद आचार्य ने तो कहा है कि -

नहि त्राता नहि त्राता, नहि त्राता जगत्त्रये ।
वीतरागात् परो देवो, न भूतो न भविष्यति ॥ 16 ॥(स.भ.)

और आप यह क्या कर रहे हो। तब यह सुन कर पंडितजी बड़े शर्मिन्दा हुए और आचार्य श्री से बोले क्षमा करना महाराज मेरी गलती हुई। इस प्रकार तीनों लोकों में वीतराग देव ही सच्चा रक्षक है। उन वीतराग सच्चे प्रभु की भक्ति ही हमारी कर्म निर्जरा एवं अलौकिक पुण्य सम्पादन में कारण है और जिससे हमारी सदा रक्षा होती रहती है।

प्रश्न 58. वह कौन सी महिला थी जो वरुण राजादिक लोगों के द्वारा दिए गए अनेक बनावटी पच्चीसवें तीर्थङ्कर के दर्शन आदि प्रलोभनों को मिथ्यात्व समझकर अपने सम्यक्त्व धर्म से नहीं डिगी एवं जो सम्यग्दर्शन के अमूढ़दृष्टि अंग में सुप्रसिद्ध हुई

उत्तर - वह रानी थी - 'रेवती'।

अध्याय 10.
सम्यग्ज्ञान-धर्म-माहात्म्य

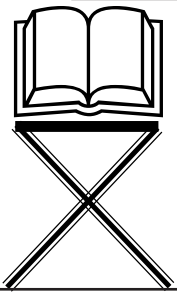

तीर्थङ्करों की वाणी से प्राप्त जो चार अनुयोग रूप सम्यग्ज्ञान है, वह सभी मोक्ष पथिकों के लिए परम औषधि के समान है। सम्यग्ज्ञान के माध्यम से जीवों के हेय उपादेय के ज्ञान के साथ-साथ सम्यक् चारित्र में वृद्धि एवं उसमें विशेष निखार आता है। मन की चंचलता को दूर करने एवं मोक्षमार्ग में विशेष रुचि या विशुद्धि बढ़ाने हेतु सम्यग्ज्ञान रूप शास्त्रों का अध्ययन परम अवलम्बन स्वरूप है। ऐसे उत्तम सम्यग्ज्ञान धर्म की प्रशंसा करते हुए दसवें अध्याय में 'सम्यग्ज्ञान धर्म माहात्म्य' को प्रस्तुत किया है।

प्रश्न 1. सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर - रत्नकरण्डकश्रावकाचार के अनुसार सम्यग्ज्ञान का स्वरूप -

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात्।
निःसन्देहं वेद य दाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥42॥

अन्वयार्थ :- (**यत्**) जो ज्ञान [**वस्तुस्वरूपम्**] वस्तु के स्वरूप को (**अन्यूनम्**) न्यूनतारहित (**अनतिरिक्तम्**) अधिकता रहित (**विपरीतात् विना**) विपरीतता रहित (**च**) और (**निःसंदेहं**) संदेह रहित (**यथातथ्यम्**) जैसा का तैसा (**वेद**) जानता है (**तत्**) उस ज्ञान को (**आगमिनः**) गणधर या श्रुतकेवली (**ज्ञानम्**) सम्यग्ज्ञान (**आहुः**) कहते हैं।

प्रश्न 2. सम्यग्ज्ञान के कितने भेद हैं? एवं उनके नाम बतलाइए?

उत्तर - सम्यग्ज्ञान के पाँच भेद हैं -मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान।

प्रश्न 3. मतिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर - इन्द्रिय और मन के निमित्त से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 4. श्रुतज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर - मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ में अन्य विशेष जानने को श्रुतज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 5. अवधिज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर - इन्द्रिय और मन के प्रयोग बिना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा को लेकर जो रूपी पदार्थों को

जानता है वह अवधिज्ञान कहलाता है। या अधिकतर नीचे के विषय को जानने वाला या परिमित विषय को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है।

प्रश्न 6. मनःपर्ययज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर - इन्द्रिय और मन के प्रयोग बिना, पर के मन में तिष्ठते (स्थित) हुए रूपी पदार्थों को एवं विकल्पों को जो जानता है वह मनःपर्ययज्ञान कहलाता है।

प्रश्न 7. केवलज्ञान किसे कहते हैं?

उत्तर - जो लोक अलोक को एवं त्रिलोक सम्बन्धी समस्त द्रव्यों और उनके गुणों को तथा उनकी भूत और भविष्यत् काल सम्बन्धी अनन्त पर्यायों को तथा वर्तमान काल सम्बन्धी समस्त पर्यायों को युगपत् (एक साथ) स्पष्ट जानता है, वह केवलज्ञान कहलाता है। अथवा जो निरावरण, असहाय ज्ञान समस्त या अनन्त को जानता है वह केवलज्ञान कहलाता है।

प्रश्न 8. मिथ्याज्ञान किसे कहते हैं एवं वे कितने होते हैं?

उत्तर - मिथ्यात्व के साथ होने वाले ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहते हैं। कुमतिज्ञान, कुश्रुतज्ञान और कुअवधिज्ञान ये तीन मिथ्याज्ञान हैं।

प्रश्न 9. सम्यग्ज्ञान के विषय भेद कितने हैं एवं उनके नाम क्या हैं?

उत्तर - सम्यग्ज्ञान के विषय भेद चार हैं-प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग।

प्रश्न 10. प्रथमानुयोग किसे कहते हैं?

उत्तर - जिसमें पुण्यवर्धक, एक पुरुष से सम्बन्धित कथा रूप चरित्र और त्रेसठ शलाका पुरुषों से सम्बन्धित कथा रूप पुराण का वर्णन होता है तथा जो रत्नत्रय और समाधि का खजाना होता है, उसे प्रथमानुयोग कहते हैं।

प्रश्न 11. करणानुयोग का क्या लक्षण है?

उत्तर - जो लोक अलोक के विभाग को, युगों के परिवर्तन को तथा चारों गतियों को दर्पण के समान जानता है, उसे करणानुयोग कहते हैं।

प्रश्न 12. चरणानुयोग की समीचीन परिभाषा बतलाइए?

उत्तर - जो गृहस्थों और मुनियों के सम्यक्चारित्र की उत्पत्ति, वृद्धि और रक्षा के साधनों का वर्णन करता है, उसे चरणानुयोग कहते हैं।

प्रश्न 13. द्रव्यानुयोग का सच्चा स्वरूप क्या है?

उत्तर - जिस अनुयोग में पञ्चास्तिकाय, छह द्रव्य, सात तत्त्व और नौ पदार्थों का विस्तार से वर्णन होता है, उसे द्रव्यानुयोग कहते हैं।

प्रश्न 14. प्राथमिक अवस्था से हमें सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए सामान्य रूप से कैसे एवं कौन-कौन से ग्रन्थों (शास्त्रों) का स्वाध्याय करना चाहिए?

उत्तर - प्राथमिक अवस्था में हमें सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति के लिए वीतराग भगवान की वाणी रूप सच्चे आगम से प्रणीत, रूढ़िवाद से रहित चारों अनुयोगों के समीचीन शास्त्रों का स्वाध्याय करना

चाहिए। जैसे-श्रेणिकचरित्र, सुकुमालचरित्र, श्रीपालचरित्र, प्रद्युम्नचरित्र, जीवन्धरचरित्र, जम्बूस्वामी चरित्र, वृषभनाथ चरित्र, ऋषभावतार, बाहुबली चरित्र, जयोदय महाकाव्य, भद्रोदय काव्य, भाग्योदय (भाग्य-परीक्षा), हित सम्पादक, गुणसुन्दर वृत्तान्त, उत्तरपुराण (जिसमें अजितनाथ भगवान से लेकर महावीर भगवान् पर्यंत तेईस तीर्थङ्करों के वैराग्य का वर्णन एवं सगर चक्रवर्ती, राम, हनुमान आदि अनेक महापुरुषों के धर्म पुरुषार्थ का विशेष वर्णन है।), समुद्रदत्त चरित्र, पवित्र मानव जीवन, कर्तव्य पथ प्रदर्शन इत्यादि। और रत्नकरण्डकश्रावकाचार (मानवधर्म), छहढाला (दौलतरामजीकृत), तत्त्वार्थसूत्र, आत्मानुशासन, मुनि-मनोरञ्जनाशीति, इष्टोपदेश, समणसुत्तं (जैनगीता), समाधिशतक, दशभक्ति संग्रह, पञ्चशती (जिसमें दिगम्बर आचार्य विद्यासागरजी महाराज द्वारा संस्कृत भाषा में रचित निरञ्जन शतकम्, भावना शतकम् परीषहजय शतकम्, सुनीति शतकम् और श्रमण शतकम् ऐसे पाँच शतक हैं।) पद्मनन्दी-पञ्चविंशंतिका, ज्ञानार्णव, चारित्रपाहुड एवं स्वामि-कार्तिकेयानुप्रेक्षा, सर्वार्थसिद्धि, (सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ पर लिखे गए वार्तिक), त्रिलोकसार, लब्धिसार आदि। तथा द्रव्यसंग्रह, सम्यक्त्वसारशतक, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड (गोम्मटसार), आलापपद्धति, कातन्त्र संस्कृत व्याकरण, जैनेन्द्र संस्कृत व्याकरण (ये दोनों संस्कृत व्याकरण जैनधर्म के रहस्य को जानने के लिए जैनाचार्यों द्वारा लिखी गई हैं।) वृहत् स्वयंभूस्तोत्र, आप्तमीमांसा, युक्त्यनुशासन, अष्टसहस्री,पञ्चास्तिकाय, द्वादशानुप्रेक्षा, अष्टपाहुड, निजानुभवशतक, विवेकोदय, क्षपणासार, नियमसार, प्रवचनसार, समयसार, कुन्दकुन्द का कुन्दन (जिसमें कुन्दकुन्द आचार्य के ग्रन्थों की मुख्य-मुख्य 134 गाथाएं अर्थ सहित लिखी गई हैं।) इत्यादि सहस्रों समीचीन अनेकान्तमय शास्त्रों का स्वाध्याय हमें सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति एवं वृद्धि के लिए अवश्य करना चाहिए।

(स्वाध्याय करने में सरलता की अपेक्षा इन शास्त्रों के नामों में करणानुयोग के शास्त्रों के नामों के पहले चरणानुयोग के शास्त्रों के नाम दे दिए गए हैं।)

प्रश्न 15. साधुओं द्वारा पढ़ने योग्य (स्वामी वट्टकेर आचार्य द्वारा रचित) वह महान् ग्रन्थ कौन-सा है जिसमें मुनियों एवं आर्यिकाओं के सम्यक्चारित्र का एवं जिसमें मुनियों सम्बन्धी अट्ठाईस मूलगुणों, उनकी वीरचर्या और उनके उत्तमध्यान आदि का श्रेष्ठ वर्णन है?

उत्तर - वह महान् ग्रन्थ है मूलाचार।

प्रश्न 16. आचार्य कुन्दकुन्द देव की सम्यग्ज्ञान रूपी महिमा के द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थों के नाम बतलाइए?

उत्तर - आचार्य जिनचन्द्र स्वामी के शिष्य कुन्दकुन्दाचार्य के प्रमुख ग्रन्थ - समयसारपाहुड (प्राभृत) पञ्चास्तिकायपाहुड, प्रवचनसारपाहुड, अष्टपाहुड, नियमसारपाहुड, जोणीसारपाहुड, क्रियासारपाहुड, आराहणापाहुड, लब्धिसारपाहुड, बंधपाहुड, रयणसारपाहुड, तत्त्वसारपाहुड, भावसारपाहुड, अंगपाहुड, क्षपणपाहुड, द्रव्यपाहुड, बोधिपाहुड, क्रमपाहुड, पूयपाहुड, विद्यापाहुड, उघातपाहुड, दृष्टिपाहुड, सिद्धान्तपाहुड, लोयपाहुड, चरणपाहुड,

समवायपाहुड, नयपाहुड, प्रकृतिपाहुड, चूर्णिपाहुड, पञ्चवर्गपाहुड, एयमपाहुड, कर्मविपायपाहुड, विहियापाहुड, वस्तुपाहुड, सूत्रपाहुड, बुद्धिपाहुड, पयद्धपाहुड, उत्पादपाहुड, संठानपाहुड, नितायपाहुड, साल्मीपाहुड आदि चौरासी पाहुड और बारसाणुवेक्खा। (यह वर्णन तमिल भाषा के ताड़पत्र ग्रन्थ से सन् 1995 में प्राप्त हुआ)

प्रश्न 17. हमारे जैनधर्म का महान् शास्त्र 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' जिसका नाम हमारे आगम ग्रन्थों में मिलता है, वह कब कौन से आचार्य द्वारा लिखा गया है ? और वह कितने श्लोक प्रमाण है ? एवं उसमें कौन सा वर्णन है ?

उत्तर - हमारे जैनधर्म का महानशास्त्र 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' महावीर भगवान के निर्वाण के (मोक्ष जाने के) पाँच सौ वर्ष बाद स्वामी श्री समन्तभद्र आचार्य द्वारा लिखा गया है एवं जो (तत्त्वार्थ सूत्र की टीका या विस्तार रूप में) चौरासी हजार श्लोक प्रमाण है तथा जिसमें प्रमुखता से त्रिलोक एवं सप्ततत्त्वों का वर्णन है। ऐसा हमारे आगम ग्रन्थों से जाना जाता है। (अभी वर्तमान में यह 'गन्धहस्तिमहाभाष्य' विशालकाय ग्रन्थ तमिलनाडु देश की ताड़पत्र लिपियों के अनुसार जर्मन देश के ग्रन्थागार में रक्षित है।)

प्रश्न 18. छहढाला एक लघु एवं मार्मिक ग्रन्थ की छहों ढालों में मोक्षमार्ग में अत्यन्त महत्त्व रखने वाले मुख्य रूप से कौन-कौन से महत्त्वपूर्ण विषयों का वर्णन किया गया है ?

उत्तर - छहढाला ग्रन्थ की छहों ढालों में क्रमशः -

- **पहली ढाल में**-निगोद एवं चारों गति सम्बन्धी संसार के पञ्च परिवर्तन का वर्णन है।
- **दूसरी ढाल में**-संसार भ्रमण के कारणभूत मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्याचारित्र का वर्णन है।
- **तीसरी ढाल में**-संसार से तिराने वाले सम्यग्दर्शन का वर्णन है।
- **चौथी ढाल में**-सम्यग्ज्ञान एवं श्रावकों के सम्यक्चारित्र का वर्णन है।
- **पांचवी ढाल में**-वैराग्य उत्पन्न कराने वाली बारह भावनाओं का वर्णन है।
- **छठवी ढाल में**-मुनियों के सकल संयम एवं उनके स्वरूपाचरण चारित्र का वर्णन तथा विषय कषायों के त्याग का उपदेश है।

प्रश्न 19. आचार्य समन्तभद्रस्वामी रचित रत्नकरण्डकश्रावकाचार के सात अधिकारों में मोक्षमार्गी जीवों को अत्यन्त उपयोगी मुख्य रूप से कौन-कौन से विषय का वर्णन किया गया है ?

उत्तर - रत्नकरण्डकश्रावकाचार के सात अधिकारों में क्रमशः -

प्रथम अधिकार में - सम्यग्दर्शन का वर्णन है।

द्वितीय अधिकार में-सम्यग्ज्ञान का वर्णन है।

तृतीय अधिकार में -सम्यक्चारित्र से सम्बन्धित पञ्चाणुव्रत और श्रावक के अष्ट मूलगुणों का वर्णन है।

चतुर्थ अधिकार में-तीन गुणव्रतों का वर्णन है।

पञ्चम अधिकार में-चार शिक्षाव्रतों, चार दान एवं जिनेन्द्र पूजा का वर्णन।

षष्ठ अधिकार में-सल्लेखना (समाधिमरण) का वर्णन है।

सप्तम अधिकार में -देशव्रती श्रावक की ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन है।

प्रश्न 20. गृद्धपिच्छाचार्य (उमास्वामी) द्वारा विरचित तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के दस अध्यायों में मुख्य रूप से कौन-कौन से तत्त्वों का वर्णन किया गया है ?

उत्तर - तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) के दस अध्यायों में मुख्य रूप से क्रमशः-प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ अध्याय में जीव तत्त्व का,पञ्चम अध्याय में-अजीव तत्त्व का, षष्ठ और सप्तम अध्याय में -आस्रवतत्त्व का, अष्टम अध्याय में-बन्धतत्त्व का, नवम अध्याय में -संवर और निर्जरा तत्त्व का एवं दशम अध्याय में-मोक्ष तत्त्व का प्रमुखता से वर्णन किया गया है।

प्रश्न 21. अनेकान्त सम्यग्ज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें वस्तु के अनेक धर्मों का कथन किया जाता है, उसे अनेकान्त सम्यग्ज्ञान कहते हैं। जैसे-आत्मा ज्ञान गुण की अपेक्षा जानता है तो दर्शन गुण की अपेक्षा देखता भी है।

प्रश्न 22. एकान्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें वस्तु के अनेक धर्मों में से एक ही धर्म का कथन किया जाए, उसे एकान्त कहते हैं। जैसे आत्मा केवल जानती ही है या-आत्मा केवल शुद्ध ही है।

प्रश्न 23. सम्यक् एकान्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें किसी अपेक्षा को लेकर वस्तु के अनेक धर्मों में से एक धर्म का कथन किया जाए, उसे सम्यक् एकान्त कहते हैं। जैसे-आत्मा दर्शन गुण की अपेक्षा देखती ही है, जानती नहीं ।

- आत्मा ज्ञान गुण की अपेक्षा जानती ही है, देखती नहीं।
- आत्मा पर्यायार्थिक नय या संसारापेक्षा से अशुद्ध ही है शुद्ध नहीं। इत्यादि।

(यही एकान्त, अपेक्षा युक्त होने से अनेकान्त की कोटि में आता है।)

प्रश्न 24. मिथ्या एकान्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें अनेकान्तात्मक (अनेक धर्मात्मक) वस्तु के किसी भी अपेक्षा के बिना एक ही धर्म का कथन किया जाए एवं उस वस्तु में रहने वाले दूसरे धर्म को नकारा जाए उसे मिथ्या एकान्त कहते हैं। जैसे-आत्मा केवल जानती ही है, किसी भी अपेक्षा से देखती नहीं। आत्मा केवल शुद्ध ही है किसी भी अपेक्षा से अशुद्ध नहीं। आत्मा केवल नित्य ही है, किसी भी अपेक्षा से अनित्य नहीं। (एकान्त और मिथ्या एकान्त में कथन शैली मात्र का भेद है अन्य नहीं।)

प्रश्न 25. मिथ्या एकान्तवादियों (एकान्त मिथ्यादृष्टियों) के लक्षण क्या हैं ?

उत्तर -

1. वस्तु को एकान्त से केवल नित्य (शाश्वत, ध्रौव्य) ही मानना और किसी भी अपेक्षा से अनित्य (अशाश्वत, अध्रुव) नहीं मानना।
2. वस्तु को केवल अनित्य(क्षणिक) ही मानना किसी भी अपेक्षा से नित्य नहीं मानना।
3. केवल निश्चय धर्म को ही मानना और व्रत, दान,पूजा, शील एवं उपवास आदि सम्यक्

व्यवहार धर्म को नहीं मानना या ऐसे सम्यक् व्यवहार-धर्म को मिथ्या कहना।

4. केवल व्यवहार धर्म को मानना एवं निश्चय धर्म पर श्रद्धा ही नहीं करना (या रखना)।
5. उपादान को तो मानना या स्वीकार करना और निमित्त (हेतु, कारण, साधन) को नहीं मानना या अकार्यकारी बताना।
6. सभी जीव द्रव्यों को केवल भगवान के समान शुद्ध मानना, किसी भी अपेक्षा से संसारी, अशुद्ध नहीं मानना।
7. द्रव्य से पर्याय को या द्रव्य से गुण को भिन्न-भिन्न मानना और पर्याय की और गुणों की अशुद्धता में द्रव्य का कोई सम्बन्ध नहीं, ऐसा मानना।
8. पञ्चम काल में मुनि नहीं होते, ऐसा बताना ।
9. केवल भावपूजा ही धर्म है द्रव्यपूजा धर्म नहीं ऐसा कहना।
10. दानादिक में धर्म मानना अज्ञान है, दुर्गति का कारण है, ऐसा बताना।
11. चलते-फिरते, खाते-पीते तथा दुकान आदिक में भी पञ्च पापों के साथ भी शुद्धोपयोग होता है, ऐसा बोलना इत्यादि।

(ऊपर बताए गए एकान्त मिथ्यात्व रूप भाव इस काल में मुनियों (सद्गुरुओं) के दर्शन नहीं करने से, एवं शास्त्रों को प्रथमानुयोग आदिक के क्रम का उल्लंघन कर द्रव्यानुयोग आदि से प्रारम्भ कर अक्रम से पढ़ने से होते हैं।)

प्रश्न 26. निश्चयवादियों या मिथ्या एकान्तवादियों के द्वारा किया गया क्या और भी कुछ आगम से विपरीत कथन है जो सभी जीव आत्माओं के कल्याण में बाधक होता है?

उत्तर - हाँ, जैसे कई निश्चयवादी या मिथ्या एकान्तवादी लोग-मोक्षमार्ग में ज्ञान की तो बहुत श्रेष्ठता बतलाते हैं, लेकिन सम्यग्दर्शन एवं व्रतादिक रूप सम्यक्चारित्र को कष्टप्रद जानकर उनका कथन ही नहीं करना चाहते। जो निम्न प्रकार हैं-

- वे पञ्चेन्द्रिय के विषयों के भोगने में भी कर्मबन्ध नहीं, ऐसा मिथ्या कथन करते हैं। वे कहते हैं कि जड़ को जड़ ही भोगता है। फिर मुर्दा क्यों नहीं भोगता? राग किसमें होता है जड़ में या आत्मा में? फिर कर्मबन्ध किसमें होगा? क्योंकि "**रत्तोबन्धदि कम्मं**" ऐसा समयसार में कहा है ऐसा पूछे जाने पर कह देते हैं कि-ये सब पर्यायदृष्टि है द्रव्यदृष्टि रखना चाहिए। लेकिन पर्याय का कथन भगवान ने एवं कुन्दकुन्दाचार्य ने भी किया है, अगर मात्र पर्याय को छोड़कर द्रव्य को मानेंगे तो अनेकान्त की जगह एकान्त मिथ्यात्व हो जाता है, यह वे नहीं जानते।
- वे मरण को तो स्वीकार करते हैं लेकिन आयु कर्म की अकाल में उदीरणा हो जाने से होने वाले अकालमरण (कदलीघात मरण) को नहीं मानते। और अकाल मरण के भय से रोग शमन हेतु औषधियां भी खाते रहते हैं।
- आगम का गहन अध्ययन न होने से व्रत, नियम, संयम को केवल आस्रव, बन्ध का कारण

मानते हैं किन्तु उनसे होने योग्य संवर, निर्जरा को नहीं स्वीकारते।

- द्रव्यानुयोग को तो बड़े आदर से पढ़ते हैं लेकिन भगवान के द्वारा प्रतिपादित प्रथमानुयोग आदि को नीम, चिरायते के समान कड़वे समझ कर उनकी चर्चा भी नहीं करना चाहते।
- पुरुषार्थहीनता के कारण मोक्ष प्राप्ति हेतु सम्यक्त्व प्राप्ति के लिए काललब्धि को ही श्रेष्ठ बतलाते हैं लेकिन क्षयोपशम, विशुद्धि आदि लब्धियों का कथन ही नहीं करना चाहते।
- चतुर्थ गुणस्थान आदि में होने वाले अष्ट अंग के आचरण रूप सम्यक्त्वाचरण चारित्र को या पञ्चम और षष्ठ गुणस्थान आदि में होने वाले व्रतादि रूप संयमाचरण चारित्र को तो कभी प्राप्त ही नहीं करते और सीढ़ियों के बिना मंजिल पाने के समान बारहवें गुणस्थान में होने वाले शुद्धात्मलीनता रूप स्वरूपाचरण चारित्र को प्राप्त करना चाहते हैं इत्यादि।

यह सभी उनका आगम से विपरीत कथन मुमुक्षु जीवात्माओं के कल्याण में (मोक्ष की प्राप्ति में) बाधक हैं।

प्रश्न 27. चार अनुयोगों में से सबसे पहले प्रथमानुयोग को ही क्यों पढ़ना चाहिए?

उत्तर - श्री गुणभद्र आचार्य कृत उत्तरपुराण के चतुःपञ्चाशत्तमं (चौवनवें) पर्व में कहा गया है कि -

दानं पूजां तथान्यञ्च, मुक्त्यै ज्ञानेन संस्कृतम्।
तत्पुराण श्रुतेः श्रव्यं, तत्तदेव हितैषिभिः ॥5॥

अर्थ-दान,पूजा तथा अन्य कारण यदि सम्यग्ज्ञान से सुशोभित होते हैं तो वे मुक्ति के कारण होते हैं और चूंकि वह सम्यग्ज्ञान इस पुराण के सुनने से होता है अतः हित की इच्छा करने वाले पुरुषों के द्वारा अवश्य ही सुनने योग्य है।

अर्हद्भिर्भाषितं सूक्तमनुयोगैश्चतुष्टयम्।
तेषु पूर्वं पुराणानि तस्मात्प्रोक्तः श्रुतिक्रमः ॥6॥

अर्थ-अर्हंत भगवान ने अनुयोगों के द्वारा जो चार प्रकार के सूक्त बतलाए हैं उनमें पुराण प्रथम सूक्त है। भगवान ने इन पुराणों से ही सुनने (स्वाध्याय) का क्रम बतलाया है। इसी तरह आचार्य समंतभद्र स्वामी ने रत्नकरण्डकश्रावकाचार में प्रथमानुयोग को बोधि (रत्नत्रय की प्राप्ति) और समाधि का निधान अर्थात् खजाना कहा है।

प्रश्न 28. सम्यग्ज्ञान के अष्ट अंग कौन से हैं एवं उनका संक्षेप में अर्थ बतलाइए?

उत्तर -

1. **कालाचार**-सुयोग्य काल में शास्त्र के पठन-पाठन एवं मनन (विचार, चिंतन) करने को कालाचार कहते हैं।
2. **विनयाचार**-पवित्र (शुद्ध), जल से हाथ-पैर आदि धोकर पवित्र निर्मल स्थान में पद्मासन आदि आसनों से बैठकर मंगलाचार एवं नमस्कार पूर्वक शास्त्रों या श्रुत के पठन, पाठन और मनन करने को विनयाचार कहते हैं।
3. **उपधानाचार**-धारणा के साथ ज्ञान की आराधना करने को उपधानाचार कहते हैं।
4. **बहुमानाचार**-ज्ञान का, शास्त्र का और ज्ञान प्रदान करने वाले गुरुजनों का पूर्ण आदर करना

बहुमानाचार कहलाता है।

5. **अनिह्नवाचार**-जिस गुरुसे या जिस शास्त्र से ज्ञान प्राप्त किया है उस गुरु के या शास्त्र के नाम को न छिपाने को अनिह्नवाचार कहते हैं।
6. **व्यञ्जनाचार**-ग्रन्थ में रहने वाले शब्द, अक्षर, पद, मात्रादिक का व्याकरण की शुद्धतापूर्वक पठन-पाठन करने को व्यञ्जनाचार (शब्दाचार) कहते हैं।
7. **अर्थाचार**-शब्द का जो अर्थ है उसके निश्चय करने को अर्थाचार कहते हैं।
8. **उभयाचार** -शब्द और अर्थ दोनों के पठन-पाठन एवं मनन (विचार,चिंतन) करने को उभयाचार कहते हैं।

प्रश्न 29. सम्यग्ज्ञान के अन्तर्गत कहे गए वे सात नय कौन से हैं, जिनके जानने से हमें अनेकान्त या स्याद्वाद धर्म का सच्चा ज्ञान होता है?

उत्तर -

1. **नैगमनय**-जो संकल्प मात्र को ग्रहण करे, उसे नैगमनय कहते हैं। जैसे-पानी भरते हुए या चावल शोधन करते हुए व्यक्ति से किसी ने पूछा कि तुम क्या कर रहे हो? तो वह कहता है कि मैं भात पका रहा हूँ। या सुबह से जल्दी तैयारी में लगे हुए व्यक्ति से पूछा कि तुम कहाँ जा रहे हो? तो वह बोलता है कि मैं नगर जा रहा हूँ। क्योंकि उन्होंने आगे वह कार्य करने का संकल्प कर लिया है। इस प्रकार यह कथन संकल्प मात्र को ग्रहण करने वाले नैगमनय की अपेक्षा ठीक है।
2. **संग्रहनय**-जो भेद सहित सब पर्यायों को अपनी जाति के अविरोध द्वारा एक मानकर सामान्य से सबको ग्रहण करता है, वह संग्रहनय कहलाता है। जैसे-स्त्री-पुरुष आदि का भेद न करते हुए कहा जाए कि इस धर्मसभा में दो हजार मनुष्य हैं। तो यहाँ स्त्री, पुरुष, बालक आदि को संग्रह करके कहा गया है अतः यह कथन संग्रहनय की अपेक्षा सत्य है।
3. **व्यवहारनय**-उपर्युक्त संग्रहनय से संगृहीत पदार्थों का विधिपूर्वक भेद करने वाला व्यवहार नय होता है। जैसे-भेद करते हुए कहा कि यहाँ सभा में आठ सौ पुरुष, ग्यारह सौ स्त्रियां एवं सौ बालक हैं। अथवा यहाँ दो सौ नौकरी करने वाले, छह सौ व्यापारी एवं बाकी कृषक विद्यमान हैं। उनके कार्यों के भेद से यह कथन किया अतः ऐसा कथन व्यवहारनय की अपेक्षा निर्विरोध है।
4. **ऋजुसूत्रनय**-जो ऋजु अर्थात् सरल को सूत्रित अर्थात् स्वीकार करता है वह ऋजु सूत्र नय है। अर्थात् यह नय भूत, भविष्यत काल सम्बन्धी पर्याय को ग्रहण न करता हुआ वर्तमान काल सम्बन्धी पर्याय या पदार्थों को ग्रहण करता है। जैसे-कोई व्यक्ति, वकील की पहले वाली विद्यार्थी पर्याय एवं आगे वकील के बाद होने वाली सेठ की पर्याय को न ग्रहण करता हुआ वर्तमान में चल रही वकील पर्याय को ही ग्रहण करता है (बोलता है) तो उसका यह कथन ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा सत्य है।
5. **शब्दनय**-ऋजुसूत्रनय से गृहीत पदार्थों को जो लिंग, संख्या, साधन आदि के भेद से भिन्न-

भिन्न ग्रहण करता है, वह शब्द नय है। जैसे-यह नय एक स्त्री को दारा शब्द से पुकारने पर उसे (उस शब्द को) पुलिंग एवं बहुत संख्यात्मक बतलाता है। और जिसको भार्या शब्द द्वारा कहा जाए तो उसे स्त्री लिंग तथा एक संख्यात्मक कहता है। इसी तरह कलत्र शब्द से कहा जाए तो उसे नपुंसक लिंग का स्वीकार करता है, इत्यादि। व्याकरण के नियमानुसार चलना इस शब्द नय का मुख्य कार्य है। दारा, भार्या, कलत्र, ये सब स्त्री के ही पर्यायवाची नाम हैं।

6. **समभिरूढ़नय**-जो शब्दनय से गृहीत शब्द के द्वारा रूढ़ के अनुसार किसी एक पदार्थ को ग्रहण करता है, वह समभिरूढ़ नय कहलाता है। जैसे - शब्दनय की अपेक्षा ''गच्छतीति गो'' जो गमन करता हो (पशु, पक्षी, स्त्री, पुरुष) इत्यादि वह सभी गो हैं। लेकिन यह समभिरूढ़नय जो लौकिक बोलचाल में अभिरूढ़ दूध देने वाली गाय को ही गो कहता है।
7. **एवंभूतनय**- समभिरूढ़नय से गृहीत पदार्थ को जो उस नामानुसार क्रिया में परिणत अवस्था के समय ही ग्रहण करता है, उसे एवंभूतनय कहते हैं। जैसे-वकालत करते समय ही वकील कहना दूसरा कार्य करते समय नहीं। चलने की क्रिया में परिणत अर्थात् चलती हुई को ही गाय कहना, बैठी हुई या सोती हुई को नहीं। पूजन क्रिया में ही परिणत व्यक्ति को पुजारी कहना अन्य क्रिया करते समय नहीं इत्यादि।

प्रश्न 30. नय की परिभाषा क्या है?

उत्तर - जो वस्तु के अंश-अंश (पहलू-पहलू) का अपेक्षावाद से सहित होकर कथन करे वह नय कहलाता है या प्रमाण से जानी हुई जो समग्र वस्तु है, उसके एक देश का कथन करने वाला नय कहलाता है।

प्रश्न 31. अन्य नयों को नकारते हुए (न मानते या छोड़ते हुए) हमेशा केवल एक ही नय को मानना या कथन करना पाँच प्रकार के मिथ्यात्वों में कौन-सा मिथ्यात्व कहलाता है?

उत्तर - ऐसा करना एकान्त मिथ्यात्व कहलाता है।

प्रश्न 32. हमारे सम्यक् जैनधर्म के अनेकान्तवाद (स्याद्वाद) को समझने के लिए एक उपयुक्त उदाहरण बतलाइए?

उत्तर - एक बार एक नगर में बहुत दिनों के बाद एक हाथी आया। उस हाथी को देखने के लिए आजू-बाजू के अनेक गाँवों से लोग आकर इकट्ठे हुए। और इसी वार्ता को सुन जिन्हें आँखों से नहीं दिखता था, ऐसे चार अंधे पुरुष भी वहाँ आ पहुँचे,हाथी की पहचान हेतु उन चार अंधों में से एक अंधे ने हाथी के पैर को छुआ, दूसरे अंधे ने हाथी की पीठ को छुआ, तीसरे अंधे ने हाथी की पूंछ को छुआ और चौथे अंधे ने हाथी के कान को छुआ एवं किसी योग से चारों ही अंधे एक जगह जाकर बैठ गए। और हाथी की पहचान के सम्बन्ध में चर्चा करने लगे। पहला अंधा जिसने हाथी के पैर को छुआ था वह बोलता है कि हाथी खम्भे के समान है। दूसरा अंधा जिसने हाथी का पेट छुआ था वह कहता है कि नहीं-नहीं, हाथी तो दीवार के समान है। तीसरा अंधा जिसने हाथी की पूँछ को छुआ था, वह बोलता है कि नहीं-नहीं, हाथी तो झाड़ू के समान है। और

चौथा अन्धा जिसने हाथी के कान को छुआ था वह कहता है नहीं-नहीं, हाथी सूपा के समान है। इस प्रकार चारों अंधों में बड़े जोर से वाद-विवाद होने लगा और वे एक-दूसरे को मारने के लिए भी तैयार हो गए। ऐसी स्थिति में उसी समय वहाँ एक ज्ञानी पुरुष आ पहुँचे एवं उन्होंने चारों अंधे पुरुषों की बातों को बड़े ध्यान से सुनकर उन्हें समझाते हुए कहा कि तुम चारों का कथन कथञ्चित् वाद की अपेक्षा से सही है। हाथी पैर की अपेक्षा कथञ्चित् खम्भे के समान है, हाथी पेट की अपेक्षा कथञ्चित् दीवाल के समान है, हाथी पूँछ की अपेक्षा कथञ्चित् झाड़ू के समान है और हाथी कान की अपेक्षा से कथञ्चित् सूपा के समान है। ये सभी पैर, पेट, पूँछ एवं कान आदि अंग एक हाथी में पाए जाते हैं। अतः हाथी इन सभी से सहित होता है। इस प्रकार ऐसे ज्ञानी पुरुष की बात को सुनकर उन चारों अंधों को जैन धर्म के अनेकान्त, स्याद्वाद धर्म का मर्म ठीक-ठीक समझ में आया और वे आपस में गले मिलकर, बड़े संतोष का अनुभव करते हुए अपने-अपने घर पधारे। तात्पर्य यह है कि वस्तु अनेक धर्मात्मक है उसके अन्य धर्मों को नकारते हुए एक ही धर्म का कथन करना एकान्त मिथ्यात्व है। और वस्तु में रहने वाले सभी धर्मों का या एक धर्म का नयवाद से, कथञ्चित्वाद से या अपेक्षावाद से कथन करना ही स्याद्वाद है, अनेकान्त है।

प्रश्न 33. वे कौन से दिगम्बर आचार्य थे, जिन्होंने दो हजार वर्ष पहले गिरनार पर्वत की गुफा में बैठकर पुष्पदन्त, भूतबली मुनियों को थोड़े ही समय में मुखाग्र सम्यग्ज्ञान दिया था जिससे उन शिष्यों ने षट्खण्डागम आदि विशालकाय सिद्धान्त ग्रन्थों की रचना की थी?

उत्तर - वे दिगम्बर जैनाचार्य थे 'श्री धरसेन स्वामी जी'।

प्रश्न 34. वे कौन थे जिन्होंने मुनि अवस्था में ग्यारह अंग एवं अभिन्न दश पूर्व का ज्ञान प्राप्त किया एवं बाद में मिथ्यात्व के प्रभाव से भ्रष्ट होकर मिथ्याज्ञानी होकर ग्यारहवें रुद्र का रूप धारण किया एवं जो मरकर उस मिथ्यात्व के प्रभाव से बालुका प्रभा नामक तीसरी पृथ्वी में पहुँचे?

उत्तर - वे थे 'सात्यकि पुत्र'।

प्रश्न 35. ऐसे कौन से मुनिराज थे जिन्हें ''तुस माष भिन्नं'' (दाल और छिलका अलग-अलग होने के सदृश आत्मा और शरीर भिन्न-भिन्न है) इतने छोटे से सम्यग्ज्ञान रूप मन्त्र को आचरण में लाने से कैवल्य (केवलज्ञान) की प्राप्ति हो गई थी?

उत्तर - ऐसे मुनिराज थे 'श्री शिवभूति' जी।

प्रश्न 36. दुःषमा नामक पञ्चमकाल के अंत समय में अर्थात् आज से लगभग साढ़े अठारह हजार वर्ष के उपरांत छठवें काल के तीन वर्ष साढ़े आठ माह शेष रहने पर वे कौन से भावलिङ्गी मुनि होंगे जो जलमंथन राजा द्वारा कर के रूप में हाथ में से ग्रास उठा लिए जाने पर पिण्डहरण नामक अन्तराय कर अपने अवधिज्ञान से पञ्चमकाल का अंत और अपनी आयु तीन दिन शेष जानकर सर्वश्री आर्यिका, अग्निल श्रावक एवं फल्गूसेना नामक श्राविका के साथ सल्लेखना पूर्वक मरण कर सौधर्म स्वर्ग में देव होंगे?

उत्तर - ऐसे भावलिङ्गी मुनि होंगे 'वीरांगज मुनि' महाराज।

अध्याय 11.
सम्यक्चारित्र धर्म एवं उसका माहात्म्य

चारित्र के बिना मोक्ष पथ सदा अधूरा होता है। दर्शन और ज्ञान की सार्थकता चारित्र के पालन में होती है। जैसे-औषध के श्रद्धान और ज्ञान मात्र से व्याधि दूर नहीं होती, औषधि का सेवन करना अनिवार्य होता है, उसी तरह मुक्ति के श्रद्धान, ज्ञान मात्र से उस मुक्ति को नहीं प्राप्त किया जा सकता, पाप क्रिया की निवृत्तिपूर्वक व्रताचरण रूप प्रवृत्ति से ही समीचीन व्यवहार चारित्र का पालन करते हुए एक दिन स्वरूपाचरण रूप मुनियों के निश्चय चारित्र द्वारा मुक्ति की प्राप्ति होना संभव है। अतः मोक्षमार्ग के क्षेत्र में कर्मों के संवर व निर्जरा हेतु व्रताचरण की प्रधानता बताते हुए ग्यारहवें अध्याय में 'सम्यक्चारित्र धर्म माहात्म्य' की अपूर्व महिमा को गाया गया है।

प्रश्न 1. सम्यक् चारित्र किसे कहते है?

उत्तर - द्रव्यसंग्रह शास्त्र में आचार्य नेमिचन्द्र स्वामी ने कहा है कि -

असुहादो विणिवित्ती, सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं ।
वदसमिदिगुत्तिरूवं, ववहारणया दु जिणभणियं ॥45॥

अन्वयार्थ -(**ववहारणया**) व्यवहार नय से (**असुहादो विणिवित्ती**) अशुभ क्रिया से निवृत्ति होने (**य**) और (**सुहे पवित्ति**) शुभ क्रिया में प्रवृत्ति होने को (**जिणभणियं**) जिनेन्द्र देव के द्वारा कहा हुआ (**चारित्तं जाण**) चारित्र जानो (**दु**) वह चारित्र (**वदसमिदिगुत्तिरूवं**) व्रत, समिति और गुप्ति रूप है।

स्वामी समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहा है कि -

हिंसानृतचौर्येभ्यो, मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च ।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥49॥

अन्वयार्थ - (**संज्ञस्य**) सम्यग्ज्ञानी जीव का (**पापप्रणालिकाभ्यः**) पाप के पनाले-नाली स्वरूप (**हिंसानृतचौर्येभ्यः**) हिंसा, झूठ, चोरी (च) और (**मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां**)

कुशील तथा परिग्रह से (**विरतिः**) निवृत्त होना (**चारित्रं**) चारित्र कहलाता है।

प्रश्न 2. सम्यक्चारित्र के कितने भेद हैं ?

उत्तर - सम्यक्चारित्र के श्रावकों के देशचारित्र (संयमासंयमचारित्र) एवं मुनियों के सकल चारित्र (संयमाचरण) की अपेक्षा से दो भेद हैं।

प्रश्न 3. श्रावकों का देशचारित्र कैसा होता है, उसके नाम एवं संक्षिप्त अर्थ बतलाइये ?

उत्तर - श्रावकों का देशचारित्र पञ्च अणुव्रत आदि से सहित ग्यारह प्रतिमा रूप होता है।

देशव्रती श्रावकों की ग्यारह प्रतिमाएं

दिगम्बर जैनाचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ने अपने चारित्रपाहुड ग्रन्थ की 22 वीं गाथा में कहा है कि -

दंसण वय सामाइय पोसह सच्चित्त रायभत्ते य।
बंभारंभ परिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य॥ 21॥

अन्वयार्थ - (**दंसण**) दर्शन, (**वय**) व्रत, (**सामाइय**) सामायिक, (**पोसह**) प्रोषध (**सच्चित्त**) सचित्तभुक्तित्याग (**रायभत्ते**) रात्रिभुक्तित्याग (**य**) और (**बंभारंभ**) ब्रह्मचर्य एवं आरम्भ त्याग (**परिग्गह**) परिग्रहत्याग (**अणुमण**) अनुमतित्याग (**य**) तथा (**उद्दिट्ठ**) उद्दिष्टत्याग [इन ग्यारहप्रतिमाओं के ग्रहणरूप संयमाचरणचारित्र] (**देसविरदो**) देशविरत श्रावक के होता है।

स्वामी समन्तभद्राचार्य जी ने भी रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहा है कि -

श्रावकपदानि देवैरेकादश, देशितानि येषु खलु।
स्वगुणाः पूर्वगुणैः सह, संतिष्ठते क्रमविवृद्धाः ॥136॥

अन्वयार्थ :- (**देवैः**) तीर्थङ्कर भगवान् के द्वारा (**एकादश**) ग्यारह (**श्रावकपदानि**) श्रावक की प्रतिमाएँ (**देशितानि**) कही गई हैं (**येषु**) जिनमें (**खलु**) निश्चय से (**स्वगुणाः**) अपनी-अपनी प्रतिमा सम्बन्धी गुण (**पूर्वगुणैःसह**) पूर्व प्रतिमा सम्बन्धी गुणों के साथ (**क्रमविवृद्धाः**) क्रम से वृद्धि को प्राप्त होते हुए (**संतिष्ठन्ते**) स्थित होते हैं।

1. दर्शन प्रतिमाधारी का स्वरूप-

रत्नकरण्डकश्रावकाचार के अनुसार -

सम्यग्दर्शन शुद्धः संसारशरीरभोगनिर्विण्णः।
पञ्चगुरुचरणशरणो दर्शनिकस्तत्त्वपथ गृह्यः ॥137॥

अन्वयार्थ :- (**सम्यग्दर्शनशुद्धः**) दोषरहित सम्यग्दर्शन का धारक (**संसारशरीर भोगनिर्विण्णः**) संसार, शरीर और भोगों से विरक्त (**पञ्चगुरुचरणशरणः**) पञ्चपरमेष्ठी का सेवक (**तत्त्वपथगृह्यः**) अष्टमूलगुणों का धारक (**दर्शनिकः**) दार्शनिक श्रावक है।

2. व्रत प्रतिमाधारी का स्वरूप -

निरतिक्रमणमणुव्रत पंचकमपि शीलसप्तकं चापि ।
धारयते निःशल्यो योऽसौ व्रतिनां मतो व्रतिकः ॥ 138 ॥(र.क.)

अन्वयार्थ :- (**यः**) जो (**निःशल्यः**) शल्य रहित होता हुआ (**निरतिक्रमणं**) अतिचार रहित (**अणुव्रतपञ्चकम्**) पाँच अणुव्रतों को (**च**) और (**शीलसप्तकम्**) सात शीलव्रतों को (**धारयते**) धारण करता है (**असौ**) वह (**व्रतिनां**) गणधरदेवादिक व्रतियों के मध्य में (**व्रतिकः**) व्रतिक नाम का श्रावक (**मतः**) माना जाता है ।

आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने भी चारित्रपाहुड ग्रन्थ में श्रावकों का बारह व्रत रूप देशचारित्र या संयमाचरण चारित्र इस प्रकार कहा है –

पंचेवणुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥22 ॥

अर्थ–पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप बारह व्रतों का पालन करना यह सागार–श्रावकों का संयमाचरण चारित्र है ।

3. सामायिक प्रतिमाधारी का स्वरूप– जो चार बार तीन–तीन आवर्त करता है, चार बार प्रणाम करता है, कायोत्सर्ग से खड़ा होता है, बाह्य–आभ्यन्तर परिग्रह का त्यागी होता है, दो बार बैठकर नमस्कार करता है, मन,वचन और काय योग को शुद्ध रखता है और तीनों सन्ध्याओं में वन्दना (सामायिक) करता है, वह सामायिक प्रतिमाधारी कहलाता है ।

4. प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी का स्वरूप –जो प्रत्येक मास के चारों पर्वों (दो अष्टमी, दो चतुर्दशी) में अपनी शक्ति को छुपाये बिना प्रोषध सम्बन्धी नियम का पालन करता हुआ एकाग्रता में तत्पर रहता है, उसे प्रोषधोपवास प्रतिमाधारी कहते हैं ।

5. सचित्त त्याग प्रतिमाधारी का स्वरूप– जो दया मूर्ति होता हुआ अभक्ष्य रहित, खाने योग्य किसी भी प्रकार की वनस्पतियों को एवं उनसे सम्बन्धित फल बीजादिक को प्रासुक किए बिना कच्चा नहीं खाता वह सचित्त त्याग प्रतिमा का धारी श्रावक कहलाता है ।

6. रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमाधारी का स्वरूप–जो जीवों पर दयालु चित्त होता हुआ मन–वचन–काय एवं कृत–कारित–अनुमोदना से चारों प्रकार के (अन्न, पान, खाद्य, लेह्य) आहार का रात्रि में सेवन नहीं करता, वह रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमा का धारी कहा जाता है ।

7. ब्रह्मचर्य प्रतिमाधारी का स्वरूप– शुक्र, शोणित, रूप–मल से उत्पन्न मलिनता का कारण, मल मूत्रादिक को झराने वाले, दुर्गन्ध से सहित और ग्लानि को उत्पन्न करने वाले शरीर को देखता हुआ जो व्यक्ति कामसेवन का त्यागी होता है वह ब्रह्मचर्य प्रतिमा का धारक कहलाता है ।

8. आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी का स्वरूप– जो हिंसा के उत्पादक नौकरी (सेवा), खेती, व्यापार इत्यादिक आरम्भ का त्यागी होता है, वह आरम्भ त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है ।

9. परिग्रह त्याग प्रतिमाधारी का स्वरूप–जो बाह्य के दश–परिग्रह (क्षेत्र,

वास्तु,धन,धान्य, दासीदास,पशु, शयनासन, वाहन, कपड़े एवं बर्तन) से ममत्व छोड़कर निर्ममत्व एवं संतोष भाव में लीन होता हुआ स्वस्थ रहता है वह सब ओर से चित्त में स्थित परिग्रह से विरक्त होता है, उसे परिग्रहत्याग प्रतिमाधारी श्रावक कहते हैं।

10. **अनुमतित्याग प्रतिमाधारी का स्वरूप**- जो खेती, व्यापार आदि आरम्भ में परिग्रह में अथवा इस लोक सम्बन्धी किसी भी कार्यों में अनुमोदना (सलाह) नहीं देता वह समान बुद्धि का धारक श्रावक अनुमति त्याग प्रतिमाधारी है।

11. **उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी का स्वरूप**-जो गृह का त्यागकर, मुनि वन में (मुनियों के पास) जाकर, गुरुके पास श्रावक के उत्कृष्ट व्रत ग्रहण कर, भिक्षावृत्ति से भोजन करता हुआ तपश्चरण करता है, तथा वस्त्र के एक खण्ड को (एक लंगोट अथवा एक लंगोट एवं दुपट्टे को) धारण करता है, वह उत्कृष्ट श्रावक उद्दिष्ट त्याग प्रतिमाधारी कहलाता है।

प्रश्न 4. उद्दिष्ट त्याग नामक ग्यारहवीं प्रतिमा के धारकों को किस नाम से पुकारते हैं?

उत्तर - ऐसे उद्दिष्ट त्याग नामक ग्यारहवीं प्रतिमा के धारकों को ऐलक, क्षुल्लक एवं क्षुल्लिका के नाम से पुकारते हैं।

प्रश्न 5. प्रतिमाधारी सम्यग्दृष्टि का गुणस्थान कौन सा होता है?

उत्तर - प्रतिमाधारी सम्यग्दृष्टि का पाँचवां गुणस्थान होता है।

प्रश्न 6. श्रावक के कितने भेद हैं एवं उनके नाम बतलाइए?

उत्तर - श्रावक के तीन भेद हैं -1. पाक्षिकश्रावक 2. नैष्ठिकश्रावक और 3. साधकश्रावक।

प्रश्न 7. पाक्षिकश्रावक किसे कहते हैं?

उत्तर - जो सम्यग्दर्शन के साथ अष्ट मूलगुणों का अभ्यास रूप से पालन करता है, उसे पाक्षिक श्रावक कहते हैं। अथवा मद्य, मधु व माँस एवं पञ्च पाप का त्यागी पाक्षिक श्रावक होता है।

प्रश्न 8. नैष्ठिक श्रावक किसे कहते हैं?

उत्तर - जो ग्यारह प्रतिमाओं का अतिचार रहित पालन करता है, उसे नैष्ठिक श्रावक कहते हैं।

प्रश्न 9. साधक श्रावक किसे कहते हैं?

उत्तर - जो प्रतिमाधारी अन्त समय सल्लेखना धारण कर लेता है, उसे साधक श्रावक कहते हैं।

प्रश्न 10. व्रत नामक दूसरी प्रतिमा में जो पञ्च अणुव्रत कहे, उनके नाम एवं संक्षेप में उनके लक्षण बतलाइए?

उत्तर - पञ्च अणुव्रतों के नाम एवं संक्षेप में लक्षण -

1. **अहिंसाणुव्रत** - स्थूल या त्रस हिंसा का नौ कोटियों (मन, वचन, काय, कृत, कारित और अनुमोदना) से त्याग करना अहिंसाणुव्रत कहलाता है।
2. **सत्याणुव्रत**-ऐसा स्थूल असत्य न स्वयं बोलता है और न दूसरों से बुलवाता है एवं बुरी भावना को धारण कर ऐसा सत्य भी न स्वयं बोलता है और न दूसरे से बुलवाता है जो दूसरे के प्राणघात में कारण बने, उसे सत्याणुव्रत कहते हैं।

3. **अचौर्याणुव्रत**-जो रखे हुए, पड़े हुए अथवा बिल्कुल भूले हुए, बिना दिए हुए दूसरे के धन को (सम्पत्ति को) न स्वयं लेता है और न किसी दूसरे को देता है, वह स्थूल रूप अचौर्याणुव्रत कहलाता है।
4. **ब्रह्मचर्याणुव्रत**-जो पाप के भय से परस्त्रियों के प्रति न स्वयं गमन करता है और न दूसरों को गमन कराता है, उसका वह परस्त्री त्याग रूप, स्वदारसंतोष व्रत या ब्रह्मचर्याणुव्रत होता है।

   विशेष-सप्तम प्रतिमा के ग्रहण के समय अणुव्रती स्वस्त्री से भी विरक्त हो जाता है। विवाह होने से पूर्व भी पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत को धारण किया जा सकता है। विवाह होने पर पति-पत्नी दोनों की सहमति से पूर्ण ब्रह्मचारी बन सकते हैं।
5. **परिग्रह परिमाण व्रत**-धन, धान्य आदि दस प्रकार के परिग्रह का परिमाण कर (परिमित कर) उससे अधिक परिग्रह में इच्छा रहित होना परिग्रह परिमाण या इच्छा परिमाण अणुव्रत कहलाता है।

प्रश्न 11. अणुव्रत की परिभाषा क्या है?

उत्तर - जिसमें स्थूल रूप से हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग किया जाता है, उसे अणुव्रत कहते हैं।

प्रश्न 12. श्रावक की व्रत नामक दूसरी प्रतिमा के अन्तर्गत जो सात शील व्रत कहे हैं वे किस रूप से होते हैं?

उत्तर - श्रावक के सात शीलव्रत, तीन गुणव्रत एवं चार शिक्षाव्रत रूप होते हैं।

प्रश्न 13. गुणव्रत किसे कहते हैं? उसके प्रकार एवं संक्षेप में उनके लक्षण बतलाइए?

उत्तर - अष्टमूलगुणों की वृद्धि में सहायक होने से दिग्व्रत, अनर्थदण्डव्रत और भोगोपभोग परिमाणाणुव्रत को गुणव्रत कहते हैं।

- **दिग्व्रत का स्वरूप**-मरणपर्यन्त सूक्ष्म पापों की निवृत्ति के लिए दशों दिशाओं को मर्यादित करके मैं इससे बाहर नहीं जाऊंगा ऐसा संकल्प करना दिग्व्रत कहलाता है।
- **अनर्थदण्ड त्याग व्रत का स्वरूप**-दिग्व्रत की सीमा के भीतर प्रयोजन रहित पाप सहित योगों रूप अनर्थदण्ड से निवृत्त होने को अनर्थदण्डत्याग व्रत कहते हैं।

प्रश्न 14. अनर्थदण्ड त्याग व्रत में छोड़ने योग्य अप्रयोजनीय, पाप सहित योग रूप अनर्थदण्ड के कितने भेद हैं, उनके नाम एवं संक्षेप में लक्षण बतलाइए?

उत्तर - अनर्थदण्ड के पापोपदेश, हिंसादान, अपध्यान, दुःश्रुति और प्रमादचर्या ऐसे पाँच भेद हैं।

1. **पापोपदेश**-पशुओं (जीवों) को क्लेश पहुँचाने वाली क्रियाओं, व्यापार, हिंसा, आरम्भ तथा ठगई (ठगने की कला) आदि की कथाओं के प्रसंग उत्पन्न करना, पापोपदेश नामक अनर्थदण्ड है।
2. **हिंसादान**-फरसा, तलवार, बुहारी, अग्नि, शस्त्र, विष तथा सांकल आदिक हिंसा के

उपकरणों के दान को हिंसादान नाम का अनर्थदण्ड कहते हैं।

3. **अपध्यान**-द्वेष के कारण किसी के वध, बन्धन और छेद आदि का एवं राग के कारण परस्त्री आदि का चिन्तन करने को अपध्यान अनर्थदण्ड कहते हैं।
4. **दु:श्रुति**-आरम्भ, परिग्रह, साहस (अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य), मिथ्यात्व, द्वेष, राग, अहंकार और काम (कुशील) के द्वारा चित्त को कलुषित करने वाले शास्त्रों का सुनना दु:श्रुति नामक अनर्थदण्ड है।
5. **प्रमादचर्या**-निष्प्रयोजन पृथ्वी का खोदना, पानी को बहाना, अग्नि को जलाना, वायु को रोकना या चलाना, फल-फूल-पत्ती आदि को तोड़ना, स्वयं निष्प्रयोजन घूमना और दूसरों को भी निष्प्रयोजन घुमाना यह सब प्रमाद चर्या नाम का अनर्थदण्ड है।

(इन पापोपदेश आदि पाँचों अनर्थदण्डों का त्याग करने से अनर्थदण्ड त्याग व्रत होता है।)

- **भोगोपभोग परिमाण व्रत का स्वरूप**-परिग्रह परिमाण व्रत की सीमा के भीतर विषय सम्बन्धी राग से होने वाली आसक्तियों को कृश (कम) करने के लिए प्रयोजनभूत भी (सांसारिक सुखों के लिए आवश्यक भी) इन्द्रिय विषयों का परिगणन करना अर्थात् उनकी सीमा निर्धारित करना या इन्द्रिय विषयों की सीमा को और भी संकुचित करना भोगोपभोग परिमाण गुणव्रत है।

प्रश्न 15. भोग और उपभोग की परिभाषा क्या है?

उत्तर - जो भोजन, गन्ध, पुष्प, विलेपन आदि पञ्चेन्द्रिय के विषय एक बार भोग कर छोड़ दिए जाते हैं,वे भोग कहलाते हैं। और जो वस्त्र, आभूषण आदि इन्द्रिय विषय एक बार भोगने के बाद पुन:-पुन: भोगने में आते हैं, वे उपभोग कहलाते हैं।

प्रश्न 16. शिक्षाव्रत किसे कहते हैं? उसके प्रकार एवं संक्षेप में उनके लक्षण बतलाइए?

उत्तर - मुनियों के व्रतों की शिक्षा के लिए जो व्रत होते हैं, उन्हें शिक्षाव्रत कहते हैं। (अर्थात् जिन व्रतों से श्रावक को मुनि बनने की शिक्षा मिलती हैं वे शिक्षाव्रत हैं।) उनके देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोपवास और वैय्यावृत्त ऐसे चार भेद हैं।

1. **देशावकाशिक शिक्षाव्रत**-अणुव्रत के धारक श्रावकों का प्रतिदिन समय की मर्यादा के द्वारा विस्तृत देश का संकोच किया जाना देशावकाशिक व्रत होता है।
2. **सामायिक शिक्षाव्रत**-सब जगह-मर्यादा के भीतर और बाहर की सम्पूर्ण रूप से (स्थूल एवं सूक्ष्म रूप से) पाँच पापों का किसी निश्चित समय तक त्याग करने को सामायिक नामक शिक्षाव्रत कहते हैं।

   (यह सामायिक एकान्त स्थान में पद्मासन, खड्गासन आदि में स्थित होकर, शरीरादिक की चेष्टा से एवं आलस्य से रहित होकर, मन की चंचलता को रोकते हुए, प्रसन्न चित्त के साथ प्रतिदिन योग्य विधि के अनुसार बढ़ाना चाहिए)।
3. **प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत**-चतुर्दशी और अष्टमी के दिन सदा (हमेशा) के लिए व्रत-विधान

की इच्छा से चार प्रकार के आहारों का त्याग करना प्रोषधोपवास कहलाता है।

(रत्नकरण्डकश्रावकाचार की हिन्दी टीका में लिखा है कि आचार्यों ने प्रोषधोपवास व्रत को उपवास, अनुपवास तथा प्रोषध नाम देकर उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य इन तीन भेदों में विभक्त कर दिया है। चारों प्रकार के आहार का त्याग करना उपवास है, सिर्फ पानी लेना अनुपवास है और एक बार भोजन प्रोषध अर्थात् करना एकाशन है।)

अपनी शक्ति छुपाए बिना इस व्रत का अच्छी तरह से पालन करना चाहिए।

प्रश्न 17. वे चार प्रकार के आहार कौन से हैं जिनके त्याग करने पर उपवास होता है?

उत्तर - अन्न, पान, खाद्य और लेह्य ये चार प्रकार के आहार हैं।

- दाल, भात, रोटी आदि अन्न कहलाते हैं।
- पानी, दूध, छाछ आदि पेय (पान) कहलाते हैं।
- लड्डू, पेड़ा, बरफी आदि खाद्य कहलाते हैं।
- रबड़ी आदि चाटने योग्य पदार्थ लेह्य कहलाते हैं।

प्रश्न 18. उपवास के दिन चार प्रकार के आहार के त्याग के साथ और क्या-क्या त्याग करना चाहिए?

उत्तर - **पञ्चानां पापानामलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणाम्।**
स्नानाञ्जननस्याना-मुपवासे परिहृतिं कुर्य्यात् ॥107॥ (र.क.श्रा.)

अन्वयार्थ-(**उपवासे**) उपवास के दिन (**पञ्चानाम्**) पाँचों (**पापानाम्**) पापों को करना, (**अलंक्रियारम्भगन्धपुष्पाणां**) अलंकार धारण करना, खेती आदि का आरम्भ करना, चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का लेप करना, पुष्पमालाएँ धारण करना या पुष्पों को सूँघना (**स्नानाञ्जननस्यानां**) स्नान करना, अञ्जन-काजल, सुरमा आदि लगाना तथा नाक के नस्य आदि का सूंघना इन सबका (**परिहृतिं**) परित्याग (**कुर्य्यात्**) करना चाहिए।

प्रश्न 19. यहाँ आचार्यश्री ने उपवास के दिन श्रावकों को स्नान करने का त्याग क्यों बतलाया?

उत्तर - क्योंकि स्नान करने में आरम्भ होता है एवं विशेष अप्रशस्त रागभाव उत्पन्न होता है।

प्रश्न 20. उपवास के दिन, जहाँ भगवान की पूजन करने वाले या अतिथियों को दान देने वाले अन्य कोई व्यक्ति नहीं है तो, वहाँ ऐसी परिस्थिति में स्नान नहीं करने का नियम कैसे बनेगा?

उत्तर - हाँ, ऐसे विशेष अवसर पर गृहस्थ श्रावकों को यह नियम नहीं समझना चाहिए। क्योंकि जिनेन्द्र देव की पूजा एवं व्रती की वैयावृत्त्य एक प्रमुख कर्तव्य है। अर्थात् उपवास के दिन किसी परिस्थिति वश स्नान करना आवश्यक होने पर उपवास नियम खण्डित होता है, ऐसा नहीं मानना चाहिए।

प्रश्न 21. उपवास के दिन भव्यात्माओं को क्या कार्य करना चाहिए?

उत्तर - रत्नकरण्डकश्रावकाचार में आचार्य समन्तभद्र स्वामी कहते हैं-

धर्मामृतं सतृष्णः ,श्रवणाभ्यां पिबतु पाययेद्वान्यान्।
ज्ञानध्यानपरो वा, भवतूपवसन्नतन्द्रालुः ॥108॥

अन्वयार्थ - (**उपवसन्**) उपवास करने वाला व्यक्ति (**अतन्द्रालुः**) आलस्य रहित और (**सतृष्णः**) उत्कण्ठित होता हुआ (**धर्मामृतम्**) धर्मरूपी अमृत को (**श्रवणाभ्याम्**) अपने कानों से (**पिबतु**) पीवे (**वा**) तथा (**अन्यान्**) दूसरों को (**पाययेत्**) पिलावे [**च**] और (**ज्ञानध्यानपरः**) ज्ञान और ध्यान में लवलीन (**भवतु**) होवे ।

4. वैय्यावृत्य शिक्षाव्रत -

दानं वैयावृत्यं, धर्माय तपोधनाय गुणनिधये।
अनपेक्षितोपचारोपक्रियमगृहाय विभवेन॥ 111 ॥ (र.क.श्रा.)

अन्वयार्थ - (**तपोधनाय**) तपरूप धन से युक्त तथा (**गुणनिधये**) सम्यग्दर्शनादि गुणों के भण्डार (**अगृहाय**) गृहत्यागी-मुनीश्वर के लिए (**विभवेन**) विधि, द्रव्य आदि सम्पत्ति के अनुसार (**अनपेक्षितोपचारोप-क्रियम्**) प्रतिदान और प्रत्युपकार की अपेक्षा से रहित (**धर्माय**) स्वपर के धर्म की वृद्धि के लिए (**दानम्**) जो दान दिया जाता है वह (**वैयावृत्यम्**) वैय्यावृत्य नाम का शिक्षाव्रत (**उच्यते**) कहलाता है ।

व्यापत्तिव्यपनोदः, पदयोः संवाहनं च गुणरागात्।
वैयावृत्यं यावानुपग्रहोऽन्योऽपि संयमिनाम् ॥ 112 ॥ (र.क.श्रा.)

अन्वयार्थ - (**गुणरागात्**) सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्रीति से (**संयमिनाम्**) देशव्रत और सकलव्रत के धारक संयमीजनों को (**व्यापत्तिव्यपनोदः**) आई हुई नानाप्रकार की आपत्ति को दूर करना (**पदयोः**) पैरों का, उपलक्षण से हस्तादिक अंगों का (**संवाहनं**) दाबना (**च**) और (**अन्योऽपि**) अन्य भी (**यावान्**) जितना (**उपग्रहः**) उपकार है, वह (**वैयावृत्यम्**) वैय्यावृत्य (**कथ्यते**) कहलाता है ।

आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
वैयावृत्यं ब्रुवते, चतुरात्मत्वेन चतुरस्राः ॥117॥ (र.क.श्रा.)

अन्वयार्थ - (**चतुरस्राः**) चार ज्ञानधारी गणधरदेव (**आहारौषधयोः**) आहार, औषधि (**च**) और (**उपकरणा वासयोःअपि**) उपकरण तथा आवास के भी (**दानेन**) दान से (**वैयावृत्यं**) वैय्यावृत्य को (**चतुरात्मत्वेन**) चार प्रकार का (**ब्रुवते**) कहते हैं ।

प्रश्न 22. आगम ग्रन्थों में जो अणुव्रतादि के अतिचारों का एवं व्रतों की भावनाओं का कथन किया गया है ,उसकी क्या विशेषता है ?

उत्तर - व्रती जीव के द्वारा ग्रहण किए गए अपने व्रतों में निर्दोषता बनाये रखने के लिए एवं व्रताचरण में विशुद्धि बढ़ाने के लिए आगम ग्रन्थों में व्रतों के अतिचारों एवं व्रतों की भावनाओं का कथन किया गया है ।

(जो रत्नकरण्डकश्रावकाचार के तीसरे अध्याय एवं तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ के सातवें अध्याय से जानने योग्य है) ।

प्रश्न 23. वह कौन-सा व्यक्ति था, जिसके अहिंसाणुव्रत के माहात्म्य से देवों ने उसे तालाब के जल के

ऊपर सिंहासन पर बिठा लिया था ?

उत्तर – वह व्यक्ति था 'मातङ्ग चाण्डाल' ।

प्रश्न 24. वह कौन पुरुष था, जिसकी सत्यव्रत की परीक्षा के लिए हाथों पर अंगार रखे गये, फिर भी सत्याणुव्रत के माहात्म्य से उसके हाथ नहीं जले ?

उत्तर – वह पुरुष था 'धनदेव' व्यापारी।

प्रश्न 25. वह कौन राजकुमार था, जिसके अचौर्याणुव्रत के माहात्म्य से तलवार भी फूल की माला बन गयी थी ?

उत्तर – वह राजकुमार था 'वारिषेण'।

प्रश्न 26. वह कौन सी महिला थी, जिसके पैरों का नगर के बंद हुए प्रमुख द्वारों से स्पर्श कराने पर उसके शील के माहात्म्य से नगर के प्रमुख द्वार खुल सके ?

उत्तर – वह महिला थी जैन पुत्री 'नीली' ।

प्रश्न 27. वे कौन से श्रावक-श्राविका थे, जिन्होंने शादी (विवाह) होने के बाद भी शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष में ब्रह्मचर्य व्रत का (असिधारा व्रत का) पूर्ण रूप से विशुद्धिपूर्वक पालन किया एवं बाद में मुनि आर्यिका हुए।

उत्तर – वे श्रावक-श्राविका थे पति- पत्नी 'विजय और विजया'।

प्रश्न 28. ऐसे कौन से श्रेष्ठ पुरुष थे, जिनकी परिग्रह परिमाणाणुव्रत की महिमा सुनकर देवगति के देव भी परीक्षा के लिए उनके पास आए ?

उत्तर – ऐसे श्रेष्ठ पुरुष थे राजपुत्र 'जयकुमार'।

प्रश्न 29. मुनियों का सकल चारित्र कैसा होता है ?

उत्तर – मुनियों का सकल चारित्र पञ्च महाव्रत आदिक से सहित अट्ठाईस मूलगुण रूप होता है।

आचार्य कुन्दकुन्द देव ने मुनियों के चारित्र के बारे में चारित्रपाहुड में इस प्रकार है कि –

पंचिंदियसंवरणं पंचवया पंचविंसकिरियासु।
पञ्चसमिदि तयगुत्ती संजमचरणं णिरायारं॥28॥

अन्वयार्थ – **(पंचिंदिय संवरणं)** पञ्चेन्द्रियों की प्रवृत्ति को रोकना **(पंचविंस किरियासु)** पच्चीस क्रियाओं के रहते हुये **(पंचवया)** पञ्च महाव्रत धारण करना **(पंच समिदि)** पाँच समितियों का पालन, **(तयगुत्ती)** तीन गुप्तियों को धारण करना **(णिरायारं)** निरागार-मुनियों का **(संजमचरणं)** संयमाचरण है।

मुनियों के अट्ठाईस मूलगुण

प्रवचनसार में कुन्दकुन्दाचार्य जी कहते हैं कि –

वदसमिदिंदियरोधो लोचावासयमचेलमण्हाणं।
खितिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च ॥9॥
(एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहि पण्णत्ता।)

अर्थ-पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति, पञ्च इंद्रियनिरोध, षट् आवश्यक, केशलोंच,

नग्नत्व, अस्नान, भूशयन, अदन्तधावन, स्थितिभोजन और एक भुक्ति इस प्रकार से श्रमणों-मुनियों के अट्ठाईस मूलगुण जिनेन्द्र भगवान ने कहे हैं।

प्रश्न 30. महाव्रत किसे कहते हैं?

उत्तर - जो महान् पुरुषों द्वारा धारण किए जाते हैं, उन्हें महाव्रत कहते हैं या जिनके धारण करने से व्यक्ति महानता को प्राप्त होता है,उन्हें महाव्रत कहते हैं अथवा जिनमें स्थूल एवं सूक्ष्म दोनों प्रकार के हिंसादिक पञ्च पापों का त्याग किया जाता है, उन्हें महाव्रत कहते हैं।

प्रश्न 31. पञ्च महाव्रतों का संक्षेप से स्वरूप बतलाइए?

उत्तर -

1. **अहिंसा महाव्रत**-पूर्ण रूप से (नवकोटियों से अर्थात् मन-वचन-काय एवं कृत-कारित-अनुमोदना से) त्रस एवं स्थावर हिंसा का त्याग करना, अहिंसा महाव्रत है।
2. **सत्य महाव्रत** - पूर्ण रूप से राग-द्वेष इत्यादिक से सहित असत्य (झूठ) वचनों का त्याग करना, सत्य महाव्रत है।
3. **अचौर्य महाव्रत**-नवकोटियों की विशुद्धतापूर्वक किसी की, कोई भी, बिना दी हुई वस्तु का त्याग करना, अचौर्य महाव्रत है।
4. **ब्रह्मचर्य महाव्रत**- चेतन, अचेतन (चित्र, मूर्ति आदि रूप) किसी भी तरह की स्त्रियों में राग परिणाम का त्याग करना अथवा अठारह हजार प्रकार के शील का पालन करना ब्रह्मचर्य महाव्रत है।
5. **अपरिग्रह महाव्रत**-धन-धान्यादि दस प्रकार के बाह्य परिग्रह में और मिथ्यात्व, क्रोध, मान,माया, लोभ एवं हास्यादि नौ-नो (नो कषाय का अर्थ होता है ईषत् कषाय, वे नौ होती है)कषाय रूप चौदह प्रकार के अंतरंग परिग्रह में मूर्छा (ममत्व) भाव नहीं रखना अथवा परमाणु मात्र वस्तु में भी ममत्व परिणाम का न होना, अपरिग्रह महाव्रत है।

प्रश्न 32. समिति किसे कहते हैं?

उत्तर - प्राणी पीड़ा का परिहार करने के लिए (अहिंसा पालन हेतु) भले प्रकार से (सावधानीपूर्वक) आना-जाना, बोलना, खाना, पीना, उठाना, धरना और विसर्जन करना समिति है।

प्रश्न 33. पञ्च समितियों का संक्षेप में स्वरूप बतलाइए?

उत्तर - 1. **ईर्यासमिति**-धर्म कार्य हेतु दिन में चार हाथ भूमि देखकर चलना ईर्या समिति है।

प्रश्न 34. वे चार शुद्धियां कौन सी हैं, जो ईर्यासमिति के पालन में परम आवश्यक हैं?

उत्तर -

1. **मार्ग शुद्धि**-मार्ग में चींटी आदि त्रस जीवों का आधिक्य न होना, बीज, अंकुर, तृण, हरित, वृक्ष, कीचड़ आदि का न होना मार्ग शुद्धि है।
2. **उद्योत शुद्धि**-चन्द्रमा, नक्षत्र आदि का प्रकाश स्पष्ट होता है और दीपक आदि का प्रकाश अव्यापी होता है। अतः सूर्य का स्पष्ट और व्यापक प्रकाश होना, उद्योत शुद्धि है।
3. **उपयोग शुद्धि**-पैर रखने के स्थान पर जीवों की रक्षा की भावना होना, उपयोग शुद्धि है।
4. **आलम्बन शुद्धि**-गुरु, तीर्थ तथा यतियों की वन्दना आदि के लिए वैय्यावृत्ति करने के लिए

या अनियत आवास के कारण स्वास्थ्य लाभ करने के लिए या श्रम पर विजय प्राप्त करने के लिए या अनेक देशों की भाषा सीखने के लिए अथवा शिष्यजनों के प्रतिबोध के लिए मुनियों का गमन करना, आलम्बन शुद्धि है।

2. **भाषासमिति** - विकथाओं और दुर्भाषाओं को छोड़कर शास्त्रानुसार हित-मित-प्रिय वचन बोलना भाषासमिति है।
3. **एषणासमिति**- छयालीस दोषों से रहित, बत्तीस अंतरायों का पालन करते हुए दिन में आहार का ग्रहण करना एषणासमिति है।
4. **आदाननिक्षेपणसमिति**- शास्त्रादि धर्मोपकरण उठाते, रखते समय पिच्छिका से परिमार्जन करते हुए सावधानीपूर्वक प्रवृत्ति करना आदाननिक्षेपणसमिति है।
5. **प्रतिष्ठापनसमिति** - निर्जन्तु भूमि में, भूमि का शोधन करके मल, मूत्रादिक शारीरिक मल का विसर्जन करना प्रतिष्ठापनसमिति है।

प्रश्न 35. पञ्च इन्द्रिय निरोध किसे कहते हैं।

उत्तर - स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाँच इन्द्रियों के इष्ट-अनिष्ट विषयों में राग-द्वेष का त्याग करना इसे पञ्च इन्द्रिय निरोध कहते हैं।

प्रश्न 36. षट् आवश्यक पालन किसे कहते हैं ?

उत्तर - समता पूर्वक सामायिक करना, चौबीस तीर्थङ्करों की स्तुति करना, एक तीर्थंकर की वन्दना करना, दोषों की आलोचना रूप प्रतिक्रमण करना, आहारादि त्याग रूप प्रत्याख्यान करना और ममत्व त्याग रूप कायोत्सर्ग करना यह षट् आवश्यक पालन कहलाता है।

प्रश्न 37. मुनियों के सात शेष मूलगुण कौन से हैं ?

उत्तर - 1. केशलोंच करना 2. नग्न-दिगम्बर रहना 3. स्नान नहीं करना 4. भूशयन करना 5. दंत मंजन नहीं करना 6. खड़े होकर आहार ग्रहण करना 7. दिन में एक बार आहार ग्रहण करना।

भूशयन करना इस मूलगुण में उपलक्षण से सूखे तृण या लकड़ी पर शयन करने रूप अर्थगर्भित है।

प्रश्न 38. यहाँ मुनियों के अट्ठाईस मूलगुणों में जो नग्नत्व (नग्न दिगम्बर रहना) मूलगुण बताया है सो क्या उसके होने पर ही अर्थात् वस्त्र छोड़ने पर ही मोक्ष की (सिद्ध गति की) प्राप्ति होती है, वस्त्रों के साथ नहीं ?

उत्तर - नहीं, वस्त्रधारी को कदापि मोक्ष पद की प्राप्ति नहीं होती, जैसा कि आचार्य श्री कुन्दकुन्द स्वामी ने सूत्रपाहुड ग्रन्थ में कहा है -

ण वि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो ।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥23॥

अर्थ-जिनशासन में कहा गया है कि वस्त्रधारी मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता, चाहे वह तीर्थङ्कर ही क्यों न हो। नग्न होना (निर्ग्रन्थ-दिगम्बर लिंग) ही मोक्षमार्ग है शेष सभी

उन्मार्ग उलटे (मिथ्या) मार्ग हैं।

प्रश्न 39. वस्त्र के साथ मोक्ष नहीं ऐसा क्यों?

उत्तर – क्योंकि वस्त्र और वस्त्र के प्रति राग परम ध्यान में एवं मोक्ष में बाधक है।

प्रश्न 40. गुप्ति किसे कहते हैं? उसकी परिभाषा उसके भेद एवं संक्षिप्त अर्थ बतलाइए?

उत्तर – समीचीन रूप से मन-वचन-काय योगों को निग्रह करना गुप्ति है।

मनोगुप्ति – मन की अशुभ प्रवृत्ति को रोकना मनोगुप्ति है।

वचनगुप्ति–वचन की प्रवृत्ति को रोकना वचन गुप्ति है।

कायगुप्ति– शारीरिक प्रवृत्ति को रोकना काय गुप्ति है।

प्रश्न 41. मुनियों के पञ्चाचारों का स्वरूप क्या है? संक्षेप में बतलाइए।

उत्तर – मुनियों के पञ्चाचारों का स्वरूप इस प्रकार है –

1. **ज्ञानाचार** – व्यञ्जन, अर्थ, तदुभय, काल, विनय, उपधान, बहुमान और अनिह्नव रूप सम्यग्ज्ञान के अष्ट अंगों को अङ्गीकार करना ज्ञानाचार है।
2. **दर्शनाचार**–निःशंकित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढ़दृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण, वात्सल्य और प्रभावना इन सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों से सम्पन्न होना दर्शनाचार है।
3. **चारित्राचार**– पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति और तीन गुप्ति रूप से तेरह प्रकार के चारित्र का पालन करना चारित्राचार है।
4. **तपाचार**– अनशन,अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रस परित्याग, विविक्त शय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान रूप बारह तपों को तपना तपाचार है।
5. **वीर्याचार**– समस्त इतर (वीर्याचार के अलावा) आचार में प्रवृत्ति करने वाली शक्ति के अगोपन स्वरूप (नहीं छुपाने रूप) वीर्याचार है।

प्रश्न 42. मुनियों के बारह तपों के लक्षण बतलाइए?

उत्तर –

1. **अनशन तप**– संयम की वृद्धि, विशेष ज्ञानाराधना एवं समीचीन ध्यान की सिद्धि के लिए चार प्रकार के (खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय) आहार का त्याग करना, अनशन तप है।
2. **अवमौदर्य तप**– रागादि दोषों के उपशम और संतोष, स्वाध्याय एवं ध्यान की प्रसिद्धि के लिए भूख से कम आहार ग्रहण करना, अवमौदर्य तप है।
3. **वृत्तिपरिसंख्यान**–भोजन विषयक तृष्णा को दूर करने के लिए भिक्षा के अभिलाषी मुनि, जो घर तथा अन्न आदि से सम्बन्ध रखने वाले अनेक प्रकार के नियम लेते हैं, वह वृत्ति परिसंख्यान नामक तप है।
4. **रस परित्याग** – इन्द्रियों को जीतने के लिए नमक, मीठा, घी, दूध, दही, तेल इन षट् रस में से कुछ रसों का या सब रसों का परित्याग करना,रस परित्याग है।

5. **विविक्तशय्यासन**-व्रत शुद्धि के लिए स्वाध्याय की निर्दोषता के लिए और ध्यान की प्रसिद्धि के लिए पशु व स्त्री आदि से रहित प्रासुक एवं पवित्र स्थान में शयन करना, आसन लगाना, विविक्तशय्यासन तप है।
6. **कायक्लेश**-आतापन, वर्षा और शीत ये तीन योग धारण करना तथा प्रतिमा योग से स्थित होना, इन्हें आदि लेकर बुद्धि पूर्वक जो सुख का त्याग किया जाता है वह मोक्षमार्ग की प्रभावना करने वाला कायक्लेश नाम का तप है।
7. **प्रायश्चित्त**- प्रमाद से या अज्ञान से हुए दोषों की शुद्धि करना प्रायश्चित्त तप है।
8. **विनय**-रत्नत्रय या रत्नत्रय धारकों की या देव-शास्त्र-गुरु का आदर सम्मान करना और वन्दना आदि से विनय करना विनय नामक तप है।
9. **वैयावृत्त**-शरीर से या समयोचित वस्तु से मुनियों की सेवा करना सो वैयावृत्त तप है।
10. **स्वाध्याय**-सर्वज्ञ प्रणीत- आर्ष परम्परा की वाणी का चिन्तन कर उसको पढ़कर, सुनकर, लिखकर, आलस्य से दूर हटकर स्व- आत्मा में अधि अर्थात् बसना स्वाध्याय तप है।
11. **व्युत्सर्ग**-बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रहों में 'ये मेरे हैं' इस प्रकार से संकल्प का त्याग करना व्युत्सर्ग तप है।
12. **ध्यान**-आर्त्त और रौद्र ध्यानों का त्याग कर चित्त की चंचलता को रोकते हुए धर्म और शुक्ल ध्यानों में लीन, ध्यान नाम का तप है।

प्रश्न 43. मुनियों में इन बारह प्रकार के तपों में पहले के छह तपों को बाह्य तप एवं बाद के छह तपों को अंतरंग तप क्यों कहा गया है?

उत्तर - क्योंकि पहले के अनशनादि छह तपों को करने में बाह्य द्रव्य की (शरीर की एवं शरीर को आवश्यक पड़ने वाले भोजनादिक के त्याग की) प्रधानता होती है एवं इन अनशनादि छह तपों को जैनियों के अलावा अन्य मतावलम्बी भी कर सकते हैं इसलिए इन्हें बाह्य तप कहा गया है और बाद के प्रायश्चित आदि छह तपों को करने में निर्मल आत्म द्रव्य की प्रधानता होती है तथा इन प्रायश्चित आदि छह तपों को यथार्थ रूप से सम्यग्दृष्टि आत्म ज्ञानी साधु जन ही कर सकते हैं अन्य नहीं इसलिए इन्हें अंतरंग तप कहा गया है। इन तपों में माया और मान कषाय विजय की प्रमुखता है।

प्रश्न 44. इन बारह तपों को तपने से (करने से) क्या लाभ है?

उत्तर - सम्यग्दृष्टि जीव के ये तप संवर निर्जरा के कारण हैं जैसा कि तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र में कहा गया है कि -''तपसा निर्जरा च'' तप से संवर भी होता है और निर्जरा भी होती है।

प्रश्न 45. वे बाईस परीषह कौन से हैं जिन्हें मुनिराज कर्म के संवर एवं निर्जरा के लिए समता से सहन करते हैं?

उत्तर - मुनियों के बाईस परीषह एवं उन पर विजय -

1. **क्षुधा**-उपवास, अलाभ, अवमौदर्य और रसपरित्याग आदि कारणों से भी बढ़ी हुई क्षुधा

की वेदना को समता के साथ सहन करना क्षुधा परीषहजय है।

2. **तृषा**-ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की प्रखर तपन से, अनेक उपवास, रस परित्याग, विकट रोग, उग्र विहार आदि कारणों से उत्पन्न हुई प्यास की तीव्र वेदना को समता से सहन कर लेना तृषा परीषहजय है।
3. **शीत**-शीत काल में हिमपात, झंझावात, नदी तट स्थान आदि से उत्पन्न हुई सर्दी की वेदना को समता के साथ सहन करना शीत परीषहजय है।
4. **उष्ण**-ग्रीष्म काल में गरम हवा, प्रखर धूप, गिरिशिला स्थान आदि से उत्पन्न हुई गर्मी की वेदना को समता के साथ सहन करना उष्ण परीषहजय है।
5. **दंशमशक**-डांस, मच्छर, मक्खी, चींटी, बिच्छू आदि के काटने से उत्पन्न वेदना में सहनशीलता का होना दंशमशक परीषहजय है।
6. **नाग्न्य**-निःसंगता, ब्रह्मचर्य सिद्धि, आत्म-निर्मलता, उत्तम-ध्यान की सिद्धि के लिए स्वीकार किए गए साधु परमेष्ठी के योग्य यथाजात, नग्न भेष में विकलता रूप परिणामों का न होना नाग्न्य परीषहजय है।
7. **अरति**-शत्रु, विपरीत स्थान आदि अरति के कारण रूप अनिष्ट समागम होने पर भी ग्रहण किए गए संयम में अरति (अरुचि) का न होना अरति परीषहजय है।
8. **स्त्री**-स्त्रियों के कामबाण, हास, परिहास, रागयुक्त गान आदि कु-चेष्टा रूप अनेक उपसर्ग उपस्थित होने पर भी उस उपसर्ग को समता से सहन करना, संयम, व्रत से किञ्चित् भी विचलित नहीं होना स्त्री परीषहजय है।
9. **चर्या**-वन में सिंह की भांति निर्भय होकर नंगे पैरों से उग्र विहार के समय पैर, घुटने आदिक में वेदना, थकावट होने पर भी खेद-खिन्न न होना, वेदना को समता के साथ सह लेना चर्या परीषहजय है।
10. **निषद्या परीषहजय**-श्मशान,उद्यान, शून्यघर और गिरि गुफा आदि में सूर्य प्रकाश और चक्षु आदि इन्द्रिय ज्ञान से परीक्षित प्रदेश में जो नियत काल पर्यन्त निषद्या (आसन) लगाते हैं, सिंह और व्याघ्र आदि की भयंकर ध्वनि के सुनने पर भी निर्भय रहते हुए जो सभी प्रकार के उपसर्ग समता से सहन करते हैं और अपने मोक्षमार्ग से च्युत नहीं होते, ऐसे मुनिवर के वीरासन, खड्गासन आदि आसनों के लगाने से शरीर का अविचल बना रहना निषद्या परीषहजय है।
11. **शय्या**-रात्रि के समय ऊंची-नीची, कंकरीली, कठोर भूमि पर वेदना को समता से सहन करते हुए एक करवट से शयन करना शय्या परीषहजय है।
12. **आक्रोश**-दुर्जनों द्वारा कहे गए कठोर, अपशब्दों को सुनकर भी शान्ति, समता धारण करना आक्रोश परीषहजय है।

13. **वध**-लाठी, तलवार, चाकू, पत्थर आदि से प्रहार करने वाले प्राणियों पर क्रोध न करते हुए उस उपसर्ग को समता से सहन कर लेना, वध परीषहजय है।
14. **याचना**-कैसी भी विकट परिस्थिति होने पर भी आहार, औषध आदि वस्तुओं की याचना नहीं करना याचना परीषहजय है।
15. **अलाभ**-आहार, औषधि आदि वस्तुओं का लाभ न होने पर भी अलाभ में लाभ-जैसा अनुभव करते हुए समता को धारण करना अलाभ परीषहजय है।
16. **रोग**-कठिन व्याधियों के उपस्थित होने पर व्याधि की वेदना को समता से सहन करना व व्याधि के प्रतिकार की उत्सुकता न होना, रोग परीषहजय है।
17. **तृणस्पर्श**-ईर्यासमिति से गमन करते समय अशुभ कर्मोदय से पैरों में कंकड़, कांटा, डंठल आदि चुभ जाने पर भी खेद न करते हुए वेदना में समता धारण करना तृणस्पर्श परीषह जय है।
18. **मल**- अपने मलिन शरीर को देखकर ग्लानि नहीं करना, स्नानादिक से, खुजलाते हुए मैल के प्रतीकार की इच्छा न करना मल परीषहजय है।
19. **सत्कार-पुरस्कार**-अपनी प्रशंसा सत्कार, आगे करके बैठने चलने रूप पुरस्कार और अपमान में समभाव रखना अपने में अधिक गुण होने पर भी कोई आदर, सत्कार, प्रशंसा न करे तो भी खेद-खिन्न न होना सत्कार-पुरस्कार परीषहजय है।
20. **प्रज्ञा**-अपने में ज्ञान अधिक होने पर भी अभिमान-गर्व न होना प्रज्ञा परीषहजय है।
21. **अज्ञान**-ज्ञान की हीनता होने से किसी के द्वारा अज्ञानी आदि कहकर तिरस्कार किया जाए तो भी उस उपसर्ग के समय समता धारण करना दु:खी न होना अज्ञान परीषहजय है।
22. **अदर्शन**-बहुत काल तक घोर तपश्चर्या करने के बाद भी विशेष ज्ञान, अतिशय, ऋद्धि या मुक्ति की प्राप्ति न हो तो भी रत्नत्रय रूप मोक्षमार्ग के विषय में अनास्था-अविश्वास न लाना और निरन्तर मुनि मार्ग से कर्म निर्जरा में प्रयत्नशील रहना अदर्शन परीषहजय है।

प्रश्न 46. ऐसे उत्तम रत्नत्रय धर्म को धारण करने की पात्रता किसके पास है?

उत्तर - ऐसे उत्तम रत्नत्रय धर्म को भव्य, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय, सम्यग्दृष्टि कर्मभूमिज वैराग्य से सम्पन्न जीव ही धारण कर सकते हैं।

प्रश्न 47. देवगति के देवों के पास क्या कोई व्रत या संयम पाया जाता है?

उत्तर - नहीं, देवगति के देवों के पास आगमानुसार कोई व्रत, संयम कदापि नहीं पाया जाता। देवगति के देव मात्र असंयत सम्यग्दृष्टि (चतुर्थ गुणस्थानवर्ती) तक हो सकते हैं। और उन देवों में भी कोई-कोई देव ही सम्यग्दृष्टि होते हैं सभी देव नहीं। क्योंकि जो बुद्धिपूर्वक पञ्चाणुव्रत आदि व्रतों को ग्रहण करता है, वही व्रती कहलाता है।

प्रश्न 48. संज्ञी पञ्चेन्द्रिय कर्मभूमिज भव्य सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च के कोई व्रत हो सकता है क्या?

उत्तर - हाँ, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय कर्मभूमिज भव्य सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च के पञ्चम गुणस्थान के योग्य

पञ्चाणुव्रत तक हो सकते हैं और वह पञ्चाणुव्रतों के साथ सल्लेखना भी धारण कर सकता है जैसे–जटायु पक्षी, त्रिलोकमण्डल हाथी आदि इसके उदाहरण हैं।

प्रश्न 49. भव्य और अभव्य जीव किसे कहते हैं?

उत्तर – जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र की प्राप्ति की तथा मोक्ष प्राप्ति की योग्यता रखता है, उसे भव्य जीव कहते हैं और जो रत्नत्रय एवं मोक्ष की योग्यता नहीं रखता उसे अभव्य जीव कहते हैं।

प्रश्न 50. रत्नत्रय की प्राप्ति का कारण स्वरूप जो वैराग्य है उसकी प्राप्ति इस जीव को कैसे होती है?

उत्तर – संसार शरीर आदिक के स्वरूप को दर्शाने वाली अनुप्रेक्षाओं (बारह भावनाओं) के चिन्तन से इस जीव को वैराग्य की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 51. वे अनुप्रेक्षाएं कौन सी हैं, जिन्हें भव्य जीवों को वैराग्य प्राप्ति के लिए सदा भाना (चिन्तन करना) चाहिए?

उत्तर – अनुप्रेक्षाओं (बारह भावनाओं) का स्वरूप –

1. **अनित्य अनुप्रेक्षा**– यौवन, धन गृह और परिजन आदिक इन्द्रिय मेघाकार व इन्द्र धनुष के समान परिवर्तनशील/ अशाश्वत हैं ऐसा चिन्तन करना अनित्य अनुप्रेक्षा है।
2. **अशरण अनुप्रेक्षा** – इस संसार में प्राप्त हुए कोई भी समागम जीव को शरण नहीं। जैसे– सिंह के मुख को प्राप्त हुए हिरण को कोई बचाने में समर्थ नहीं, वैसे ही मृत्यु के आने पर सुर,असुर, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि को भी मणि–मन्त्र–तंत्रादि विविध उपाय बचाने में समर्थ नहीं ऐसा विचार करना अशरण अनुप्रेक्षा है।
3. **संसार अनुप्रेक्षा** –यह पञ्च परावर्तन रूप संसार जिसमें शुभाशुभ कर्मों के फलों को भोगते हुए संसारी जीव चतुर्गति में भ्रमण करते हैं, दु:खों से भरा हुआ है, इसमें वास्तविक सुख किञ्चित् मात्र भी नहीं, इसमें जो झूठा क्षणिक सुख नजर आता है, वह तलवार की धार पर लगे हुए मीठे को अपनी जिह्वा से चखने के समान दु:खदायी है, ऐसा चिन्तन करना संसार अनुप्रेक्षा है।
4. **एकत्व अनुप्रेक्षा** –जन्म–मरण, सुख–दु:ख आदिक अवस्थाओं को यह जीव अकेला ही भोगता है, माता–पिता, भाई, बन्धु आदिक कोई भी इस जीव के वास्तविक साथी नहीं , सभी स्वार्थ का अपनापन दिखलाने वाले हैं, ऐसा मन में बार–बार विचार लाना एकत्व अनुप्रेक्षा है।
5. **अन्यत्व अनुप्रेक्षा**–आत्मा से जब शरीर भी, मिले हुए जल और दूध के समान भिन्न स्वरूप वाला है तब धन, मकान, वैभव और परिजन आदि तो मेरी इस आत्मा से अत्यन्त भिन्न ही हैं; वे मेरे कैसे हो सकते हैं, ऐसा बार–बार चिन्तन करना अन्यत्व अनुप्रेक्षा है।
6. **अशुचि अनुप्रेक्षा**–यह शरीर खून, मांस आदिक अपवित्र धातुओं से बना हुआ है, इससे घिनावने नव मल द्वार बहते रहते हैं एवं इस शरीर को कितना भी खिलाने, पिलाने और

सजाने पर यह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ता ऐसे अपवित्र-अशुचिमय शरीर में रति नहीं करने रूप जो चिन्तन है, वह अशुचि अनुप्रेक्षा है।

7. **आस्त्रव अनुप्रेक्षा**-मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योगों से नवीन कर्मों का आस्त्रव होता है और आस्त्रव ही दुःख का मूल है, इस प्रकार आस्त्रव से दूर होने के सम्बन्ध में चिंतन करना आस्त्रव अनुप्रेक्षा है।
8. **संवर अनुप्रेक्षा**-मिथ्यात्व, योग, अविरति और कषायों को छोड़ने से (या दूर हो जाने से) सभी कर्मों का आत्मा में आना रुक जाता है, ऐसी पुनः-पुनः भावना भाना, संवर अनुप्रेक्षा है।
9. **निर्जरा अनुप्रेक्षा**- जो कर्म स्वयं अपनी स्थिति आने पर फल देकर खिर जाता है। (निर्जरित हो जाता है) उस निर्जरा से मोक्ष नहीं मिलता और पुरुषार्थ पूर्वक जो बारह तपों से कर्मनिर्जरा की जाती है उसी से शिव (मोक्ष) सुख का दर्शन होता है, ऐसी भावना करना निर्जरा अनुप्रेक्षा है।
10. **लोकानुप्रेक्षा**- जो यह षड् द्रव्यमय 343 राजू घन प्रमाण लोक है इसे किसी ने बनाया नहीं, न इसे कोई धारण करता है, और न ही इसका कोई नाश करता है। ऐसे अनादि-अनिधन इस लोक में संसारी जीवात्माएं अनन्त बार जन्म-मरण करती रहती हैं, इस प्रकार चिन्तन करना लोकानुप्रेक्षा है।
11. **बोधि-दुर्लभ अनुप्रेक्षा**-इस जीव को अनेक बार राजा, अहमिन्द्र जैसे पद प्राप्त हो जाते हैं लेकिन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की प्राप्ति इसे अति दुर्लभ है एवं इस जीव को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की एक बार भी प्राप्ति होने के उपरान्त मोक्ष की प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र हो जाती है, ऐसी उत्तम भावना भाना बोधि-दुर्लभ अनुप्रेक्षा है।
12. **धर्मानुप्रेक्षा**-परमार्थ रूप से रत्नत्रय धर्म एवं अहिंसा परमोधर्म ही भव्य आत्माओं का कल्याण करने वाला है। इसे अपने हृदय में धारण करने से सारे संकट दूर हो जाते हैं एवं अचल मोक्ष सुख प्राप्त होता है, ऐसा बार-बार चिंतन करना धर्म अनुप्रेक्षा है।

प्रश्न 52. पूर्ण रत्नत्रय के धारी कौन होते हैं?

उत्तर - पूर्ण रत्नत्रय के धारी छठवें-सातवें आदि गुणस्थानों में रहने वाले सकल संयमी महामुनिराज होते हैं।

प्रश्न 53. मुनियों के पांच चारित्रों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए?

उत्तर -
1. स्वाध्याय आदि नियतकाल एवं ईर्यापथ आदि अनियत काल सामायिक चारित्र है।
2. सदोषी का पुनः व्रतों का ग्रहण या विकल्पों की निवृत्ति छेदोपस्थापना चारित्र है ।
3. प्राणिवध से निवृत्ति युक्त शुद्धि परिहार विशुद्धि चारित्र है।
4. कषाय का अति सूक्ष्म हो जाना सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र है।

5. मोहनीय कर्म के उपशम या क्षय से आत्मा के स्व स्वभाव रूप अवस्था का नाम यथाख्यात चारित्र है।

प्रश्न 54. मुनियों के नामान्तर (पर्यायवाची नाम) क्या हैं ? एवं मुनि के इन अनेक नामों के अर्थ बतलाइए ?

उत्तर - 1. अनगार-जिन्होंने गृह का त्याग कर दिया है।
2. निर्ग्रन्थ-जो ग्रन्थ-परिग्रह से रहित हैं।
3. साधु-जो आत्मा की साधना करते हैं।
4. दिगम्बर-दशों दिशाएं ही जिनके वस्त्र हैं।
5. योगी-जो शीत, ग्रीष्म एवं वर्षायोग धारण करते हैं।
6. श्रमण-जो मोक्ष के लिए श्रम करते हैं।
7. संयमी-जो सकल संयम (इन्द्रिय, प्राणी संयम) के धारक हैं।
8. व्रती-जो अहिंसादि पञ्च महाव्रतों के धारक हैं।
9. समय-जो उत्तम आत्मा हैं।
10. तपस्वी-जो उपवासादि बारह तपों को तपते हैं।
11. मुनि-जो (पाप कार्यों में) मौन धारण करते हैं।
12. ऋषि-जो ऋद्धि के धारक होते हैं।
13. भिक्षु-जो भिक्षा वृत्ति से श्रावकों के गृहों में शुद्ध आहार ग्रहण करते हैं।
14. यति-जो निज आत्मा को शुद्ध करने का प्रयत्न, पुरुषार्थ करते हैं।
15. अतिथि-जिनकी आने-जाने की कोई तिथि निश्चित नहीं।

प्रश्न 55. वे कौन से मुनिराज थे जिनके उज्ज्वल चारित्र के माहात्म्य से जिन्हें स्वयमेव ऐसी विशेषता प्राप्त हुई थी कि जिसके प्रभाव से पर्वत भी स्वर्ण का बन गया था एवं उसे देखकर उनकी पूर्व अवस्था के लघु भ्राता भर्तृहरि का मान खण्डित हुआ था एवं वे भर्तृहरि भी ऐसे जैन धर्म के, मुनिधर्म के अचिन्त्य प्रभाव को देखकर दिगम्बर मुनि बन गए थे ?

उत्तर - वे दिगम्बर मुनिराज थे 'शुभचन्द्राचार्य जी'।

प्रश्न 56. ऐसे कौन से दिगम्बर महा मुनिराज थे जो राजा श्रेणिक के द्वारा गले में सर्प डाले जाने पर एवं असंख्यात चींटियों के द्वारा खाए जाने पर भी अपनी तपस्या ध्यान मुद्रा से विचलित नहीं हुए।

उत्तर - ऐसे दिगम्बर महा मुनिराज थे 'श्री यशोधर जी'।

प्रश्न 57 समवसरण में दीक्षा लेने वाले ऐसे कौन से दिगम्बर महामुनि थे, जिनके जंगल में ध्यान करते समय मस्तक पर जलती हुई सिगड़ी रखी जाने पर एवं सिर (मस्तक) में अग्नि लग जाने पर भी जो अपने मुनि धर्म के सकल चारित्र से एवं ध्यान से विचलित नहीं हुए और उपसर्ग सहते-सहते केवली बन गए।

उत्तर - समवसरण में दीक्षा लेने वाले ऐसे दिगम्बर महामुनि थे 'श्री गजकुमार'।

अध्याय 12.
सप्त तत्त्व, षड् द्रव्य वर्णन

सम्यक्त्व की उत्पत्ति के निमित्तों में जिस शास्त्र का कथन किया जाता है, वह शास्त्र सप्ततत्त्वों और षट् द्रव्यों के स्वरूप को बतलाने वाला है। जिनके समझे बिना हम शास्त्र अथवा जैनधर्म के मूल सिद्धान्तों को नहीं समझ सकते। मूल तत्त्व जीव और अजीव ही हैं। इनके ही मेल या विलग होने से अन्य तत्त्वों का निर्माण होता है। जैसे-जीव में अजीव (कर्म) का आना आस्रव तत्त्व है। जीव में अजीव (कर्म) का बँध जाना, बन्ध तत्त्व है। धार्मिक क्रिया करते समय जीव में अजीव (पाप कर्म) का नहीं आना, संवर तत्त्व है। यह निचली अवस्था का संवर जानना चाहिए। श्रेष्ठ ध्यान के समय मुनि लोग पाप, पुण्य इन दोनों का संवर कर देते हैं। जीव से अजीव (कर्म) का थोड़ा-थोड़ा बाहर निकलना, निर्जरा तत्त्व है। और बड़ी तपस्या रूप ध्यान द्वारा जीव से अजीव कर्म का पूर्ण रूप निकल जाना मोक्ष तत्त्व कहलाता है। षट् द्रव्य भी इन्हीं दो तत्त्वों में समाहित हैं, क्योंकि एक जीव मात्र के अलावा सभी पुद्गल आदि द्रव्यों का अजीव में ग्रहण हो जाता है। परन्तु जीव, अजीव इन दो के अलावा अन्य तत्त्वों एवं द्रव्यों को पहचाने बिना जीवाजीव की पूर्ण पहचान नहीं हो सकती। इस कारण यहाँ 'सप्त तत्त्व एवं षट् द्रव्य वर्णन' नामक बारहवां अध्याय रखा गया है।

प्रश्न 1. तत्त्व शब्द का अर्थ क्या है?

उत्तर - तत्त्व शब्द का भाव सामान्य का वाचक है। जो पदार्थ जिस रूप में अवस्थित है, उसका उस रूप होना यही तत्त्व शब्द का अर्थ है।

प्रश्न 2. सप्त तत्त्व किन्हें कहते हैं?

उत्तर - जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन्हें सप्त तत्त्व कहते हैं।

प्रश्न 3. जीव तत्त्व किसे कहते हैं?

उत्तर - जिसमें ज्ञान दर्शन शक्ति (जानने-देखने की शक्ति) पायी जाती है, उसे जीव तत्त्व कहते हैं।

प्रश्न 4. जीव के कितने भेद हैं?

उत्तर - संज्ञी (मन सहित), असंज्ञी (मन रहित) की अपेक्षा से जीव के दो भेद हैं।

प्रश्न 5. जीव के दूसरी तरह के भेद कौन से हैं?

उत्तर - त्रस और स्थावर यह जीव के दूसरी तरह से भेद हैं।

प्रश्न 6. स्थावर जीव किसे कहते हैं?

उत्तर - स्थावर नाम कर्म के उदय से पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जन्म लेने वाले (एकेन्द्रिय) जीवों को स्थावर जीव कहते हैं।

प्रश्न 7. त्रस जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - त्रस नाम कर्म के उदय से द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय में जन्म लेने वाले जीव को त्रस जीव कहते हैं।

प्रश्न 8. पाँच इन्द्रियां कौन-सी हैं ? क्रमशः नाम एवं अर्थ बतलाइए।

उत्तर -
1. स्पर्शन इन्द्रिय-जिससे स्पर्श किया जाए ।
2. रसना इन्द्रिय-जिससे चखा जाए (स्वाद लिया जाए)।
3. घ्राण इन्द्रिय-जिससे सूंघा जाए (गन्ध ली जाए)।
4. चक्षु इन्द्रिय -जिससे देखा जाए।
5. श्रोत्र इन्द्रिय -जिससे सुना जाए।

प्रश्न 9. एकेन्द्रिय जीव की पहचान क्या है ?

उत्तर - जिन जीवों के पास मात्र एक स्पर्शनेन्द्रिय पाई जाती हैं, ऐसे पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक जीव एकेन्द्रिय जीव हैं।

प्रश्न 10. द्वीन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - जिन जीवों के पास स्पर्शन और रसना ये दो इन्द्रियां पाई जाती हैं, ऐसे लट (कृमि) शंख इत्यादि जीवों को द्वीन्द्रिय जीव कहते हैं।

प्रश्न 11. त्रीन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - जिन जीवों के पास स्पर्शन, रसना और घ्राण ये तीन इन्द्रियां पाई जाती हैं, ऐसे चींटी (पिपीलिका),बिच्छू, खटमल इत्यादिक जीवों को त्रीन्द्रिय जीव कहते हैं।

प्रश्न 12. चतुरिन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - जिन जीवों के पास स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु ये चार इन्द्रियां पायी जाती हैं ऐसे भ्रमर, मक्खी इत्यादि जीवों को चतुरिन्द्रिय जीव कहते हैं।

प्रश्न 13. पञ्चेन्द्रिय जीव किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - जिन जीवों के पास स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र ये पाँच इन्द्रियां पायी जाती हैं ऐसे मनुष्य, देव, नारकी, सिंह, गाय, भैंस इत्यादिक जीवों को पञ्चेन्द्रिय जीव कहते हैं।

प्रश्न 14. अजीव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसमें ज्ञान दर्शन शक्ति (जानने, देखने की शक्ति) नहीं पायी जाती, उसे अजीव तत्त्व कहते हैं, जैसे-पुद्गल, आकाश इत्यादिक।

प्रश्न 15. आस्रव तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - मन, वचन, काय की प्रवृत्ति (चंचलता) के द्वारा आत्मा में कर्मों के आगमन को आस्रव तत्त्व कहते हैं।

प्रश्न 16. आस्रव के कितने भेद हैं ? नाम बतलाइए।

उत्तर - आस्रव के सत्तावन (57) भेद हैं।

पाँच मिथ्यात्व - 1. एकान्त मिथ्यात्व 2. विनय मिथ्यात्व 3. विपरीत मिथ्यात्व 4. संशय मिथ्यात्व 5. अज्ञान मिथ्यात्व ।

बारह अव्रत-षट्काय की रक्षा नहीं, पाँच इन्द्रिय वश नहीं, मन वश नहीं ।

पच्चीस कषाय-अनन्तानुबन्धी- 1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ।

अप्रत्याख्यान-1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ।

प्रत्याख्यान- 1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ।

संज्वलन - 1. क्रोध 2. मान 3. माया 4. लोभ।

नोकषाय - 1. हास्य 2. रति 3. अरति 4. शोक 5. भय 6. जुगुप्सा 7. स्त्री वेद 8. पुरुषवेद 9. नपुंसक वेद।

पन्द्रह योग-मनोयोग - 1. सत्य मनोयोग 2. असत्य मनोयोग 3. उभय मनोयोग, 4. अनुभय मनोयोग।

वचन योग -1. सत्य वचनयोग 2. असत्य वचनयोग 3. उभय वचनयोग 4. अनुभय वचनयोग।

काययोग-1. औदारिक काययोग 2. औदारिकमिश्र काययोग 3. वैक्रियिक काययोग 4. वैक्रियिक मिश्रकाययोग 5. आहारक काययोग 6. आहारकमिश्र काययोग 7. कार्मण काय योग।

प्रश्न 17. बन्ध तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा में कषाय और योग का निमित्त पाकर कार्माण वर्गणाओं का कर्म रूप में आकर ठहर जाना बन्ध तत्त्व कहलाता है।

प्रश्न 18. बन्ध तत्त्व कितने प्रकार का होता है ?

उत्तर - बन्ध चार प्रकार का होता है -1. प्रकृति बन्ध 2. प्रदेश बन्ध 3. स्थिति बन्ध 4. अनुभाग बन्ध।

प्रश्न 19. चार प्रकार के बन्धों का अर्थ क्या है ?

उत्तर -

1. बन्धे हुए कर्मों के स्वभाव को प्रकृति बन्ध कहते हैं। जैसे-ज्ञानावरण कर्म का स्वभाव ज्ञान होने में बाधा डालना।
2. कर्मरूप होने वाली कार्माण वर्गणाओं को (उनकी संख्या को) प्रदेश बन्ध कहते हैं।
3. कर्मों का उस प्रकृति रूप से थोड़े या ज्यादा काल तक ठहरे रहना स्थिति बन्ध कहते हैं। जैसे-सत्तर कोड़ा-कोड़ी सागरोपम या अन्तर्मुहूर्त स्थिति।
4. कर्मों का रस विशेष या फल दान शक्ति अनुभाग बन्ध कहलाता है। जैसे किसी कर्मफल से ज्यादा दुःख या किसी कर्म के उदय से कम दुःख प्राप्त होता है, इसी प्रकार सुख भी।

प्रश्न 20. कषाय की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - क्रोध, मान, माया, लोभ रूप आत्मा के विभाव परिणामों को कषाय कहते हैं।

प्रश्न 21. योग किसे कहते हैं ?

उत्तर - मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों के चंचल होने को योग कहते हैं।

प्रश्न 22. योग से कौन सा बन्ध होता है ? एवं कषाय से कौन सा बन्ध होता है ?

उत्तर – जैसा कि द्रव्यसंग्रह शास्त्र में कहा गया है कि –

पयडिट्ठिदि अणुभागप्पदेसभेदा दु चदुविधो बन्धो।
जोगा पयडिपदेसा, ठिदिअणुभागा कसायदो होन्ति ॥33॥

अर्थ–कर्म बन्ध प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार प्रकार का कहा गया है। योग से प्रकृति और प्रदेश बन्ध एवं कषाय से स्थिति और अनुभाग बन्ध होता है।

प्रश्न 23. संवर तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा में कर्मों का आना रुक जाना संवर तत्त्व है।

प्रश्न 24. संवर तत्त्व के कितने भेद हैं ?

उत्तर – संवर के 1. गुप्ति 2. समिति 3. धर्म 4. अनुप्रेक्षा 5. परीषहजय और 6. चारित्र। इस प्रकार छह भेद हैं अर्थात् इन छह के द्वारा संवर होता है अथवा उत्तर भेद रूप से 57 प्रकार का होता है जिनका वर्णन पृष्ठ क्रमांक 100, 98, 53, 104, 101, एवं 105 पर देखिये।

प्रश्न 25. निर्जरा तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – पूर्वबद्ध कर्मों का आत्मा से एक देश निकलना निर्जरा तत्त्व कहलाता है।

प्रश्न 26. निर्जरा के कितने भेद हैं ?

उत्तर – सविपाक और अविपाक के भेद से निर्जरा के दो भेद हैं।

प्रश्न 27. सविपाक एवं अविपाक निर्जरा किसे कहते हैं ? दृष्टान्त सहित समझाइए।

उत्तर –

1. जिस कर्म की जितनी स्थिति बन्धी थी वह कर्म अपनी स्थिति पूरी होने पर उदय में आकर स्वयं झड़ जाता है, उसे सविपाक निर्जरा कहते हैं। जैसे–डाली पर लगा हुआ आम, स्वयं अपनी स्थिति आने पर (पूर्ण होने पर) पेड़ पर पकता है।
2. पुरुषार्थ पूर्वक जो कर्म की स्थिति पूर्ण होने के पहले उस कर्म को झड़ाया जाता है उसे अविपाक निर्जरा कहते हैं। जैसे–डाली पर लगा हुआ आम जो एक माह में पकने वाला था, उसे डाली से तोड़कर पाल में रखकर (नीम आदिक की पत्तियों के बीच रखकर) एक सप्ताह के अन्दर ही अकाल में पका लिया जाता है।

प्रश्न 28. सकाम और अकाम निर्जरा किसे कहते हैं ?

उत्तर–

1. समता भावों से जो पाप कर्मों के संवर पूर्वक सम्यक् त्यागी तपस्वियों द्वारा कर्मों को निर्जरित किया जाता है, उसे सकाम निर्जरा कहते हैं।
2. पराधीनता वश अज्ञानियों के जो भूख–प्यासादि की बाधा को सहन करते हुए कर्म निर्जरित होता है, उसे अकाम निर्जरा कहते हैं।

प्रश्न 29. मोक्ष तत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा से सम्पूर्ण अष्ट कर्मों का निकल जाना / क्षय होना मोक्ष तत्त्व है।

प्रश्न 30. अष्ट कर्म कौन–कौन से हैं ? नाम बतलाइए।

उत्तर - 1. ज्ञानावरण 2. दर्शनावरण 3. वेदनीय 4. मोहनीय 5. आयु 6. नाम 7. गोत्र और 8. अंतराय।

प्रश्न 31. इन अष्ट कर्मों में से घातिया एवं अघातिया कर्म कौन-कौन से हैं?

उत्तर - ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अंतराय ये चार कर्म घातिया कर्म कहलाते हैं। वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार कर्म अघातिया कर्म कहलाते हैं।

प्रश्न 32. घातिया और अघातिया कर्म का अर्थ क्या है?

उत्तर - जिन कर्मों के उदय से जीव के चेतना, सुख, वीर्य आदि अनुजीवी गुणों का घात होता है, उन्हें घातिया कर्म कहते हैं। और जो सूक्ष्मत्व आदि प्रतिजीवी गुणों का घात करें उन्हें अघातिया कर्म कहते हैं।

प्रश्न 33. सप्त तत्त्वों को एक उदाहरण से समझाइए?

उत्तर - जैसे-एक संसार रूपी समुद्र में समझो जल अजीव है, उसमें नाव चलाने वाला खेवटिया जीव है, नाव में एक छिद्र द्वारा जल का अन्दर प्रवेश करना आस्रव है, नाव में जल का आकर ठहर जाना बन्ध है, नाव में जल आने के द्वार को बंद करना संवर है, नाव में स्थित पुराने जल को निकालना (उलीचना) निर्जरा है और नाव से सम्पूर्ण जल का निकल जाना मोक्ष है। यह जल से मुक्ति का उदाहरण है, इसी तरह कर्मों से मुक्ति पाने हेतु त्याग, तपस्या करना अनिवार्य है।

प्रश्न 34. किसी-किसी शास्त्र में देव-शास्त्र-गुरु को भी तत्त्व कहा गया है?

उत्तर - हाँ! बिलकुल ठीक है, देव-शास्त्र-गुरु को तत्त्व कहना यह व्यापक परिभाषा है और शास्त्र (आगम)नामक तत्त्व में जीवादि सप्ततत्त्व भी समाहित हो जाते हैं।

प्रश्न 35. द्रव्य का लक्षण क्या है?

उत्तर - द्रव्य का लक्षण सत् है।

प्रश्न 36. सत् कैसा है?

उत्तर - सत्-उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य से युक्त है।

अर्थात्-जो है वह सब उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य से सहित है। जिसमें उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य न हो या इन तीनों में से कोई भी एक न हो (अथवा कोई भी एक कम हो) तो वह सत् ही नहीं-ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न 37. उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य किसे कहते हैं? उदाहरण द्वारा समझाइए।

उत्तर -

1. द्रव्य या वस्तु में नवीन पर्याय के उत्पन्न होने को उत्पाद कहते हैं। जैसे-स्वर्ण के घट से मुकुट बनाए जाने पर मुकुट पर्याय का उत्पाद होना।
2. द्रव्य या वस्तु में पूर्व पर्याय के विनाश होने को व्यय कहते हैं। जैसे-स्वर्ण के मुकुट बन जाने पर घट पर्याय का व्यय (नष्ट) होना ।
3. द्रव्य या वस्तु में उत्पाद एवं व्यय होने पर भी उसके (द्रव्य या वस्तु के) अस्तित्त्वपने के नाश न होने को ध्रौव्य कहते हैं। जैसे-स्वर्ण घट से मुकुट बनाए जाने पर भी (घट पर्याय से मुकुट पर्याय का उत्पाद एवं घट पर्याय का व्यय होने पर भी) स्वर्ण रूपी पुद्गल द्रव्य या वस्तु का अस्तित्त्व कायम (बना) रहना।

प्रश्न 38. द्रव्य कैसा होता है ?

उत्तर – द्रव्य, गुण पर्याय वाला होता है।

प्रश्न 39. गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – सम्पूर्ण द्रव्य में सदा रहने वाली शक्ति का नाम गुण है।

प्रश्न 40. पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर – गुण की अवस्था (दशा) को पर्याय कहते हैं।

प्रश्न 41. इस लोक में कितने द्रव्य हैं ? उनके नाम बतलाइए।

उत्तर – इस लोक में जीव द्रव्य, पुद्गल द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य ऐसे छह द्रव्य हैं।

प्रश्न 42. जीव द्रव्य का लक्षण क्या है ?

उत्तर – जीव द्रव्य का लक्षण उपयोग है।

प्रश्न 43. उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा सम्बन्धी चैतन्य गुण के अनुविधायी अर्थात् चैतन्य के साथ सदा रहने वाले परिणाम को उपयोग कहते हैं।

प्रश्न 44. उपयोग के कितने भेद हैं, उनके नाम बतलाइए ?

उत्तर – उपयोग के दो भेद हैं – 1. ज्ञानोपयोग, 2. दर्शनोपयोग ।

प्रश्न 45. ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं, उनके नाम बतलाइए ?

उत्तर – ज्ञानोपयोग के आठ भेद हैं–मतिज्ञानोपयोग, श्रुतज्ञानोपयोग, अवधिज्ञानोपयोग, मनःपर्यय ज्ञानोपयोग, केवलज्ञानोपयोग, कुमतिज्ञानोपयोग, कुश्रुतज्ञानोपयोग और कुअवधिज्ञानोपयोग।

प्रश्न 46. दर्शनोपयोग के कितने भेद है ? उनके नाम बतलाइए।

उत्तर – दर्शनोपयोग के चार भेद हैं–चक्षुदर्शनोपयोग, अचक्षुदर्शनोपयोग, अवधिदर्शनोपयोग और केवलदर्शनोपयोग।

प्रश्न 47. पुद्गल द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – स्पर्श, रस, गंध और वर्ण जिसमें पाए जाते हैं, उसे पुद्गल द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न 48. पुद्गल द्रव्य के कितने भेद हैं ?

उत्तर – पुद्गल द्रव्य के परमाणु और स्कन्ध ऐसे दो भेद हैं।

प्रश्न 49. परमाणु किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसका दूसरा भाग न हो सके ऐसे सबसे सूक्ष्म (छोटे) पुद्गल को परमाणु कहते हैं।

प्रश्न 50. स्कन्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर – दो या दो से अधिक परमाणुओं के पिण्ड को स्कन्ध कहते हैं।

प्रश्न 51. धर्म द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – गति रूप से परिणत जीव और पुद्गल के गमन में जो द्रव्य सहकारी होता है, उसे धर्म द्रव्य

कहते हैं। जैसे-गमन करती हुई मछली के लिए जल।

प्रश्न 52. अधर्म द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर - ठहरते हुए जीव और पुद्गल को ठहरने में जो सहकारी होता है, उसे अधर्म द्रव्य कहते हैं। जैसे -ठहरते हुए पथिक के लिए वृक्ष की छाया।

प्रश्न 53. आकाश द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर - जो जीव पुद्गलादि पाँच द्रव्यों को ठहरने के लिए अवगाह (स्थान) देता है, उसे आकाश द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न 54. लोकाकाश किसे कहते हैं?

उत्तर - जहाँ जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये छह द्रव्य देखे जाते हैं, उसे लोकाकाश कहते हैं।

प्रश्न 55. अलोकाकाश किसे कहते हैं?

उत्तर - इस लोकाकाश के बाहर आकाश के अलावा जहाँ जीवादि पाँच द्रव्य नहीं देखे जाते ऐसे अनन्त आकाश को अलोकाकाश कहते हैं।

प्रश्न 56. काल द्रव्य किसे कहते हैं?

उत्तर - जीव पुद्गलादि द्रव्यों के परिणमन में सहकारी होने वाले द्रव्य को काल द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न 57. काल द्रव्य के कितने भेद होते हैं?

उत्तर - निश्चय काल और व्यवहार काल के भेद से काल द्रव्य के दो भेद होते हैं।

प्रश्न 58. निश्चय काल किसे कहते हैं?

उत्तर - जो प्रत्येक द्रव्य में प्रतिसमय परिणमन कराने में सहकारी कारण है, उस द्रव्य को निश्चय काल कहते हैं। जैसे-कुम्भकार के चाक के घूमने के लिए लोहे की कील।

प्रश्न 59. व्यवहार काल किसे कहते हैं?

उत्तर - मिनट, घड़ी, घण्टा, दिन, रात, मास आदि काल द्रव्य की पर्यायों को व्यवहार काल कहते हैं। ये निश्चय काल की पर्यायें हैं।

प्रश्न 60. तीनों लोक में छहों द्रव्य कितनी-कितनी संख्या में हैं?

उत्तर - तीनों लोक में जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं। पुद्गल द्रव्य जीव द्रव्य से भी अनन्त गुने अनन्तानन्त हैं। धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और आकाश द्रव्य एक-एक अखण्ड द्रव्य हैं। काल द्रव्य असंख्यात है।

प्रश्न 61. छह द्रव्यों में से कितने द्रव्य सक्रिय हैं एवं कितने द्रव्य निष्क्रिय हैं?

उत्तर - छह द्रव्यों में से जीव द्रव्य एवं पुद्गल द्रव्य सक्रिय द्रव्य हैं तथा धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य निष्क्रिय हैं।

प्रश्न 62. प्रत्येक द्रव्य के कितने-कितने प्रदेश हैं?

उत्तर - एक जीव द्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य और लोकाकाश के असंख्यात-असंख्यात प्रदेश हैं।

अलोकाकाश के अनन्त प्रदेश हैं। पुद्गल द्रव्य के एक से लेकर संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश तक हैं। प्रत्येक काल द्रव्य एक-एक प्रदेशी है।

प्रश्न 63. प्रदेश की परिभाषा क्या है?

उत्तर - आकाश द्रव्य के जितने हिस्से को एक पुद्गल परमाणु रोकता है, उतने हिस्से को प्रदेश कहते हैं।

प्रश्न 64. अस्तिकाय की परिभाषा बतलाइए?

उत्तर - जो काय रूप से अर्थात् बहु प्रदेशी रूप से अस्ति अर्थात् विद्यमान है, उसे अस्तिकाय कहते हैं।

प्रश्न 65. छह द्रव्यों में से कितने द्रव्य अस्तिकाय हैं?

उत्तर - जीव, पुद्गल (स्कन्ध रूप), धर्म, अधर्म और आकाश ये पाँच द्रव्य बहुप्रदेशी होने से अस्तिकाय हैं। किन्तु काल द्रव्य अस्ति रूप होते हुए भी बहु प्रदेशी न होने के कारण काय रूप नहीं है। इसलिए उसे अस्तिकाय में ग्रहण नहीं किया।

प्रश्न 66. नव पदार्थ किन्हें कहते हैं?

उत्तर जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, मोक्ष, पुण्य और पाप इन्हें नव पदार्थ कहते हैं।

प्रश्न 67. पुण्य किसे कहते हैं?

उत्तर - सदाचार रूपी धार्मिक कर्त्तव्यों से संचित हुआ कर्म; जो आगे जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति कराता है या सुख का कारण होता है तथा मोक्षमार्गानुकूल सामग्री भी प्राप्त कराये और आत्मा को पवित्र करे उसे पुण्य कहते हैं।

प्रश्न 68. पाप किसे कहते हैं?

उत्तर - हिंसादि दुराचार रूप क्रियाओं से अर्जित कर्म; जो आगे जीव को अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति कराता है या आत्मा को अपवित्र करता है, उसे पाप कहते हैं।

प्रश्न 69. वह कौन-सा द्रव्य है, जिसकी सहायता (निमित्त) के बिना अनंत शक्ति के धारक सिद्ध परमेष्ठी या अन्य कोई द्रव्य तीन लोक के ऊपर या बाहर नहीं जा पाते?

उत्तर - वह द्रव्य है 'धर्म द्रव्य'।

अध्याय 13.
त्रिलोक वर्णन

संवेग अर्थात् संसार की प्राप्ति के कारणों से भय हुए बिना हम मोक्षमार्ग की प्राप्ति में अग्रसर नहीं हो सकते। संवेग की प्राप्ति के लिए संसार (जगत्) के स्वरूप का चिंतन आवश्यक है, और चतुर्गति रूप संसार / त्रिलोक के आश्रित है, अतः त्रिलोक का ज्ञान किए बिना हम इस संसार में स्थित सम्पूर्ण नरक-स्वर्गादिक एवं असंख्यात द्वीप-समुद्रों की स्थिति को तथा उसमें रहने वाले जीवों को नहीं जान पाते। त्रिलोक (जगत्) के स्वभाव से परिचित हो जाने से हमें उसमें रहने वाले जीवों का ज्ञान हो जाता है, और उनके सुख-दुःख के कारणों को समझकर संवेग को प्राप्त कर हम लोग सांसारिक दुःखों से मुक्ति पाने हेतु धर्म एवं मोक्ष पुरुषार्थ में संलग्न होते हैं। इस उद्देश्य से यहाँ 'त्रिलोक वर्णन' नाम के तेरहवें अध्याय का प्रकटन हुआ है।

प्रश्न 1. त्रिलोक किसे कहते हैं?

उत्तर - अधोलोक, मध्यलोक और ऊर्ध्वलोक को त्रिलोक कहते हैं ।

प्रश्न 2. त्रिलोक का आकार कैसा है?

उत्तर - त्रिलोक का आकार पैर फैलाकर कमर पर दोनों हाथ रखे हुये पुरुष के समान पुरुषाकार रूप है ।

प्रश्न 3. त्रिलोक की ऊँचाई कितनी है?

उत्तर - त्रिलोक की ऊँचाई नीचे से ऊपर तक चौदह राजू प्रमाण है ।

प्रश्न 4. त्रिलोक की चौड़ाई कितनी है?

उत्तर - त्रिलोक की चौड़ाई सात राजू, फिर सात राजू ऊपर जाने पर चौड़ाई एक राजू, फिर साढ़े तीन राजू ऊपर जाने पर चौड़ाई पाँच राजू, फिर साढ़े तीन राजू ऊपर ऊपर जाने पर चौड़ाई एक राजू प्रमाण है ।

प्रश्न 5. त्रिलोक की मोटाई कितनी है?

उत्तर - त्रिलोक की मोटाई सभी जगह सात राजू प्रमाण है ।

प्रश्न 6. त्रिलोक का घनफल (विस्तार) कितना है?

उत्तर - त्रिलोक का घनफल (विस्तार) तीन सौ तेतालीस घन राजू प्रमाण है ।

प्रश्न 7. राजू का प्रमाण कितना है?

उत्तर - 1000 कि.ग्रा.के भार का लोहे का गोला इन्द्रलोक से नीचे गिरकर 6 मास में जितनी दूर पहुँचे उस सम्पूर्ण लम्बाई को एक राजू कहते हैं ।

प्रश्न 8. यह लोक किसके आधार से स्थित है?

उत्तर - यह लोक घनोदधिवातवलय, घनवातवलय एवं तनुवातवलय के आधार से स्थित है।

प्रश्न 9. अधोलोक की ऊँचाई-चौड़ाई एवं मोटाई कितनी है ?

उत्तर - अधोलोक की ऊँचाई सात राजू, चौड़ाई नीचे सात राजू ऊपर एक राजू एवं मोटाई सात राजू प्रमाण है ।

प्रश्न 10. अधोलोक सम्बन्धी त्रस नाड़ी में क्या है एवं वहाँ कौन रहते हैं ?

उत्तर - अधोलोक सम्बन्धी त्रस नाड़ी में सात पृथ्वियाँ हैं। जहाँ सात पृथ्वियों में नारकी और त्रस नाड़ी से नीचे आठवीं पृथ्वी में मात्र निगोदिया आदि स्थावर जीवों का निवास है।

प्रश्न 11. त्रस नाड़ी किसे कहते हैं ?

उत्तर - त्रिलोक के बीच कुछ कम तेरह राजू ऊँची, एक राजू चौड़ी और एक राजू मोटी एवं त्रस और स्थावर जीवों का जिसमें निवास हो, उसे त्रस नाड़ी कहते हैं।

प्रश्न 12. अधोलोक सम्बन्धी आठ पृथ्वियों के नाम कौन से हैं ? बतलाइये ।

उत्तर - 1. रत्नप्रभा 2.शर्कराप्रभा 3.बालुकाप्रभा 4.पंकप्रभा 5. धूमप्रभा 6.तमः प्रभा 7.महातमःप्रभा और 8.कलकला पृथ्वी ।

प्रश्न 13. रत्नप्रभा नामक पहली पृथ्वी के कितने भाग हैं तथा उन भागों में किनका निवास है ?

उत्तर - रत्नप्रभा नामक पहली पृथ्वी के खरभाग, पंकभाग और अब्बहुलभाग रूप तीन भाग हैं। खर भाग और पंक भाग में भवनवासी एवं व्यन्तर देव निवास करते हैं, तथा अब्बहुलभाग में अनेक बिल बने हुये हैं जिनमें नारकी जीव निवास करते हैं।

प्रश्न 14. नारकी किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - रत्नप्रभादि सात पृथ्वियों में जो कुएँ के समान बिल बने हुये हैं, उन्हें नरक बोलते हैं एवं उनमें रहने वाले जीवों को नारकी कहते हैं ।

प्रश्न 15. रत्नप्रभादि सात भूमियों में बने हुये बिलों की अलग-अलग एवं जोड़ संख्या बतलाइये।

उत्तर - रत्नप्रभादि पृथ्वी में 30 लाख बिल, शर्कराप्रभा में 25 लाख, बालुका प्रभा में 15 लाख, पंकप्रभा में 10 लाख, धूमप्रभा में 3 लाख, तमःप्रभा में 5 कम एक लाख, और महातमःप्रभा में केवल 5 बिल हैं। सभी सातों पृथ्वियों के बिलों का जोड़ 84 लाख है ।

प्रश्न 16. नरकगति में नारकियों को कौन-कौन से दुःख प्राप्त होते हैं ?

उत्तर - एक दूसरे को लड़ाना, शस्त्रों से छेदना, गरम लोहे की पुतली से चिपकाना, कोल्हू में पेलना, भाड़ में झौंकना, एवं तेल भरी कढ़ाई में तलना इत्यादि दुःख प्राप्त होते हैं ।

विशेष-नारकी अपनी विक्रिया से अपने शरीर को ही अस्त्र शस्त्रादिक रूप बना लेते हैं। शस्त्रादिक से छिदने-भिदने के बाद भी नारकियों का जीवन के बीच में अकालमरण नहीं होता उनका शरीर पुनः पुनः पारे के समान जुड़ जाता है। तीसरी बालुका प्रभा नामक पृथ्वी तक असुर कुमार नाम के भवनवासी देवों द्वारा नारकियों को एक दूसरे का बैर स्मरण कराकर और एक दूसरे को भिड़ाकर नाना प्रकार के दुःख दिये जाते हैं।

प्रश्न 17. कौन से बुरे कर्मों द्वारा जीव नरकगति को प्राप्त होता है ?

उत्तर - बहुत हिंसादिक पाप, बहुत परिग्रह का संग्रह, बहुत कषाय एवं बुरे व्यसन करने वाले जीव नरकगति को प्राप्त होते हैं ।

प्रश्न 18. नारकियों की और क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर - नारकियों की

अशुभतर लेश्या - कृष्ण, नील, कापोत, लेश्या होना ।

अशुभतर परिणाम - वैर भाव से दु:ख देने रूप परिणाम होना ।

अशुभतर देह - दुर्गन्धित कुरूपी शरीर होना ।

अशुभतर वेदना - हजार बिच्छुओं के एक साथ काटे जाने आदि से जो दु:ख होता है ,उससे भी अधिक दु:ख होता है ।

अशुभतर विक्रिया- अपने शरीर को हिंसोपकरण तलवार आदिक रूप बनाना। इत्यादि विशेषताएँ होती हैं।

प्रश्न 19. रत्नप्रभा आदि सात पृथ्वियों में कौन-कौन-से जीव जाते हैं और कौन-कौन-से जीव कौन-कौन सी पृथ्वी तक जा सकते हैं ?

उत्तर - पहली पृथ्वी तक -असैनी पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च आदि जा सकते हैं।

दूसरी पृथ्वी तक -सरी सर्प (दो मुख वाले सर्प या सरकने वाले सर्प आदि) जा सकते हैं।

तीसरी पृथ्वी तक -पक्षी (भेरुण्ड आदि) जा सकते हैं ।

चौथी पृथ्वी तक -सर्प- भुजंग (अजगर) आदि जा सकते हैं ।

पाँचवी पृथ्वी तक -सिंह, चीता, व्याघ्र आदि प्राणी जा सकते हैं।

छठवी पृथ्वी तक -स्त्रियाँ जा सकती हैं।

सातवीं पृथ्वी तक -मनुष्य और मत्स्य (राघव, तन्दुल मत्स्य) जा सकते हैं।

विशेष -जिन्होंने (जिन पुरुषों ने) पहले, नरकायु का बन्ध कर लिया है या और बाद में क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त किया ऐसे बद्धायुष्क तीर्थङ्कर प्रकृति का भी बन्ध करने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव भी पहली पृथ्वी तक जाते हैं। और क्षयोपशम या उपशम सम्यक्त्व से च्युत हुये जीव किसी भी पृथ्वी में जा सकते हैं ।

प्रश्न 20. रत्नप्रभादि सात पृथ्वियों के आश्रय से रहने वाले नारकियों की जघन्य एवं उत्कृष्ट आयु कितनी है ?

उत्तर -

क्र.सं.	पृथ्वियों के नाम	जघन्य आयु	उत्कृष्ट आयु
1.	रत्नप्रभा पृथ्वी में	10 हजार वर्ष	1 सागर
2.	शर्कराप्रभा पृथ्वी में	1 सागर	3 सागर
3.	बालुका पृथ्वी में	3 सागर	7 सागर
4.	पंकप्रभा पृथ्वी में	7 सागर	10 सागर
5.	धूमप्रभा पृथ्वी में	10 सागर	17 सागर

6.	तमःप्रभा पृथ्वी में	17 सागर	22 सागर
7	महातमःप्रभा पृथ्वी में	22 सागर	33 सागर

प्रश्न 21. रत्नप्रभादि सात पृथ्वियों से निकले जीव कहाँ-कहाँ एवं कौन-कौन सी अवस्था प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तर - सातवीं पृथ्वी से निकला जीव - पशु (सिंह, गिद्ध, मत्स्यादि) सैनी होता है ।
छठवीं पृथ्वी से निकला जीव - नर, पशु हो सकता है (सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है और नहीं भी लेकिन संयम को नियम से प्राप्त नहीं कर सकता।)
पाँचवी पृथ्वी से निकला जीव - मुनि बन सकता है, लेकिन उसे मोक्ष नहीं प्राप्त होता ।
चौथी पृथ्वी से निकला जीव - केवली बन सकता है लेकिन तीर्थंकर नहीं बन सकता ।
तीसरी दूसरी और पहली पृथ्वी से निकला जीव -तीर्थङ्कर भी हो सकता है।

प्रश्न 22. नरकगति में भी क्या सम्यक्त्व उत्पन्न हो सकता है और अगर हो सकता है तो उसके निमित्त क्या हैं ?

उत्तर - हाँ ! किन्हीं-किन्हीं भव्यों को सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो सकता है। नरकगति में तीसरी पृथ्वी तक जाति स्मरण, धर्मश्रवण, और तीव्र वेदनानुभव ये तीन, तथा चौथी से सातवीं पृथ्वी तक जातिस्मरण और तीव्रवेदनानुभव ये दो; सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति में बहिरङ्ग निमित्त हैं ।

प्रश्न 23. मध्यलोक की ऊँचाई, चौड़ाई एवं मोटाई कितनी है ?

उत्तर - मध्यलोक की ऊँचाई एक लाख चालीस योजन है, चौड़ाई एक राजू और लम्बाई सात राजू है।

प्रश्न 24. मध्यलोक सम्बन्धी त्रस नाड़ी में कैसी रचना है एवं मध्यलोक में कौन-कौन रहते हैं ?

उत्तर - मध्यलोक सम्बन्धी त्रस नाड़ी में जम्बूद्वीप ,धातकीखण्ड आदि असंख्यात द्वीप और लवणोदधि, कालोदधि इत्यादि असंख्यात समुद्र हैं और इस मध्य लोक में मनुष्य, तिर्यञ्च, साथ-साथ ज्योतिषी देव, कुछ भवनवासी देव और कुछ व्यंतर देव रहते हैं ।

प्रश्न 25. मध्यलोक में ज्योतिषी देव इस भूमि से कितने ऊपर जाकर हैं ?

उत्तर - मध्यलोक में इस भूमि से सात सौ नब्बे योजन ऊपर जाकर 110 योजन में ज्योतिषी देव हैं ।

प्रश्न 26. ज्योतिषी देव इस मध्यलोक में स्थित सुमेरुपर्वत की कितनी दूर से प्रदक्षिणा करते हैं ?

उत्तर - ज्योतिषी देव इस मध्य लोक में स्थित सुमेरुपर्वत से ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर (बाजू में) होकर प्रदक्षिणा करते हैं ।

प्रश्न 27. जम्बूद्वीप में कितने सूर्य एवं कितने चन्द्रमा हैं ?

उत्तर - जम्बूद्वीप में दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं ।

प्रश्न 28. सुदर्शनमेरु पर्वत कहाँ है एवं वह कितना ऊँचा है ?

उत्तर - सुदर्शनमेरु पर्वत जम्बूद्वीप के बिल्कुल बीच में स्थित है और वह एक लाख चालीस योजन ऊँचा है ।

प्रश्न 29. सुदर्शनमेरु की (धर्म-दृष्टि से) क्या विशेषता है ?

उत्तर - जम्बूद्वीप सम्बन्धी विदेह क्षेत्र के बहु मध्यभाग में एक लाख चालीस योजन ऊँचा सुदर्शनमेरु पर्वत है। यह पर्वत तीर्थङ्करों के जन्माभिषेक का आसन रूप माना जाता है, क्योंकि इसके शिखर पर पाण्डुकवन में स्थित पाण्डुक, पाण्डुकम्बला, रक्ता और रक्ताकम्बला इन चार शिलाओं पर भरत, ऐरावत, तथा पूर्व व पश्चिम विदेहों के सर्व तीर्थंकरों का देव लोग जन्माभिषेक किया करते हैं। इस मेरु पर्वत में जो 16 अकृत्रिम चैत्यालय स्थित हैं, उनमें विराजमान वीतराग जिनबिम्बों के दर्शनार्थ अनेक ऋद्धिधारी मुनि, विद्याधर व देवगण पहुँचा करते हैं ।

प्रश्न 30. जम्बूद्वीप का विस्तार कितना है एवं उससे आगे स्थित समुद्र और द्वीपों का विस्तार कितना है ?

उत्तर - जम्बूद्वीप का विस्तार एक लाख योजन है। और इससे आगे लवणोदधि समुद्र का विस्तार दो लाख योजन है एवं आगे स्वयंभूरमण द्वीप और स्वयंभूरमण समुद्र पर्यंत असंख्यात द्वीप समुद्रों का विस्तार दुगुना-दुगुना है ।

प्रश्न 31. जम्बूद्वीप का और लवणोदधि समुद्र तथा असंख्यात द्वीप समुद्रों का आकार कैसा है ?

उत्तर - जम्बूद्वीप का आकार थाली के समान (वृत्ताकार) है और लवणोदधि समुद्र का तथा उससे आगे असंख्यात द्वीप समुद्रों का आकार चूड़ी के समान (वलयाकार) है।

प्रश्न 32. जम्बूद्वीप में सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले कौन-से पर्वत हैं ? उनके नाम बतलाइये एवं उन पर्वतों से विभाजित सात क्षेत्रों के नाम बतलाइये ।

उत्तर - जम्बूद्वीप में सात क्षेत्रों का विभाग करने वाले - 1. हिमवन् 2. महाहिमवन् 3. निषध पर्वत 4. नील पर्वत 5. रुक्मि पर्वत और 6. शिखरी पर्वत ये छह पर्वत हैं। तथा इन छह पर्वतों से विभाजित 1. भरत वर्ष 2. हैमवत वर्ष 3. हरिवर्ष 4. विदेह वर्ष 5. रम्यक् वर्ष 6. हैरण्यवत वर्ष और 7. ऐरावत वर्ष ये सात क्षेत्र हैं।

प्रश्न 33. हिमवनादि पर्वतों पर कौन-कौन से नाम वाले तालाब हैं ?

उत्तर - हिमवनादि उन पर्वतों के ऊपर क्रमशः पद्म, महापद्म, तिगिञ्छ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक नाम के एक-एक विशाल तालाब हैं।

प्रश्न 34. हिमवन पर्वत पर स्थित पद्म नामक पहले तालाब की लम्बाई, चौड़ाई और गहराई कितनी है ?

उत्तर - हिमवन पर्वत पर स्थित पद्म नामक तालाब एक हजार योजन लम्बा, पाँच सौ योजन चौड़ा और दस योजन गहरा है ।

प्रश्न 35. उस पद्म नामक तालाब में कितनी चौड़ाई वाला किस प्रकार का कमल है ?

उत्तर - उस पद्म नामक तालाब में एक योजन का पृथ्वीकायरूप कमल है ।

प्रश्न 36. भरत क्षेत्र का विस्तार क्या है ?

उत्तर - भरत क्षेत्र का दक्षिण से उत्तर तक विस्तार पाँच सौ छब्बीस सही छह बटा उन्नीस ($526^{6}/_{19}$) योजन प्रमाण है। अथवा भरत क्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप के विस्तार के एक सौ नब्बे वाँ (190 वाँ) भाग प्रमाण है ।

प्रश्न 37. इस जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र से आगे-आगे स्थित पर्वत क्षेत्र, तालाब और तालाबों में स्थित कमल कितने विस्तार वाले हैं ?

उत्तर - इस जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र से आगे- आगे स्थित पर्वत क्षेत्र, तालाब और तालाबों में स्थित कमल, द्वीप के आधे हिस्से तक क्रमशः बढ़ते हुये दुगुने-दुगुने विस्तारादि को लेकर हैं, उससे आगे विस्तारादि की अपेक्षा घटते हुये क्रम से हैं ।

क्षेत्र और पर्वतों के नाम	क्षेत्र, पर्वतों का विस्तार	पर्वतों पर स्थित तालाबों के नाम
भरत क्षेत्र	$526\frac{6}{19}$ योजन	
हिमवन् पर्वत	$1052\frac{12}{19}$ योजन	पद्म
हैमवत क्षेत्र	$2105\frac{5}{19}$ योजन	
महाहिमवन् पर्वत	$4210\frac{10}{19}$ योजन	महापद्म
हरि क्षेत्र	$8421\frac{1}{19}$ योजन	
निषध पर्वत	$16842\frac{2}{19}$ योजन	तिगिञ्छ
विदेह क्षेत्र	$33684\frac{4}{19}$ योजन	
नील पर्वत	$16842\frac{2}{19}$ योजन	केशरी
रम्यक् क्षेत्र	$8421\frac{1}{19}$ योजन	
रुक्मि पर्वत	$4210\frac{10}{19}$ योजन	महापुण्डरीक
हैरण्यवत क्षेत्र	$2105\frac{5}{19}$ योजन	
शिखरी पर्वत	$1052\frac{12}{19}$ योजन	पुण्डरीक
ऐरावत क्षेत्र	$526\frac{6}{19}$ योजन	

तालाबों के नाम	तालाबों की लम्बाई चौड़ाई और गहराई	तालाबों में स्थित कमलों का विस्तार
पद्म	लम्बाई 1000 योजन, चौड़ाई 500 योजन, गहराई 10 योजन	एक योजन
महापद्म	लम्बाई 2000 योजन, चौड़ाई 1000 योजन, गहराई 20 योजन	दो योजन
तिगिञ्छ	लम्बाई 4000 योजन, चौड़ाई 2000 योजन, गहराई 40 योजन	चार योजन
केशरी	लम्बाई 4000 योजन, चौड़ाई 2000 योजन, गहराई 40 योजन	चार योजन
महापुण्डरीक	लम्बाई 2000 योजन, चौड़ाई 1000 योजन, गहराई 20 योजन	दो योजन
पुण्डरीक	लम्बाई 1000 योजन, चौड़ाई 500 योजन, गहराई 10 योजन	एक योजन

प्रश्न 38. पद्म,महापद्मादि तालाबों से कौन-कौन-सी नदियाँ निकली है एवं उन नदियों की परिवार नदियाँ कितनी हैं ?

उत्तर - उन तालाबों से निकली हुयी गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित्, हरिकान्ता, सीता,सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता, रक्तोदा, ये चौदह नदियाँ हैं। गंगा, सिन्धु इन नदियों की परिवार नदियाँ चौदह-चौदह हजार हैं। तथा ये परिवार नदियाँ विदेहक्षेत्र पर्यन्त

दूनी-दूनी होती हैं एवं विदेह क्षेत्र से ऐरावत क्षेत्र तक उसी क्रम से घटती गयी हैं । **विशेष**-पद्म तालाब से तीन नदियाँ, पुण्डरीक तालाब से तीन नदियाँ और बाकी बीच के चार तालाबों से दो-दो नदियाँ निकली हैं।

प्रश्न 39. भरत, ऐरावत क्षेत्र में कितने खण्ड हैं ?

उत्तर - भरत, ऐरावत क्षेत्र में पाँच म्लेच्छ और एक आर्यखण्ड है ऐसे छह खण्ड हैं ।

प्रश्न 40. भरत और ऐरावत क्षेत्र में कौन-कौन से छह कालों द्वारा जीवों की आयु, उत्सेधादि में वृद्धि, ह्रास होता है ?

उत्तर - भरत और ऐरावत क्षेत्र में सुषमा-सुषमा, सुषमा, सुषमा-दु:षमा, दु:षमा-सुषमा, दु:षमा और दु:षमा-दु:षमा इन छह कालों द्वारा जीवों की आयु, उत्सेधादि में वृद्धि ह्रास होता है ।

प्रश्न 41. हम लोग अभी मध्यलोक में कहाँ निवास करते हैं ?

उत्तर - हम लोग अभी मध्य लोक में जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र सम्बन्धी आर्यखण्ड में निवास करते हैं ।

प्रश्न 42. आर्यखण्ड किसे कहते हैं ?

उत्तर - जहाँ तीर्थङ्कर के पञ्चकल्याणक होते हैं, जहाँ तीर्थङ्करों का विहार होता है एवं जहाँ आर्यजन (अर्थात् धर्मी सभ्य गुणवान् लोग) निवास करते हैं, ऐसे स्थान को आर्यखण्ड कहते हैं ।

प्रश्न 43. म्लेच्छखण्ड किसे कहते हैं ?

उत्तर - जहाँ तीर्थङ्करों के विहार आदि का और धर्म एवं आर्य अर्थात् धर्मी सभ्य मनुष्यों का अभाव होता है ऐसे स्थान को म्लेच्छ खण्ड कहते हैं ।

प्रश्न 44. कौन से जीव मनुष्य पर्याय प्राप्त करते हैं ?

उत्तर - स्वभाव से मृदु (कोमल) परिणाम वाले, एवं अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रह वाले जीव मनुष्य पर्याय को प्राप्त करते हैं ।

प्रश्न 45. कौन से जीव तिर्यंच पर्याय प्राप्त करते हैं ?

उत्तर - छल, कपट (मायाचार) करने वाले जीव तिर्यञ्च पर्याय को प्राप्त होते हैं ।

प्रश्न 46. मध्य लोक में रहने वाले मनुष्य एवं तिर्यञ्चों की कितनी आयु होती है ?

उत्तर - मध्य लोक में रहने वाले मनुष्य एवं तिर्यञ्चों की आयु उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि की अपेक्षा तीन, दो और एक पल्य के भेद से असंख्यात वर्ष की तथा कर्मभूमि की अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त से लेकर पूर्व कोटी (संख्यात) वर्ष तक की होती है।

प्रश्न 47. मुहूर्त की परिभाषा क्या है ?

उत्तर - अड़तालीस मिनट के काल को एक मुहूर्त कहते हैं ।

प्रश्न 48. अन्तर्मुहूर्त किसे कहते हैं ?

उत्तर - आवली से ऊपर और मुहूर्त से भीतर के प्रत्येक समय (काल खण्ड) को अन्तर्मुहूर्त कहते हैं ।

प्रश्न 49. समय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जघन्य गति से एक परमाणु सटे हुए द्वितीय परमाणु तक जितने काल में जाता है, उसे समय कहते हैं ।

प्रश्न 50. आवली किसे कहते हैं ?

उत्तर - जघन्य युक्तासंख्यात संख्यात समयों की एक आवली होती है । एक श्वास में असंख्यात आवलियाँ होती हैं ।

प्रश्न 51. श्वासोच्छ्वास-काल किसे कहते हैं ?

उत्तर - निरोगी पुरुष की नाड़ी के एक बार चलने के काल को श्वासोच्छ्वास कहते हैं ।

प्रश्न 52. एक मुहूर्त में कितने श्वासोच्छ्वास होते हैं ?

उत्तर - एक मुहूर्त में तीन हजार सात सौ तिहत्तर (3773) श्वासोच्छ्वास होते हैं ।

प्रश्न 53. नरक गति के प्रकरण में जो सागर आयु ऐसा कह आये हैं सो सागर का अर्थ क्या है ?

उत्तर - दस कोड़ा कोड़ी अद्धापल्यों का एक सागर होता है ।

प्रश्न 54. अद्धापल्य किसे कहते हैं ?

उत्तर - दो हजार कोस गहरे और दो हजार कोस चौड़े गोल गड्ढे में (कैंची से जिसका दूसरा भाग न हो सके ऐसे) मेंढे के बालों को भरना। जितने बाल समावें, उनमें से एक-एक बाल को सौ-सौ वर्ष बाद निकालना। जितने वर्षों में वे सब बाल निकल जावें उतने वर्षों के जितने समय हों उतने समयों को व्यवहार पल्य कहते हैं। व्यवहारपल्य से असंख्यात गुणा उद्धारपल्य होता है उद्धारपल्य से असंख्यात गुणा अद्धापल्य होता है।

प्रश्न 55. भोगभूमि और कर्मभूमि किसे कहते हैं ?

उत्तर - जहाँ कल्पवृक्षों द्वारा भोग प्राप्त होते हैं और जहाँ षट् कर्म (असि मसि, कृषि, शिल्प, वाणिज्य और विद्या) नहीं किये जाते, उसे भोगभूमि कहते हैं । तथा जहाँ कल्पवृक्ष नहीं पाये जाते एवं षट् कर्म करने पर भोग प्राप्त होते हैं, उसे कर्मभूमि कहते हैं ।

प्रश्न 56. ढाईद्वीप किसे कहते हैं ?

उत्तर - मध्यलोक में स्थित, जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड द्वीप और पुष्करार्धद्वीप को ढाईद्वीप कहते हैं।

प्रश्न 57. ढाईद्वीप की क्या विशेषता है ?

उत्तर - ढाईद्वीप में पाँच मेरु, 35 वर्ष (क्षेत्र), 30 वर्षधर (पर्वत), तीस (30) ह्रद (तालाब) और 70 नदियाँ हैं। जहाँ ऐसे पुण्यवान मनुष्य पाये जाते हैं जो इस महान् ढाई द्वीप से ही कर्मभूमि सम्बन्धी चतुर्थ काल में मोक्ष पुरुषार्थ (त्याग, संयम) से मोक्ष पद प्राप्त करते हैं।

प्रश्न 58. धातकीखण्ड द्वीप का संक्षेप रूप में वर्णन कीजिए ?

उत्तर - लवण समुद्र को घेरे हुये (वलयाकार वाले) धातकीखण्ड नामक दूसरे द्वीप के दक्षिण और उत्तर में इष्वाकार पर्वत होने से दो भाग हो जाते हैं। दोनों भागों में भरतादिक सात-सात क्षेत्र हिमवनादिक छह-छह पर्वत और एक-एक मेरुपर्वत हैं ।इस द्वीप में जम्बूद्वीप से दुगुने क्षेत्र व पर्वतादिक हैं ।

प्रश्न 59. पुष्करार्ध द्वीप का स्वरूप संक्षेप में कहिए ?

उत्तर - कालोदधि समुद्र को घेरे हुये पुष्करवर नाम के तृतीय द्वीप के मध्य में वृत्ताकार मानुषोत्तर पर्वत की रचना है। उस मानुषोत्तर पर्वत से अन्दर की ओर पुष्करार्ध द्वीप में भरतादिक क्षेत्रों एवं

हिमवनादिक पर्वतों की रचना है। धातकीखण्ड द्वीप के सदृश इस द्वीप में भी दक्षिण और उत्तर दोनों ओर इष्वाकार पर्वत होने से इस द्वीप के दो भाग हो जाते हैं तथा धातकीखण्ड द्वीप की तरह यहाँ भी दोनों भागों में भरतादिक सात-सात क्षेत्र,हिमवनादिक छह-छह पर्वत एक-एक मेरु पर्वत की रचना है।

प्रश्न 60. मनुष्यों के आवास कहाँ तक हैं एवं मनुष्य कहाँ तक जा सकते हैं ?

उत्तर - जम्बूद्वीप धातकी खण्ड द्वीप और पुष्करार्ध द्वीप तक ढाईद्वीप कहे जाते हैं। पुष्करवर द्वीप में जो मानुषोत्तर पर्वत स्थित हैं वहाँ तक ढाईद्वीप जानना चाहिए तथा वहाँ तक ही अर्थात् ढाईद्वीप में मनुष्यों के निवास-आवास हैं, इससे (मानुषोत्तर पर्वत से) आगे न तो मनुष्य हैं और न इससे आगे जा सकते हैं ।

प्रश्न 61. ढाईद्वीप में स्थित क्षेत्रों का कर्मभूमि एवं भोगभूमि में विभाजन किस प्रकार है ?

उत्तर - जम्बूद्वीप सम्बन्धी एक भरत क्षेत्र, एक ऐरावत क्षेत्र और एक विदेह क्षेत्र (विदेह क्षेत्र के देवकुरु, उत्तरकुरु को छोड़कर), धातकीखण्ड द्वीप सम्बन्धी दो भरत, दो ऐरावत और दो विदेह क्षेत्र (दो-दो देवकुरु ,उत्तर कुरु को छोड़कर), पुष्करार्ध सम्बन्धी दो भरत, दो ऐरावत और दो विदेह क्षेत्र (दो-दो देवकुरु, उत्तरकुरु को छोड़कर) ऐसे पन्द्रह क्षेत्रों को कर्मभूमि जानना चाहिये ।

जम्बूद्वीप सम्बन्धी एक-एक एवं धातकीखण्ड तथा पुष्करार्ध सम्बन्धी जो दो-दो हैमवत वर्ष, हरिवर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु, रम्यक्वर्ष और हैरण्यवतवर्ष ऐसे 30 क्षेत्र हैं, उनको भोगभूमि जानना चाहिए ।

प्रश्न 62. उत्तम, मध्यम और जघन्य भोगभूमि कौन से क्षेत्रों में होती है ?

उत्तर - सम्पूर्ण ढाईद्वीप के सभी हैमवतवर्ष एवं हैरण्यवतवर्ष क्षेत्रों में हमेशा और सभी भरतवर्ष, ऐरावतवर्ष क्षेत्रों के सुषमा-दुःषमा काल में जघन्य भोगभूमि होती है ।

सभी हरिवर्ष एवं रम्यक्वर्ष क्षेत्रों में हमेशा और सभी भरतवर्ष, ऐरावतवर्ष क्षेत्रों के सुषमा काल में मध्यम भोगभूमि होती है।

सभी विदेह क्षेत्र सम्बन्धी देवकुरु, उत्तरकुरु क्षेत्रों में हमेशा और सभी भरत, ऐरावत क्षेत्रों के सुषमा-सुषमा काल में उत्कृष्ट भोगभूमि होती है।

प्रश्न 63. शाश्वत और अशाश्वत भोगभूमि किन्हें कहते हैं ?

उत्तर - ढाई द्वीप सम्बन्धी हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, देवकुरु, उत्तरकुरु, रम्यक्वर्ष, हैरण्यवर्ष इन क्षेत्रों में होने वाली भूमियों को (परिवर्तन के बिना हमेशा रहने वाली भोगभूमियों को) शाश्वत भोगभूमि कहते हैं। भरत और ऐरावत क्षेत्रों सम्बन्धी सुषमा-सुषमा, सुषमा आदि षट् कालों के अनुसार परिवर्तनशील भूमियों को अशाश्वत भोगभूमि और कर्मभूमि कहते हैं ।

प्रश्न 64. देवकुरु, उत्तरकुरु को छोड़कर बाकी विदेह क्षेत्रों में कौन-सी भूमि होती है ?

उत्तर - देवकुरु, उत्तरकुरु को छोड़कर बाकी विदेह क्षेत्रों में परिवर्तन के बिना शाश्वत कर्मभूमि होती है

वहाँ हमेशा चतुर्थ काल (दुषमा-सुषमा काल) के प्रारम्भ के समान व्यवस्था, धार्मिक (तीर्थङ्करादिक के समवसरण से सहित) वातावरण होता है वहाँ षट्काल का परिवर्तन नहीं ।

प्रश्न 65. भरत, ऐरावत क्षेत्र में वर्तमान अशाश्वत उत्कृष्ट, मध्यम और जघन्य भोगभूमि एवं कर्मभूमि में काल का प्रमाण, वहाँ के मनुष्य जीवों की उत्कृष्ट आयु, उनका उत्सेध तथा आहार के काल आदि का प्रमाण किस प्रकार है ?

उत्तर -

भूमि	काल	काल का प्रमाण	उत्कृष्ट आयु	उत्कृष्ट ऊँचाई	आहार का काल
उ. भोगभूमि	प्रथम काल	4 कोड़ा कोड़ी सागर	3 पल्य	6000 धनुष	तीन दिन के बाद हरड़ के बराबर
म. भोगभूमि	द्वितीय काल	3 कोड़ा कोड़ी सागर	2 पल्य	4000 धनुष	दो दिन के बाद बहेड़ा के बराबर
ज. भोगभूमि	तृतीय काल	2 कोड़ा कोड़ी सागर	1 पल्य	2000 धनुष	एक दिन के बाद आंवला के बराबर
उ. कर्मभूमि	चतुर्थ काल	42 हजार वर्ष कम 1 कोड़ा कोड़ी सागर	1 पूर्वकोटी	525 धनुष	दिन में एक बार
म. कर्मभूमि	पंचम काल	21 हजार वर्ष	120 वर्ष	7 हाँथ	दिन में दो बार
ज. कर्मभूमि	षष्ठ काल	21 हजार वर्ष	20 वर्ष	$3^{1}/_{2}$ हाँथ	दिन में कई बार

प्रश्न 66. भरतक्षेत्र में क्या सम्पूर्ण जगह (छह खण्डों में) काल का परिवर्तन होता है या मात्र आर्यखण्ड में ?

उत्तर - नहीं, भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड में मात्र सुषमा, सुषमा-सुषमा आदि कालों का परिवर्तन होता है ।

प्रश्न 67. आर्यखण्ड को छोड़कर शेष 5 म्लेच्छ खण्डों में कौन से काल के समान व्यवस्था होती है ?

उत्तर - आर्यखण्ड को छोड़कर शेष 5 म्लेच्छ खण्डों में चतुर्थ काल की कर्मभूमि के समान व्यवस्था होती है।

प्रश्न 68. वहाँ म्लेच्छखण्डों में त्याग या संयमासंयम,संयम आदि गुणस्थान तथा तीर्थङ्करादिक का समागम है क्या ?

उत्तर - नहीं, म्लेच्छखण्डों में सम्यक्त्व, संयमासंयम, संयम आदि गुणस्थान प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं है। हाँ! अगर वहाँ के म्लेच्छ मनुष्य, चक्रवर्ती आदि के साथ आर्यखण्ड में आकर धर्म का श्रवण करते हैं तो वे संयमासंयम, संयम आदि को धारण कर सकते हैं ।

प्रश्न 69. भोगभूमि के जीव कौन से गुणस्थान तक को प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तर - भोगभूमि के जीव असंयत सम्यग्दृष्टि तक चार गुणस्थान तक प्राप्त कर सकते हैं उनके पास संयम का अभाव होता है ।

प्रश्न 70. देवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर - देवों के चार भेद हैं -

1. भवनवासी 2. व्यन्तर 3. ज्योतिषी और 4. कल्पवासी।

प्रश्न 71. भवनवासी देव कितने भेद वाले हैं ?

उत्तर - असुरकुमार, नागकुमार, विद्युतकुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार, और दिक्कुमार के भेद से भवनवासी देव दस भेद वाले हैं ।

प्रश्न 72. भवनों में निवास करने वाले भवनवासी देवों के आवास कहाँ हैं ?

उत्तर - इस मध्यलोक के नीचे (पाताल लोक में) रत्नप्रभा पृथ्वी के पंक भाग में असुरकुमारों के भवन हैं। और खर भाग में ऊपर और नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर शेष नौ कुमारों के भवन हैं।

प्रश्न 73. व्यन्तर देव कितने भेद वाले हैं ?

उत्तर - किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच के भेद से व्यन्तर देव आठ भेद वाले हैं ।

प्रश्न 74. नाना देशों में रहने वाले व्यन्तर देवों के आवास कहाँ हैं ?

उत्तर - व्यंतर देवों के चित्राभूमि के नीचे भवनों में, मध्यलोक के भवनपुरों में, पर्वत तालाब के ऊपर आवासों में या रत्नप्रभा पृथ्वी के खरभाग में सात प्रकार के व्यंतरों के और पंक भाग में राक्षसों के आवास हैं।

प्रश्न 75. ज्योतिषी देव कितने भेद वाले हैं ?

उत्तर - सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक-तारे के भेद से ज्योतिषी देव पाँच भेद वाले हैं ।

प्रश्न 76. ज्योतिषी देवों के आवास कहाँ हैं ?

उत्तर - इस मध्यलोक की चित्रा पृथ्वी से सात सौ नब्बे योजन ऊपर जाकर तारकाएँ विचरण करती हैं, जो सब ज्योतिषियों के अधोभाग में स्थित है, इससे दस योजन ऊपर जाकर सूर्य विचरण करते हैं। इससे अस्सी योजन ऊपर जाकर चन्द्रमा परिभ्रमण करते हैं, इससे चार योजन ऊपर जाकर नक्षत्र विचरण करते हैं। इससे चार योजन ऊपर जाकर बुध विचरण करते हैं। इससे तीन योजन ऊपर जाकर बृहस्पति विचरण करते हैं और इससे तीन योजन ऊपर जाकर मंगल परिभ्रमण करते हैं और इससे तीन योजन ऊपर जाकर शनीचर परिभ्रमण करते हैं ।

मेरुपर्वत से ग्यारह सौ इक्कीस योजन दूर रहकर मेरुपर्वत की निरन्तर प्रदक्षिणा करने वाले ये ज्योतिषी देव अपने विमान सहित होते हैं । यह ज्योतिषियों से व्याप्त नभः प्रदेश एक सौ दस योजन मोटा और घनोदधिवलय पर्यन्त असंख्यात द्वीप-समुद्र प्रमाण लम्बा है ।

प्रश्न 77. कहाँ तक के (किस क्षेत्र तक के) ज्योतिषी देवों के विमान आकाश में भ्रमण करते हैं और किस क्षेत्र से बाहर ज्योतिषी देवों के विमान भ्रमण न करते हुये स्थिर रहते हैं ?

उत्तर - मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत के भीतर पाये जाते हैं। मानुषोत्तर पर्वत के एक ओर से लेकर दूसरी ओर तक कुल विस्तार पैंतालीस लाख योजन है। मनुष्य इसी क्षेत्र में पाये जाते हैं, इसलिए यह

मनुष्यलोक कहलाता है। इस मनुष्य लोक में पंच मेरुओं की प्रदक्षिणा करते हुये ज्योतिष्क विमान सदा भ्रमण किया करते हैं। और इस मनुष्यलोक के बाहर ज्योतिषी देव अवस्थित (स्थिर) हैं ।

प्रश्न 78. जम्बूद्वीप की प्रदक्षिणा में सूर्य, चन्द्र को कितना समय लगता है ?

उत्तर - एक सूर्य को जम्बूद्वीप की पूरी प्रदक्षिणा करने में दो दिन-रात का समय लगता है। और चन्द्र को दो दिन-रात से कुछ अधिक समय लगता है। चन्द्रोदय में न्यूनाधिकता इसीसे आती है ।

प्रश्न 79. जम्बूद्वीप में सूर्य को घूमने का क्षेत्र कितना है और गलियाँ कितनी हैं तथा सूर्य के घूमने की गलियों का अन्तर कितना है ?

उत्तर - सूर्य का संचार क्षेत्र जम्बूद्वीप में 180 योजन और लवण समुद्र में 330 $^{48}/_{61}$ योजन माना गया है। सूर्य के घूमने की कुल गलियाँ 184 हैं। इसमें यह क्षेत्र विभाजित हो जाता है एक गली से दूसरी गली में दो योजन का अन्तर माना गया है।

प्रश्न 80. जम्बूद्वीप में दो सूर्य, दो चन्द्रमा हैं यह पहले कह दिया गया है लेकिन आगे के समुद्र और द्वीपों में कितने सूर्य कितने चन्द्रमा हैं ?

उत्तर - लवण समुद्र में चार सूर्य, चार चन्द्र; धातकीखण्ड में बारह सूर्य, बारह चन्द्र; कालोदधि में ब्यालीस सूर्य, ब्यालीस चन्द्र ; पुष्करार्ध द्वीप में बहत्तर सूर्य, बहत्तर चन्द्र; इस प्रकार ढाईद्वीप में एक सौ बत्तीस सूर्य और इतने ही चन्द्र हैं, पुष्करवर द्वीप के दूसरे भाग में पहले भाग (पुष्करार्ध) के समान संख्या वाले बहत्तर सूर्य और बहत्तर चन्द्र हैं और आगे-आगे के स्वयंभूरमण द्वीप और समुद्र पर्यन्त असंख्यात द्वीप समुद्रों में दुगुने- दुगुने जानना चाहिये ।

प्रश्न 81. एक-एक चन्द्र में कौन इन्द्र और कौन प्रतीन्द्र हैं ?

उत्तर - सूर्य और चन्द्र में चन्द्र तो इन्द्र और सूर्य प्रतीन्द्र है ।

प्रश्न 82. एक-एक चन्द्र का परिवार कितना है ?

उत्तर - एक-एक चन्द्र का परिवार एक सूर्य, अट्ठाईस नक्षत्र, अठासी ग्रह, छियासठ हजार नौ सौ कोड़ा-कोड़ी तारे हैं ।

प्रश्न 83. सूर्य बिम्ब से उष्णता और चन्द्र बिम्ब से शीतलता क्यों प्राप्त होती है ?

उत्तर - सूर्य बिम्ब में जो जीव पाये जाते हैं उनके आतप नामकर्म के उदय से उष्णता और चन्द्र बिम्ब के जीवों के उद्योत नामकर्म के उदय से शीतलता प्राप्त होती है।

प्रश्न 84. ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति (आयु) कितनी है ?

उत्तर - ज्योतिष्क देवों की उत्कृष्ट आयु कुछ अधिक एकपल्य है, और जघन्य आयु पल्योपम का आठवाँ भाग है।

प्रश्न 85. भवनवासी देवों की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति (आयु) कितनी है ?

उत्तर - असुरकुमारों की एक सागरोपम, नागकुमारों की तीन पल्योपम, सुपर्ण कुमारों की ढ़ाई पल्योपम, द्वीपकुमारों की दो पल्योपम और विद्युत्कुमारों, अग्निकुमारों, वातकुमारों,

स्तनितकुमारों, उदधिकुमारों एवं दिक्कुमारों की डेढ़ पल्योपम उत्कृष्ट स्थिति (आयु) है । भवनवासी देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है।

प्रश्न 86. व्यन्तर देवों की उत्कृष्ट एवं जघन्य स्थिति (आयु) कितनी है ?

उत्तर - व्यन्तरों की आयु (उत्कृष्ट) कुछ अधिक एक पल्योपम है और जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष है।

प्रश्न 87. ऊर्ध्व लोकसम्बन्धी त्रस नाड़ी में क्या-क्या है एवं वहाँ कौन-कौन रहते हैं ?

उत्तर - ऊर्ध्व लोकसम्बन्धी त्रस नाड़ी में 16 स्वर्ग, 9 ग्रैवेयक, 9 अनुदिश एवं पञ्च अनुत्तर विमान हैं तथा उससे ऊपर सिद्धशिला स्थित है। वहाँ सोलह स्वर्गों में सौधर्मेन्द्र, ईशानेन्द्रादिक देव, नव ग्रैवेयक, नव अनुदिश और पञ्च अनुत्तर विमानों में अहमिन्द्र देव निवास करते हैं। सिद्ध शिला के ऊपर सिद्ध परमेष्ठी विराजमान रहते हैं।

प्रश्न 88. 16 स्वर्गों, 9 ग्रैवेयकों, 9 अनुदिशों एवं पञ्च अनुत्तर विमानों के नाम कौन से हैं ?

उत्तर - **16 स्वर्ग**-1. सौधर्म 2. ऐशान 3. सानतकुमार 4. माहेन्द्र 5. ब्रह्म 6. ब्रह्मोत्तर 7. लांतव 8. कापिष्ठ 9.शुक्र 10. महाशुक्र 11. शतार 12. सहस्त्रार 13. आनत 14. प्राणत 15.आरण और 16.अच्युत ।

9 ग्रैवेयक-1.सुदर्शन 2.अमोध 3. सुप्रबुद्ध 4. यशोधर 5. सुभद्र 6.सुविशाल 7.सुमनस, 8.सौमनस और 9.प्रीतिंकर ।

9 अनुदिश-1. अर्चि 2. अर्चिमालिनी 3. वज्र 4. वैरोचन 5.सौम 6. सौमनस 7. अंक 8. स्फटिक और 9. आदित्य ।

पञ्च अनुत्तर- विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि ।

प्रश्न 89. चारों निकायों (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक) में और भी दूसरे तरह के कौन से भेद हैं ? या सभा रूप से इन्हें किन नामों से पुकारते हैं ?

उत्तर - इन निकायों में सभा रूप में इन्द्र, सामानिक आदि रूप से और भी दूसरे तरह के भेद गिनाये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं - 1.इन्द्र -राजा के सदृश 2.सामानिक-इन्द्र परिवार सदृश 3.त्रायस्त्रिंश-मंत्रियों के सदृश 4.पारिषद्-सदस्यों के सदृश 5.आत्मरक्ष-अंग रक्षक सदृश 6.लोकपाल-प्रजा रक्षक सदृश 7.अनीक-सैनिक सदृश 8.प्रकीर्णक-प्रजा सदृश 9.आभियोग्य-वाहन कर्मकर्त्ता 10.किल्विषिक -अन्तेवासी अर्थात् अंत में निवास करने वाले।

भवनवासी और वैमानिक देवों में ये दशों प्रकार के भेद पाये जाते हैं। परन्तु व्यन्तरों और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंश और लोकपाल को छोड़कर शेष 8 भेद पाये जाते हैं।

प्रश्न 90. ऊपर कहे गये इन्द्र, सामानिक आदि दश भेद क्या सभी वैमानिक देवों में पाये जाते हैं या कुछ विशेषता है ?

उत्तर - ये दस प्रकार के भेद वैमानिकों सम्बन्धी लौकान्तिक देवों को छोड़कर शेष कल्पवासी देवों में हैं कल्पातीत देवों में नहीं।

प्रश्न 91. कल्पवासी और कल्पातीत यह किनकी संज्ञा है ?

उत्तर - 16 स्वर्ग तक के देव कल्पवासी देव कहलाते हैं और इसके ऊपर के ग्रैवेयक आदि के देव कल्पातीत देव कहलाते हैं।

प्रश्न 92. लोक में शत-इन्द्र कौन से हैं?

उत्तर - भवनवासी देवों के असुरकुमार आदि 10 जातियों में प्रत्येक में दो-दो इन्द्र और दो-दो प्रतीन्द्र इस तरह 20 इन्द्र और 20 प्रतीन्द्र हैं। व्यन्तर देवों की किन्नर आदि 8 जातियों में प्रत्येक में दो-दो इन्द्र और दो-दो प्रतीन्द्र इस तरह 16 इन्द्र और 16 प्रतीन्द्र हैं। ज्योतिषियों में 1 इन्द्र और एक प्रतीन्द्र है (चन्द्र, सूर्य)। कल्पवासियों में 12 इन्द्र और 12 प्रतीन्द्र हैं (सौधर्म आदि चार स्वर्गों में एक-एक की अपेक्षा चार इन्द्र और चार प्रतीन्द्र, ब्रह्म स्वर्ग से लेकर सहस्रार स्वर्ग तक इन 8 स्वर्गों में दो-दो स्वर्गों में एक-एक इन्द्र और एक-एक प्रतीन्द्र इस तरह चार इन्द्र और चार प्रतीन्द्र एवं आनत आदि 4 स्वर्गों में 4 इन्द्र और 4 प्रतीन्द्र हैं) मनुष्यों में 1 इन्द्र (चक्रवर्ती) है। तथा तिर्यञ्चों में 1 इन्द्र (सिंह) हैं। (प्रतीन्द्र को भी लोक में इन्द्र सदृश पुकारा जाने से सब मिलाकर 100 इन्द्र हो जाते हैं) कहा भी है -

भवणालयचालीसा, विंतरदेवाण होंति बत्तीसा।
कप्पामर चउवीसा, चंदो सूरो णरो तिरियो॥ (द्र.सं.)

प्रश्न 93. वैमानिक देव किन्हें कहते हैं? और वैमानिक देवों की क्या विशेषता है?

उत्तर - जो देव ऊर्ध्व लोक सम्बन्धी विमानों में रहते हैं एवं पुण्यवान् कहलाते हैं, वे वैमानिक देव हैं। उन वैमानिक देवों में जिन्हें तीर्थङ्करों के पञ्चकल्याणक, समवसरण रचना आदि धर्म कार्य करने का प्रमुख रूप से लाभ प्राप्त होता है ऐसे सौधर्म, ऐशान आदि सोलह स्वर्ग के वैमानिक देव हैं और जो अपने विमानों से नीचे न आकर वहीं विमानों में अर्थात् नव ग्रैवेयकों, नव अनुदिशों तथा पञ्च अनुत्तर विमानों में संसार के उत्कृष्ट सुख में लीन रहते हैं, वे अहमिन्द्र नामक वैमानिक देव कहलाते हैं।

प्रश्न 94. कौन से देव प्रवीचार सहित एवं कौन से देव प्रवीचार (कामवासना) रहित होते हैं?

उत्तर - भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव एवं सौधर्म, ऐशानादिक सोलह स्वर्गों के देव (लौकान्तिक देवों को छोड़कर) प्रवीचार सहित होते हैं। तथा शेष रहे नव ग्रैवेयकों, नव अनुदिशों और पञ्च अनुत्तर विमानों के विमानवासी देव प्रवीचार से रहित होते हैं।

प्रश्न 95. कौन से देव किस प्रकार के प्रवीचार वाले होते हैं?

उत्तर - भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी देव एवं सौधर्म, ऐशान स्वर्गों के देव असंयमी मनुष्यों के समान शरीर से काय प्रवीचार (कामवासना की पूर्ति) करने वाले होते हैं। तीसरे, चौथे, स्वर्ग के देव, देवियों के अंग स्पर्श करके; 5,6,7,8 वें स्वर्ग के देव देवियों के रूप शृंगारादि देखकर; 9,10,11,12 वे स्वर्ग के देव देवियों के संगीतादि सुनकर; 13,14,15,16 वे स्वर्ग के देव देवियों के स्मरण करके काम विकार शान्त कर लेते हैं तथा कल्पवासी देवों से ऊपर रहने वाले ग्रैवेयकादि के देव प्रवीचार से रहित होते हैं।

प्रश्न 96. यक्ष, यक्षिणी देव-देवी प्रवीचार (कामवासना) सहित होते हैं या प्रवीचार से रहित होते हैं ?

उत्तर - व्यन्तरों की कोटी में आने वाले, ये देव-देवी प्रवीचार सहित ही होते हैं। (इसलिए इनकी पूजा करने वाला महामिथ्यात्वी कहा जाता है।)

प्रश्न 97. सौधर्म इन्द्र एवं उसकी प्रमुख इन्द्राणी (शची) की भरतक्षेत्र सम्बन्धी धर्म कार्य में क्या विशेषता है ?

उत्तर - सौधर्म इन्द्र सभी इन्द्रों में प्रधान होता है, तीर्थङ्करों के पञ्चकल्याणक उत्सव करता है तथा उसकी आज्ञा द्वारा समवसरण की रचना होती है और इन्द्राणी (शची) तीर्थङ्कर बालक की (दिव्य आहार, वस्त्राभूषणादिक से) बहुत सेवा करती है तथा सौधर्म इन्द्र एवं इन्द्राणी (शची) स्वर्ग से नीचे आकर मनुष्य भव पाकर एक भव मात्र में मोक्ष पद प्राप्त कर लेते हैं।

प्रश्न 98. ऊर्ध्व लोक के पञ्चम स्वर्ग के अन्त में रहने वाले लौकान्तिक देवों की क्या विशेषताएँ हैं ?

उत्तर -

1. लौकान्तिक देव ब्रह्मचारी रहते हैं ।
2. लौकान्तिक देव सफेद कपड़े पहनते हैं।
3. लौकान्तिक देव 14 पूर्वों रूप श्रुतज्ञान के ज्ञाता होते हैं एवं सदा धर्म चर्चा में लीन रहते हैं।
4. इन लौकान्तिक देवों की वेश भूषा में एवं विचारों में सादगी होने से इन्हें ब्रह्म ऋषि कहते हैं।
5. विषय रति से रहित होने के कारण ये लौकान्तिक देव, देवऋषि कहलाते हैं।
6. दूसरे देवगण इन लौकान्तिक देवों का आदर और इनका गुणगान करते हैं।
7. ये लौकान्तिक देव शुक्ललेश्या के धारी होते हैं।
8. इनका शरीर पाँच हाथ ऊँचा होता है।
9. ये देव स्वतंत्र हैं, क्योंकि इन देवों में कोई (आज्ञा ऐश्वर्यादिक की अपेक्षा) हीनाधिकता नहीं पायी जाती।
10. लौकान्तिक देव तीर्थङ्करों की दीक्षा के समय तीर्थङ्करों के वैराग्य की सराहना करने यहाँ ढाईद्वीप में आते हैं।
11. वे एक भवअवतारी होते हैं अर्थात् वहाँ स्वर्ग से यहाँ आकर मनुष्य पर्याय पाकर मुनि दीक्षा धारण कर मोक्ष सुख को (सिद्ध परमेष्ठी पद) प्राप्त करते हैं।

प्रश्न 99. लौकान्तिक देवपद कौन-से जीव प्राप्त करते हैं ?

उत्तर - जो सम्यग्दृष्टि मुनि निर्दोष चर्या का पालन करते हुये सदा बारह भावनाओं के चिंतन में लीन रहते हैं, वे लौकान्तिक पद प्राप्त करते हैं ।

प्रश्न100.ऊपर बतलायी गयी इस प्रकार की उत्तम चर्या के पालन करने वाले पञ्चमकाल के मुनि भी क्या लौकान्तिक पद प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तर - हाँ ! कुन्दकुन्दाचार्य के अष्टपाहुड ग्रन्थ में कहा है कि इस पञ्चमकाल में भी इस प्रकार की उत्तम चर्या वाले सम्यग्दृष्टि मुनि ऐसे लौकान्तिक जैसे उत्तमपद को अवश्य प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न101. ब्रह्मस्वर्ग के विषय रति वाले देवों से दूर, प्रान्त भाग में अर्थात् ब्रह्म स्वर्ग की चारों दिशाओं और विदिशाओं में ऊपर की ओर रहने वाले एवं जिन्हें जन्म, जरा और मरण रूप संसार का अन्त प्राप्त हो गया है तथा जिन देवों के नाम एवं विमानों के नाम एक सदृश हैं ऐसे लौकान्तिक देवों के रहने की दिशाओं का ज्ञान कराते हुये उन देवों के नामों का संख्या सह एक साधारण चित्र बनाइए?

उत्तर - ब्रह्मलोक में लौकान्तिकदेवों का निवास -

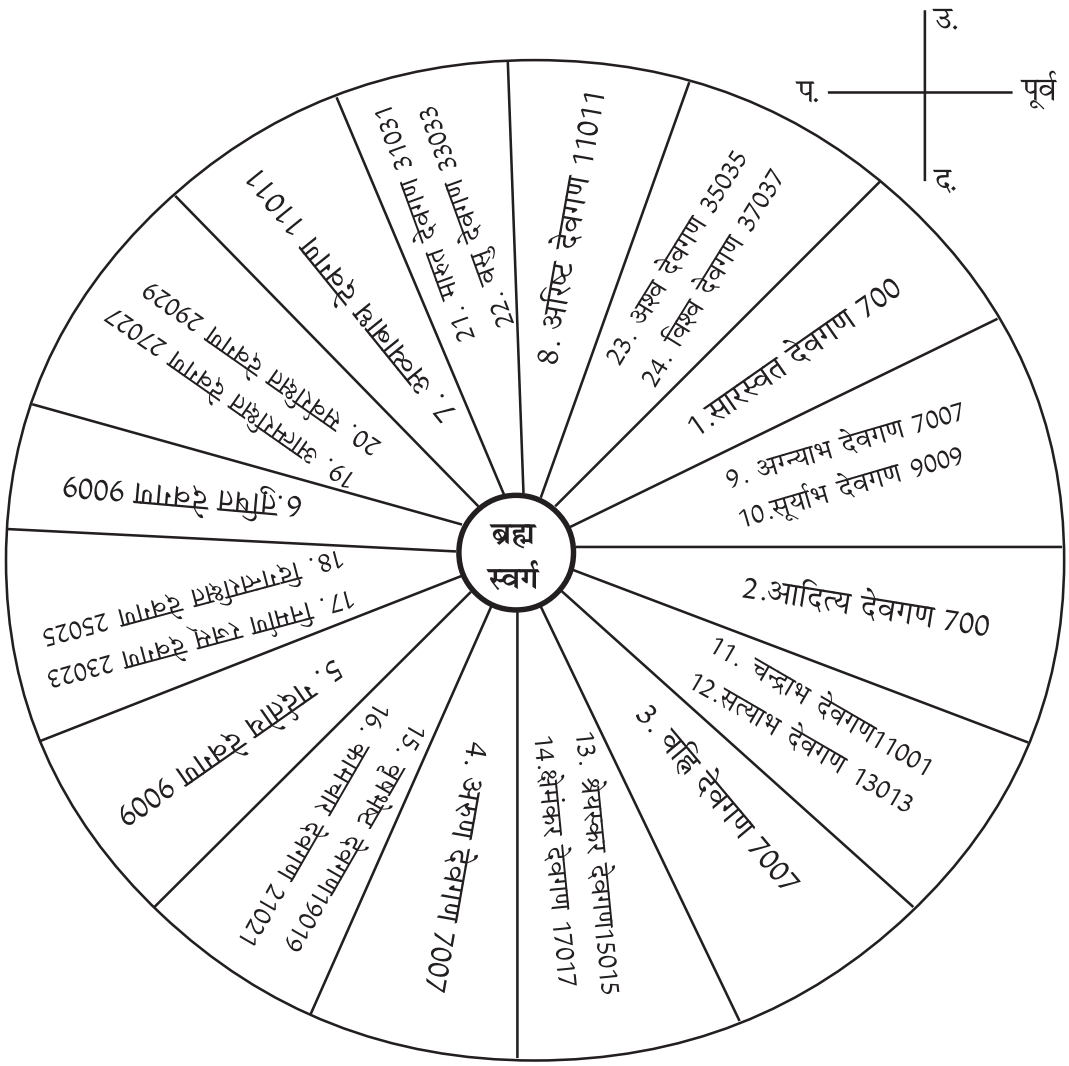

समग्र संख्या-407806 (चार लाख सात हजार आठ सौ छह)

प्रश्न102.क्या सम्यग्दृष्टि को इन्द्र पद, लौकान्तिक देव पद या राज्य आदि के सुख प्राप्त करने की इच्छा (कांक्षा) करना उचित है?

उत्तर - नहीं, सम्यग्दृष्टि जीवों को ऐसे सांसारिक एवं असंयम के स्थानों के सुख की इच्छा नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसी इच्छा करने को निदान या कांक्षा नामक सम्यग्दर्शन का दोष माना गया है। इसलिए इस दोष से बचते हुये सम्यग्दर्शन की सुरक्षा करना चाहिए। वीतराग देव-शास्त्र-गुरु के समक्ष अर्जित किये गये पुण्य कर्म के फल से, बिना इच्छा के ही अनेक तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती जैसी सम्पदाएँ स्वयमेव प्राप्त हो जाती हैं ।

प्रश्न103.लौकान्तिक देव एवं सौधर्म इन्द्र और उसकी इन्द्राणी (शची) आदि देव-देवियों की जैनों को अष्ट द्रव्य से पूजन या अभिषेक क्यों नहीं करना चाहिए ?

उत्तर - क्योंकि इन देवादिकों के पास संकल्प पूर्वक कोई व्रत,संयम नहीं होता और ये देवगति के देव, देवी एक गृह त्यागी संयमी ब्रह्मचारी से भी छोटे होते हैं। तथा जब जैन लोग गृह, रंगीन वस्त्र और शृंगार के त्यागी ब्रह्मचारी जी की भी पूजन, अभिषेक एवं आरती आदि क्रियाएँ नहीं कर सकते तब जैन लोग इन असंयमी देवादिकों की पूजा आदिक कैसे कर सकते हैं ? अर्थात् नहीं कर सकते ।

प्रश्न104.भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क) देवों में और किसी भी प्रकार की देवियों में सम्यग्दृष्टि जन्म ले सकता है क्या ?

उत्तर - नहीं, भवनत्रिक में और किसी भी प्रकार की देवियों में तो मिथ्यादृष्टि जीव ही जन्म लेता है। सम्यग्दृष्टि जीव तो सिद्धान्तानुसार वैमानिक (कल्पवासी और कल्पातीत) देवों में जन्म लेता है।

प्रश्न105.वैमानिक देवों से सम्बन्धित नीचे-नीचे के देवों से ऊपर-ऊपर के देवों में क्या विशेषता है ?

उत्तर - नीचे-नीचे के वैमानिक देवों से ऊपर-ऊपर के वैमानिक देव गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा हीन-हीन होते हैं। अर्थात् प्रथम कल्प (सौधर्म, ऐशान स्वर्ग) से द्वितीय कल्प (सानतकुमार, माहेन्द्र स्वर्ग)में इसी तरह ऊपर-ऊपर के देवों में गमन करना, शरीर की ऊँचाई, परिग्रह और अभिमान कम-कम होता चला जाता है।

प्रश्न106.वैमानिक देवों के शरीर की ऊँचाई कितनी होती है ?

उत्तर - सौधर्म ऐशान स्वर्ग के देवों के शरीर का प्रमाण सात अरत्नि (हाथ) हैं। सानतकुमार, माहेन्द्र स्वर्ग के देवों का शरीर छह अरत्नि प्रमाण है। ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव और कापिष्ठ स्वर्ग के देवों का शरीर पाँच अरत्नि प्रमाण है। शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार कल्प के देवों का शरीर चार अरत्नि प्रमाण है। आनत, प्राणत, कल्प के देवों का शरीर साढ़े तीन अरत्नि प्रमाण है । आरण अच्युत स्वर्ग के देवों का शरीर तीन अरत्नि प्रमाण है। अधोग्रैवेयकों में अहमिन्द्रों का शरीर ढाई अरत्नि प्रमाण है। मध्यग्रैवेयकों में अहमिन्द्रों का शरीर दो अरत्नि प्रमाण है। उपरिम ग्रैवेयकों में और अनुदिशों में अहमिन्द्रों का शरीर डेढ़ अरत्नि प्रमाण है तथा पाँच अनुत्तर विमानों में अहमिन्द्रों का शरीर एक अरत्नि प्रमाण है।

प्रश्न107.वैमानिक देवों की उत्कृष्ट एवं जघन्य आयु कितनी होती है ?

उत्तर - वैमानिक देवों की उत्कृष्ट आयु निम्न प्रकार है -

कल्प और कल्पवासी	उत्कृष्ट आयु	जघन्य आयु
सौधर्म ऐशान कल्प सम्बन्धी	कुछ अधिक 2 सागर	कुछ अधिक 1 पल्योपम
सानतकुमार-माहेन्द्र कल्प सम्बन्धी	कुछ अधिक 7 सागर	कुछ अधिक 2 सागरोपम
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर कल्प सम्बन्धी	कुछ अधिक 10 सागर	कुछ अधिक 7 सागरोपम
लान्तव-कापिष्ठ कल्प सम्बन्धी	कुछ अधिक 14 सागर	कुछ अधिक 10 सागरोपम
शुक्र-महाशुक्र कल्प सम्बन्धी	कुछ अधिक 16 सागर	कुछ अधिक 14 सागरोपम
शतार- सहस्त्रार कल्प सम्बन्धी	कुछ अधिक 18 सागर	कुछ अधिक 16 सागरोपम
आनत- प्राणत कल्प सम्बन्धी	20 सागरोपम	18 सागरोपम
आरण-अच्युत कल्प सम्बन्धी	22 सागरोपम	20 सागरोपम
सुदर्शन ग्रैवेयक सम्बन्धी	23 सागरोपम	22 सागरोपम
अमोध ग्रैवेयक सम्बन्धी	24 सागरोपम	23 सागरोपम
सुप्रबुद्ध ग्रैवेयक सम्बन्धी	25 सागरोपम	24 सागरोपम
यशोधर ग्रैवेयक सम्बन्धी	26 सागरोपम	25 सागरोपम
सुभद्र ग्रैवेयक सम्बन्धी	27 सागरोपम	26 सागरोपम
सुविशाल ग्रैवेयक सम्बन्धी	28 सागरोपम	27 सागरोपम
सुमनस ग्रैवेयक सम्बन्धी	29 सागरोपम	28 सागरोपम
सौमनस ग्रैवेयक सम्बन्धी	30 सागरोपम	29 सागरोपम
प्रीतिंकर ग्रैवेयक सम्बन्धी	31 सागरोपम	30 सागरोपम
नौ अनुदिश सम्बन्धी	32 सागरोपम	31 सागरोपम
प्रथम चार अनुत्तर सम्बन्धी	33 सागरोपम	32 सागरोपम
सर्वार्थसिद्धि अनुत्तर सम्बन्धी	33 सागरोपम	33 सागरोपम

प्रश्न108.शतार-सहस्त्रार इन ग्यारहवें एवं बारहवें स्वर्ग तक के देवों की आयु के साथ कुछ अधिक ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर - क्योंकि बारहवें स्वर्ग तक ही घातायुष्क होता है अर्थात् ऊपर के वैमानिक देवों की आयु का बंध करने वाले जीवों के जब कोई व्रत या सम्यक्त्व के छूटने से पुण्य की कमी हो जाने पर उनकी आयु नीचे वाले वैमानिक देवों की हो जाती है और वे नीचे वाले वैमानिक देवों में पैदा होते हैं तब उन्हें नीचे की आयु से कुछ अधिक आयु प्राप्त होती हैं, घातायुष्क कहते हैं।

प्रश्न109.लौकान्तिक देवों की आयु कितनी होती है ?

उत्तर - समस्त लौकान्तिक देवों की आयु आठ सागरोपम प्रमाण होती है, वहाँ जघन्यायु नहीं होती।

प्रश्न110. अकालमरण किसे कहते हैं ?

उत्तर - भुज्यमान (वर्तमान) आयु कर्म निषेकों का आयु कर्म के पूर्ण होने के पहले ही, बीच में विष, शस्त्रादिक का निमित्त पाकर झड़ जाना या समाप्त हो जाना अकालमरण (अपमृत्यु) कहलाती है।

प्रश्न111. अकालमरण किन-किन जीवों का नहीं होता?

उत्तर - उपपाद जन्म वाले देव और नारकियों का, तद्भव मोक्षगामी मनुष्यों का और उत्तरकुरु आदि भोगभूमि में उत्पन्न हुये पल्य आदि की असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य व तिर्यञ्चों का अकालमरण नहीं होता।

प्रश्न112. एकेन्द्रिय जीवों का त्रिलोक में कहाँ-कहाँ निवास है?

उत्तर - एकेन्द्रिय जीवों का त्रिलोक में सर्वत्र निवास है ।

प्रश्न113. द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीव त्रिलोक में कहाँ रहते हैं?

उत्तर - द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीव त्रिलोक में स्थित एक राजू चौड़ी, एक राजू मोटी एवं कुछ कम तेरह राजू ऊँची त्रस नाड़ी में रहते हैं।

प्रश्न114.तिर्यञ्चगति संबंधी आयु कितनी होती है उसका प्रमाण बतलाइये?

उत्तर - तिर्यञ्च गति सम्बन्धी आयु -

संकेत - 1 पूर्वांग = 8400,000 वर्ष 1 पूर्व = 70560000000000 वर्ष

क्र.म.	मार्गणा	विशेष	आयु		क्र.म.	मार्गणा	विशेष	आयु	
	एकेन्द्रिय		जघन्य	उत्कृष्ट		**पंचेन्द्रिय**		जघन्य	उत्कृष्ट
1.	पृथिवी कायिक	शुद्ध	सर्वत्र अन्तर्मुहूर्त	12000 वर्ष	10.	जलचर	मत्स्यादि	सर्वत्र अन्तर्मुहूर्त	1 कोटि पूर्व
2.	'' ''	खर		22000 वर्ष	11.	परिसर्ग	गोह,नेवला		9 पूर्वांग
3.	अप्. ''			7000 वर्ष			सरी, सृपादि		
4.	तेज ''			3 दिन रात	12.	उरग	सर्प		42000 वर्ष
5.	वायु ''			3000 वर्ष	13.	पक्षी	कर्म भूमिज		72000 वर्ष
6.	वनस्पति साधारण			10000 वर्ष			भैरूंड आदि		
	विकलेन्द्रिय				14.	चौपाये	कर्म भूमिज		1 कोटि पूर्व
7.	द्वीन्द्रिय			12 वर्ष	15.	असंज्ञी पंचेन्द्रिय	'' ''		1 कोटि पूर्व
8.	त्रीन्द्रिय			49 दिन रात		**भोग भूमिज**			
9.	चतुरिन्द्रिय			6 महीने	16.	उत्तम भोग भूमिज	देवकुरू-उत्तर कुरू	2 पल्य +1 समय	3 पल्य
					17.	मध्यम ''	हरि व रम्यक् क्षेत्र	1 पल्य +1 समय	2 पल्य
					18.	जघन्य ''	हैमवत-हैरण्यवत्	1कोटिपूर्व +1 समय	1 पल्य
					19.	कुभोग भूमिज	अन्तर्द्वीप	1कोटिपूर्व +1 समय	1 पल्य

प्रश्न115. वह कौन-सा महान् क्षण होता है, जिस समय तीनों लोकों के जीवों को एक साथ एक समय के लिए महाशान्ति (सुख) का अनुभव होता है?

उत्तर - जिस समय लोक कल्याण (उद्धार) हेतु तीर्थङ्कर प्रभु का जन्म होता है, उस समय क्षण भर के लिए तीनों लोकों में स्थित जीवों को महाशान्ति (सुख) का अनुभव होता है।

जम्बूद्वीप

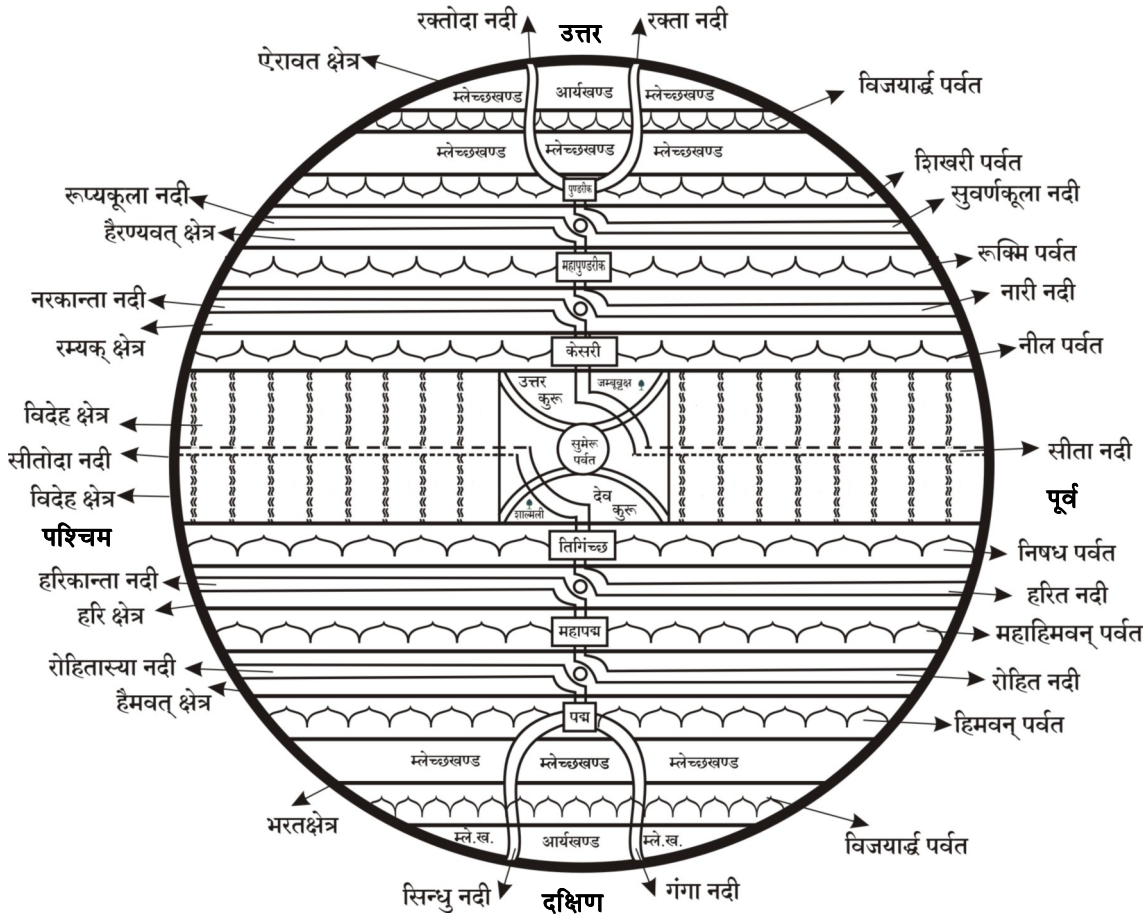
रक्तोदा नदी
उत्तर
रक्ता नदी
ऐरावत क्षेत्र
म्लेच्छखण्ड
आर्यखण्ड
म्लेच्छखण्ड
विजयार्द्ध पर्वत
म्लेच्छखण्ड
म्लेच्छखण्ड
म्लेच्छखण्ड
शिखरी पर्वत
रूप्यकूला नदी
पुण्डरीक
सुवर्णकूला नदी
हैरण्यवत् क्षेत्र
महापुण्डरीक
रूक्मि पर्वत
नरकान्ता नदी
नारी नदी
रम्यक् क्षेत्र
केसरी
नील पर्वत
उत्तर कुरू
जम्बुवृक्ष
विदेह क्षेत्र
सीता नदी
सीतोदा नदी
सुमेरू पर्वत
विदेह क्षेत्र
देव कुरू
शाल्मली
पूर्व
पश्चिम
तिगिंच्छ
निषध पर्वत
हरिकान्ता नदी
हरित नदी
हरि क्षेत्र
महापद्म
महाहिमवन् पर्वत
रोहितास्या नदी
रोहित नदी
हैमवत् क्षेत्र
पद्म
हिमवन् पर्वत
म्लेच्छखण्ड
म्लेच्छखण्ड
म्लेच्छखण्ड
भरतक्षेत्र
म्ले.ख.
आर्यखण्ड
म्ले.ख.
विजयार्द्ध पर्वत
सिन्धु नदी
दक्षिण
गंगा नदी

तीन लोक

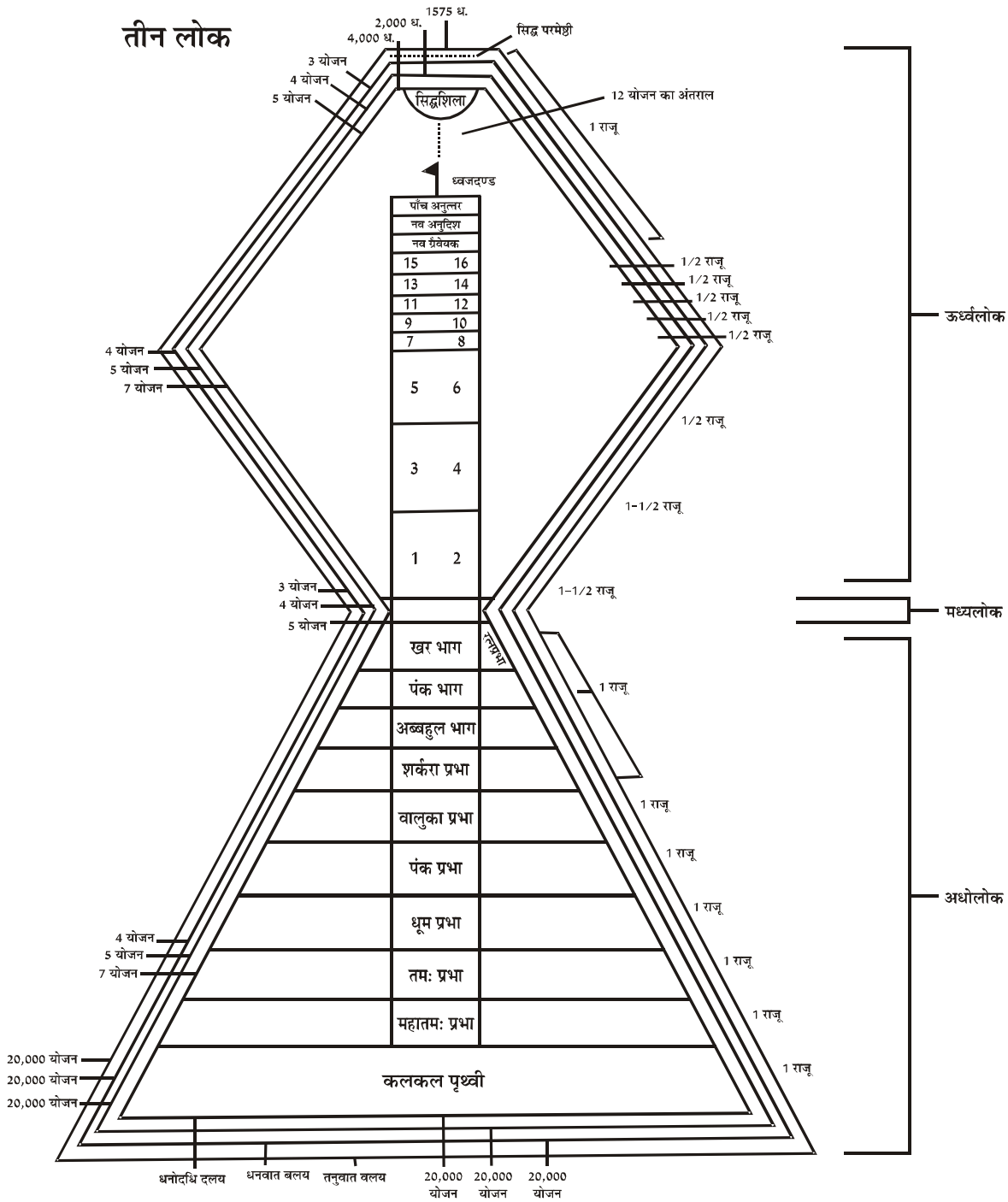
तीन लोक
1575 ध.
2,000 ध.
4,000 ध.
सिद्ध परमेष्ठी
3 योजन
4 योजन
5 योजन
सिद्धशिला
12 योजन का अंतराल
1 राजू
ध्वजदण्ड
पाँच अनुत्तर
नव अनुदिश
नव ग्रैवेयक
15 16
13 14
11 12
9 10
7 8
5 6
3 4
1 2
1/2 राजू
1/2 राजू
1/2 राजू
1/2 राजू
1/2 राजू
4 योजन
5 योजन
7 योजन
1/2 राजू
1-1/2 राजू
3 योजन
4 योजन
5 योजन
1-1/2 राजू
खर भाग
रत्नप्रभा
पंक भाग
अब्बहुल भाग
शर्करा प्रभा
वालुका प्रभा
पंक प्रभा
धूम प्रभा
तमः प्रभा
महातमः प्रभा
1 राजू
1 राजू
1 राजू
1 राजू
1 राजू
1 राजू
4 योजन
5 योजन
7 योजन
कलकल पृथ्वी
20,000 योजन
20,000 योजन
20,000 योजन
धनोदधि वलय
धनवात वलय
तनुवात वलय
20,000 योजन
20,000 योजन
20,000 योजन
ऊर्ध्वलोक
मध्यलोक
अधोलोक

अध्याय 14.
नवधा भक्ति माहात्म्य
(दान विधि)

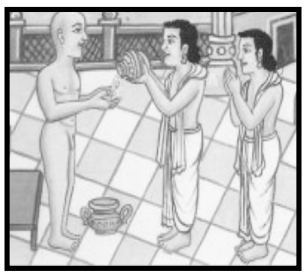

रत्नत्रय रूपी गुणों के धारक गुणी की सेवा भक्ति किये बिना भव्यों को सद्गुणों की प्राप्ति होना बड़ा दुर्लभ माना जाता है, अतः भगवान महावीर के मार्ग में वैय्यावृत्ति या भक्ति सेवा को बड़ा महत्त्व दिया गया है। धर्मी की वैय्यावृत्ति करने से धर्मी की तपस्या में वृद्धि के साथ-साथ धर्मी के माध्यम से धर्म की परम्परा चलती है, क्योंकि **'न धर्मो धार्मिकैर्विना'** धर्मी के बिना धर्म नहीं होता ऐसा शास्त्रों में कहा गया है। मुनि, आर्यिका, श्रावक व श्राविका इन धर्मी आत्माओं की सेवा और मुनियों की नवधाभक्ति करने से भव्यों को उनके सदृश गुणों की प्राप्ति और कर्मों की निर्जरा एवं पुण्य का सम्पादन तथा परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है। इस निमित्त से यहाँ चौदहवें अध्याय में 'नवधा भक्ति माहात्म्य' का कथन किया है।

प्रश्न 1. नवधाभक्ति किसे कहते हैं ?

उत्तर - श्रावकों के आहार दान द्वारा मुनियों की वैय्यावृत्ति करते समय जो नव भक्तियाँ की जाती हैं उसे नवधाभक्ति कहते हैं।

प्रश्न 2. आहार के समय मुनिवर की श्रावकों द्वारा की जाने वाली नवधा भक्तियों के नाम बतलाते हुये उनके संक्षेप में अर्थ बतलाइये ?

उत्तर - श्रावकों द्वारा करने योग्य मुनिवर की नवधा भक्तियाँ -

1. **पड़िगाहन**-मुनि के आहार हेतु द्वारापेक्षण करते हुये आह्वान, प्रतिग्रहण, प्रदक्षिणा, मन, वचन, और काय शुद्धि कथन के साथ गृह प्रवेश कराना ।
2. **उच्चासन**-लकड़ी के उच्चासन पर बिठाना ।
3. **पाद प्रक्षालन**-पैर धोकर चरणोदक लेना ।
4. **पूजन**-अष्ट मंगल द्रव्य से पूजन करना ।
   (साधु के सामने आहार के समय चौके में किसी भी निमित्त से अग्नि जलाना आदि आरम्भ क्रिया नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से अंतराय का प्रसंग उपस्थित हो जाता है।)
5. **प्रणाम** - बैठकर नमोऽस्तु करना ।

6. **मन शुद्धि** - मन शुद्ध रखते हुये मन शुद्धि बोलना ।
   (जैन धर्म के नियम से सहित होना अर्थात् सप्त व्यसन त्याग, रात्रि भोजन त्याग, बिना छना जल पीने का त्याग और वीतराग देव-शास्त्र-गुरुपर अटूट श्रद्धा करना मन शुद्धि कहलाती है।)
7. **वचन शुद्धि** - शुद्ध एवं सत्य वचनों के साथ वचन शुद्धि बोलना।
8. **काय शुद्धि** - शरीर एवं वस्त्रों की शुद्धि के साथ काय शुद्धि बोलना।
9. **आहार शुद्धि** - शुद्ध (प्रासुक, पवित्र) आहार के साथ आहार शुद्धि बोलना।
   जैसे कि कहा है -

   पडिगहमुच्चट्ठाणं, पादोदयमच्चणं च पणमं च ।
   मणवयणकायसुद्धी, एसणसुद्धी य णवविहं पुण्णं ॥(र.क.श्रा.टी.)

प्रश्न 3. दान का लक्षण क्या है ?

उत्तर - ''अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं'' ॥त.सू.॥

अपने और पर के उपकार के लिए धन आदिक द्रव्य का त्याग करना दान कहलाता है।

प्रश्न 4. दान के प्रकारों के नाम एवं उनका संक्षेप में अर्थ बतलाइए ?

उत्तर - दान के चार प्रकार हैं-

1. **आहार दान** - शुद्ध प्रासुक खाद्यादिक चार प्रकार का आहार देना ।
2. **औषध दान** - रोग उपशमन करने हेतु शुद्ध प्रासुक औषध देना ।
3. **उपकरण दान** - उपकार हेतु पिच्छिका, शास्त्र, कमण्डलादिक निर्दोष धर्मोपकरण देना ।
4. **आवास दान** - वीतरागता और ध्यान की वृद्धि कराने वाले उचित प्रासुक स्थान का प्रदान करना।
   जैसा कहा है कि -

   आहारौषधयोरप्युपकरणावासयोश्च दानेन।
   वैयावृत्यं ब्रुवते, चतुरात्मत्वेन चतुरस्त्राः ॥117॥ (र. श्रा.)

   अन्वयार्थ :- (चतुरस्त्राः) चार ज्ञानधारी गणधरदेव **(आहारौषधयोः)** आहार, औषधि **(च)** और **(उपकरणा वासयोःअपि)** उपकरण तथा आवास के भी **(दानेन)** दान से **(वैय्यावृत्यं)** वैय्यावृत्य को **(चतुरात्मत्वेन)** चार प्रकार का **(ब्रुवते)** कहते हैं।

प्रश्न 5. दाता (दान देने वाला) किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो सात गुणों के साथ नवधाभक्ति करता है, वह दाता कहलाता है।

प्रश्न 6. दाता के सात गुण कौन से हैं ? उन गुणों के नाम एवं उनके संक्षेप में अर्थ बतलाइए।

उत्तर -

1. **श्रद्धा**-पात्र (दान ग्रहण करने वाले) के प्रति अटूट श्रद्धा होना ।
2. **संतोष**-पात्र के लाभ, अलाभ आदि प्रसंगों में संतोष धारण होना।(पात्र लाभ नहीं होने पर या अन्तराय आ जाने पर अति खेद खिन्न न होकर कर्म फल का चिन्तन करना।)

3. **भक्ति**-पात्र की पूर्ण भक्ति करना।
4. **विज्ञान**-आहारादिक दान के प्रसंग में प्रासुक-अप्रासुक, हितकर-अहितकर, शुद्ध-अशुद्ध का विवेक रखना।
5. **अलुब्धता**-दान के समय लोभ (द्रव्य बचाने का भाव)नहीं रखना।
6. **क्षमा**-अंतराय, असावधानी आदिक हो जाने पर पात्र या अन्य दाताओं को क्षमा करना, क्रोध नहीं करना।
7. **सत्य**-दान देते समय सत्यता, वास्तविकता का व्यवहार करना।

जैसा कि कहा है -

श्रद्धा तुष्टिर्भक्तिर्विज्ञानमलुब्धता क्षमा सत्यं ।
यस्यैते सप्तगुणास्तं दातारं प्रशंसन्ति ॥ (र.क.टी.)

प्रश्न 7. सत्पात्रों को दान देने वाले दाता को नवधाभक्ति, सात गुणों के साथ और कौन-सी विशेष शुद्धियों से सहित होना आवश्यक है ?

उत्तर - निम्नलिखित तीन शुद्धियों से सहित होना आवश्यक है -

(1) कुल शुद्धि - दाता का कुल शुद्ध (निष्कलंक, पवित्र) होना चाहिए ।

(2) आचार शुद्धि -

1. सप्त व्यसन त्याग-जुआ खेलना, चोरी करना, शिकार करना, माँस सेवन, शराब पीना, परस्त्री सेवन और वेश्यागमन इनका त्याग करना।
2. निर्माल्य वस्तु का त्याग-पूजन या जिनालय आदि आयतनों के लिए समर्पित वस्तु के सेवन का त्याग।
3. नशीली वस्तु का त्याग-तम्बाखू, गाँजा, अफीम, बीड़ी, सिगरेट आदि वस्तुओं के सेवन का त्याग।

(3) शारीरिक शुद्धि-स्नानादिक कर शुद्ध वस्त्र धारण करना, अंगभंग से रहित शरीर एवं राध रुधिरादिक को झराने वाली कोई बीमारी नहीं होना शारीरिक शुद्धि है ।

प्रश्न 8. दान किसको दिया जाता है ?

उत्तर - दान पात्र को दिया जाता है।

प्रश्न 9. पात्र का लक्षण क्या है ?

उत्तर - सम्यग्दर्शनादिक गुणों से जो सम्पन्न (सहित) होता है, उसे पात्र कहते हैं।

प्रश्न 10. पात्र के कितने भेद हैं ? उनके नाम एवं संक्षेप में उनका अर्थ बतलाइए ।

उत्तर - पात्र के तीन भेद हैं-उत्तम पात्र, मध्यम पात्र, जघन्य पात्र।

1. **उत्तम पात्र**-अहिंसादिक महाव्रतधारी दिगम्बर मुनि उत्तम पात्र कहलाते हैं।
2. **मध्यम पात्र**-आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक और क्षुल्लिका तथा प्रतिमाधारी (व्रती) श्रावक मध्यम पात्र कहलाते हैं।

3. **जघन्य पात्र**-सम्यग्दर्शन के पच्चीस मल दोषों से रहित सच्चे-वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु का भक्त सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र कहलाता है।

प्रश्न 11. कुपात्र किसे कहते हैं ?

उत्तर - सरागी देवादिक का भक्त मिथ्यादृष्टि, कुलिङ्गी जीव अथवा व्रत सहित होकर भी मिथ्यादृष्टि जीव कुपात्र कहलाता है ।

प्रश्न 12. अपात्र किसे कहते हैं?

उत्तर - अव्रती मिथ्यादृष्टि अपात्र कहलाता है ।

प्रश्न 13. पात्र दान का फल क्या है ?

उत्तर - पात्र को दान देने वाला सम्यग्दृष्टि जीव स्वर्ग की अथवा मुनि बनकर मोक्ष की प्राप्ति करता है। और मिथ्यादृष्टि जीव भोगभूमि की प्राप्ति करता है।

प्रश्न 14. कुपात्र दान का फल क्या है ?

उत्तर - कुपात्र दान से कुभोगभूमि आदि प्राप्त होती है।

प्रश्न 15. अपात्र दान का फल क्या है ?

उत्तर - अपात्र दान का फल दुर्गति की प्राप्ति है ।

प्रश्न 16. पात्र को दान देते समय व्यक्ति को क्या अपेक्षा रखना चाहिए ?

उत्तर -
1. पात्र की तपस्या में वृद्धि होवे।
2. पात्र को निरोगता की प्राप्ति होवे।
3. मुझे सम्यग्दर्शनादिक गुणों की प्राप्ति होवे।

प्रश्न 17. पात्र को दान देते समय कौन-सी अपेक्षाएँ नहीं रखना चाहिए ?

उत्तर -
1. कोई भी प्रतिदान (दान के बदले में कोई वस्तु) की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए ।
2. कोई भी धन, वैभव, मन्त्र, तन्त्र और स्त्री पुत्रादिक की प्राप्ति की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए ।
3. कोई भी नाम, ख्याति आदि की अपेक्षा नहीं रखना चाहिए ।(क्योंकि सत्पात्र दान में पुण्य है और पुण्य से सभी वस्तुएँ स्वयमेव मिलना सुलभ हैं)

प्रश्न 18. आहार दान के समय शुद्ध वस्त्रों की आवश्यकता क्यों है ?

उत्तर - क्योंकि अशुद्ध वस्त्रों में अनेक जीवाणुओं की उत्पत्ति हो जाती है। वे जीवाणु आहार आदिक को अशुद्ध बना देते हैं जैसे कि आपरेशन हाल में जाने के लिए डाक्टरों को शुद्ध वस्त्र पहनकर जाना अनिवार्य होता है वैसे ही धर्म क्षेत्र में शुद्ध वस्त्रों को पहनना अनिवार्य या आवश्यक है ।

प्रश्न 19. नवधा भक्तियों के करने का फल क्या है ?

उत्तर - आचार्य परमेष्ठी ने रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहा है कि -

उच्चैर्गोत्रं प्रणतेर्भोगो दानादुपासनात्पूजा।
भक्तेः सुन्दररूपं स्तवनात्कीर्तिस्तपोनिधिषु ॥115॥

अन्वयार्थ :- (**तपोनिधिषु**) तप के भण्डार स्वरूप मुनियों को (**प्रणतेः**) प्रणाम करने से

(**उच्चैर्गोत्रं**) उच्च गोत्र (**दानात्**) आहारादि दान देने से (**भोगः**) भोग, (**उपासनात्**) उपासना करने से (**पूजा**) सम्मान, (**भक्तेः**) भक्ति करने से (**सुन्दररूपं**) सुन्दर रूप और (**स्तवनात्**) स्तुति करने से (**कीर्तिः**) सुयश (**प्राप्यते**) प्राप्त किया जाता है।

भावार्थ-

1. तप के निधि स्वरूप मुनियों को नमस्कार करने से लोक में उच्च गोत्र की प्राप्ति होती है ।
2. मुनियों को आहार इत्यादिक का दान देने से उत्तम भोगों की प्राप्ति होती है ।
3. मुनियों का पड़िगाहन आदि करने से लोक में सम्मान की प्राप्ति होती है ।
4. मुनियों की भक्ति करने से सुन्दर रूप की प्राप्ति होती है ।
5. मुनियों की स्तुति करने से लोक में सुयश की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न 20. इतना थोड़ा-सा दान इतने बड़े विशिष्ट फल को कैसे प्रदान करता है?

उत्तर - कहा गया है कि -

क्षितिगतमिव वटबीजं, पात्रगतं दानमल्पमपि काले।
फलतिच्छायाविभवं, बहुफलमिष्टं शरीरभृताम् ॥116॥ (र.क.श्रा.)

अन्वयार्थ :- (**काले**) उचित समय में (**पात्रगतं**) योग्य पात्र के लिए दिया हुआ (**अल्पमपि**) थोड़ा भी (**दानं**) दान (**क्षितिगतं**) उत्तम पृथ्वी में पड़े हुए (**वटबीजमिव**) वटवृक्ष के बीज के समान (**शरीरभृताम्**) प्राणियों के (**छायाविभवं**) माहात्म्य और वैभव से युक्त, पक्ष में छाया की प्रचुरता से सहित (**बहु**) बहुत भारी (**इष्टं**) अभिलषित (**फलं**) फल को (**फलति**) देता है।

भावार्थ-सत्पात्र के लिए योग्य काल में दिया हुआ थोड़ा-सा दान बहुत बड़े फल को देता है जैसे-योग्य भूमि में ठीक समय में डाला गया एक छोटा-सा बट बीज आगे जाकर अच्छी छाया से युक्त बहुत भारी फल को प्रदान करता है ।

प्रश्न 21. युग के आदि में जाति स्मरण से नवधाभक्ति को जानकर प्रथम तीर्थङ्कर आदिनाथ मुनीश्वर को सबसे प्रथम आहार किसने दिया था?

उत्तर - 'राजा श्रेयांस' ने दिया था ।

प्रश्न 22. ऐसे कौन से महापुरुष थे जिन्होंने जंगल में अपने परिवार के साथ चारण ऋद्धिधारक गुप्ति और सुगुप्ति नामक दो मुनियों को भक्ति पूर्वक आहार दान देकर नवधा भक्ति के माहात्म्य से पञ्चाश्चर्य प्राप्त किये थे?

उत्तर - ऐसे महापुरुष थे 'श्री रामचन्द्रजी' ।

प्रश्न 23. वह कौन-सा प्राणी था जिससे जंगल में दो मुनियों के आहार दान को देखते हुये आहार दान की अनुमोदना की थी तथा उन मुनियों के गंधोदक में लोटने से (पड़ जाने से) जिसके पंख स्वर्ण जैसे वर्ण के हो गये थे एवं जिसने अंत में स्वर्ग को प्राप्त किया था?

उत्तर - वह प्राणी था 'जटायु' (गिद्ध) पक्षी।

अध्याय 15.
समाधिमरण माहात्म्य
(सल्लेखना विधि)

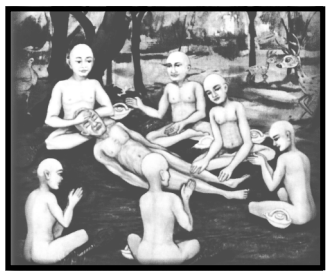

भगवान महावीर का मार्ग मरने की कला सिखलाता है। जिसने एक बार भी इस उत्तम मरने की कला अर्थात् सल्लेखना-समाधिमरण का ज्ञान कर और विधिवत् समाधिमरण को धारण किया तो ''उक्कट्ठेण दो तिण्णि भव गहणाणि, जहण्णेण सत्तट्ठ भव गहणाणि'' उत्कृष्ट से दो-तीन भवों में या जघन्य से सात-आठ भवों में मोक्ष का भाजक होता है। इस कारण मरण के भेद उपभेदादिक बतलाते हुए इस अध्याय में 'समाधिमरण माहात्म्य' को प्रकट किया गया है।

प्रश्न 1. समाधिमरण किसे कहते हैं?

उत्तर - सल्लेखना के साथ होने वाले मरण को समाधिमरण कहते हैं।

प्रश्न 2. सल्लेखना किसे कहते हैं?

उत्तर - कषाय एवं शरीर के कृश करने को सल्लेखना कहते हैं।

प्रश्न 3. सल्लेखना कब धारण की जाती है?

उत्तर - सल्लेखना; प्रतिकार रहित उपसर्ग, दुष्काल, बुढ़ापा और रोग के उपस्थित होने पर धारण की जाती है।

प्रश्न 4. सल्लेखना क्यों धारण करते हैं?

उत्तर - रत्नत्रय धर्म की सुरक्षा एवं आत्मोद्धार के लिए सल्लेखना धारण करते हैं। जैसे कि-मकान इत्यादिक में अग्नि लग जाने पर पहले तो लोग उसे बुझाने का प्रयास करते हैं,लेकिन जब बुझाना अशक्य होता है तब उस मकान आदि में रखे हुये बहुमूल्य रत्न, धन इत्यादिक को निकाल कर उस मकान आदि को छोड़ दिया जाता है; वैसे ही उपसर्ग, रोग इत्यादिक के उपस्थित होने पर जब उनसे बचना मुश्किल होता है तब रत्नत्रय धर्म की सुरक्षा करते हुये अर्थात् उसमें (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र में) कोई कमी न करते हुये सल्लेखना को धारण कर निर्ममता से शरीर का त्याग कर दिया जाता है इसी बात को श्लोक द्वारा रत्नकरण्डकश्रावकाचार में कहा गया है कि -

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च निःप्रतीकारे।
धर्माय तनुविमोचनमाहुः सल्लेखनामार्याः ॥122॥

अन्वयार्थ :- (**आर्याः**) गणधरादिक देव (**निःप्रतिकारे**) प्रतिकार रहित (**उपसर्गे**) उपसर्ग (**दुर्भिक्षे**) दुष्काल (**जरसि**) बुढ़ापा (**च**) और (**रुजायाम्**) रोग होने पर (**धर्माय**)

धर्म के लिए (**तनुविमोचनम्**) शरीर के छोड़ने को (**सल्लेखनाम्**) सल्लेखना (**आहुः**) कहते हैं।

प्रश्न 5. सल्लेखना धारण करना किसका फल है ?

उत्तर - सल्लेखना धारण करना यह जीवन भर किये गये तप, त्याग एवं धर्म का फल है। जैसे विद्यार्थी के द्वारा किये गये विद्याध्ययन का फल परीक्षा होती है ।

कहा भी है -

अन्तःक्रियाधिकरणं, तपःफलं सकलदर्शिनः स्तुवते।
तस्माद्यावद्विभवं, समाधिमरणे प्रयतितव्यम् ॥123 ॥ (र.क.श्रा.)

अन्वयार्थ :- (**यस्मात्**) क्योंकि (**सकलदर्शिनः**) सर्वज्ञदेव (**अन्तःक्रिया-धिकरणम्**) अन्त समय समाधिमरणस्वरूप सल्लेखना को (**तपःफलं**) तप का फल (**स्तुवते**) कहते हैं (**तस्मात्**) इसलिए (**यावद्विभवं**) यथाशक्ति (**समाधिमरणे**) समाधिमरण के विषय में (**प्रयतितव्यं**) प्रयत्न करना चाहिए।

प्रश्न 6. सल्लेखना (समाधिमरण) आत्मघात नहीं है क्या ?

उत्तर - नहीं, आत्मा का घात तो उसे कहते हैं, जिसमें प्रमाद पूर्वक असावधानी से या असंयम के साथ विष आदि भक्षण कर प्राणों का वियोग किया जाता है। लेकिन राग-द्वेष के बिना जो प्रीति एवं उत्साहपूर्वक प्राणों का त्याग किया जाता है, वह सल्लेखना मानी गयी है। और इसी तरह के मरण को समाधिमरण या वीरमरण भी कहते हैं।

प्रश्न 7. सल्लेखना धारण करने की विधि क्या है ? संक्षेप में वर्णन कीजिए ।

उत्तर - सल्लेखना धारण करने वाले भव्य आत्मा को अपने परिजनों को क्षमा करके उन सभी से क्षमा माँगकर सच्चे वीतरागी गुरु की शरण स्वीकार करना चाहिए; ऐसे सच्चे गुरु के चरणों में मन-वचन-काय एवं कृत-कारित-अनुमोदना से किये गये जीवन भर के पापों की निर्मलचित्त एवं निश्छलता से आलोचना करनी चाहिए। तथा जीवनपर्यंत के लिए अहिंसा आदि महाव्रतों के साथ सल्लेखना ग्रहण करना चाहिए।

गुरुवर के निर्देशानुसार सल्लेखना की विधि को प्रारम्भ करके धैर्य और उत्साह के साथ क्रमशः आहार (कवलाहार) को छोड़कर दूध आदि स्निग्ध पेय को लेना चाहिए। फिर स्निग्ध पेय को छोड़कर स्निग्धता रहित छाँछ ग्रहण करना चाहिए तथा फिर कांजी-गर्म जल को बढ़ाना चाहिए और बाद में उसे भी छोड़कर शक्ति के अनुसार उपवासों को करते हुये पञ्च नमस्कार मन्त्र में मन लगाते हुये शरीर को छोड़ देना चाहिए ।

प्रश्न 8. सल्लेखना में भोजन के साथ-साथ और क्या-क्या छोड़ना चाहिए ?

उत्तर - सल्लेखना में भोजन के साथ-साथ-

1. अन्तरंग- बहिरंग परिग्रह से ममत्व का त्याग करना चाहिए ।
2. अन्य लोगों से प्रीति, मोह एवं बैर भाव का त्याग करना चाहिए ।
3. शोक तथा भूख, प्यासादिक के भय का त्याग करना चाहिए ।
4. अधिक जीने और शीघ्र मरने की इच्छा का त्याग करना चाहिए ।

5. आगामी इन्द्रिय भोगों की आकांक्षा रूप निदान का त्याग करना चाहिए।

प्रश्न 9. सल्लेखना, क्या केवल मुनि (महाव्रती) ही ले सकते हैं या श्रावक भी ?

उत्तर - जिसके अन्दर मुनि (महाव्रती) बनने की सामर्थ्य नहीं ऐसे अणुव्रतादिक के धारक श्रावक भी विधिपूर्वक सल्लेखना ग्रहण कर सकते हैं।

प्रश्न 10. मरण कितने प्रकार के होते हैं ? उनके नाम एवं अर्थ बतलाइए ।

उत्तर - मरण; च्युत, च्यावित और त्यक्त के भेद से तीन प्रकार के होते हैं।

1. **च्युत मरण** - आयु कर्म के समाप्त हो जाने पर जो शरीर स्वतः छूट जाता है, उसे च्युत मरण कहते हैं।
2. **च्यावित मरण**-आयु कर्म के पूर्ण न होने के पहले विष, वेदना, रक्तक्षय, भय, शस्त्र ग्रहण, संक्लेष, आहार निरोध तथा श्वास के निरोध से जो असमय में प्राणों का घात करना है, वह च्यावित मरण है।
3. **त्यक्त मरण**-जिनका प्रतीकार न किया जा सके ऐसे उपसर्ग या रोगादिक के आने पर अपने रत्नत्रय धर्म की सुरक्षा के लिए जो सल्लेखना पूर्वक शरीर का त्याग किया जाता है, उसे त्यक्त मरण कहते हैं।

प्रश्न 11. त्यक्त मरण के कितने भेद हैं एवं उनके अर्थ बतलाइए ?

उत्तर - त्यक्त मरण के भक्त प्रत्याख्यान, इंगनी मरण और प्रायोपगमन संन्यास के भेद से तीन भेद हैं।

1. **भक्त प्रत्याख्यान**-जिसमें आहार आदि का नियम या यम रूप से त्याग किया जाता है और अपने शरीर की वैय्यावृत्ति स्वयं कर सकते हैं एवं दूसरे से भी करा सकते हैं, उसे भक्त प्रत्याख्यान सल्लेखना मरण कहते हैं।
2. **इंगिनी मरण**-आहारादिक के त्याग के साथ जिसमें अपने शरीर की वैय्यावृत्ति स्वयं तो की जा सकती है लेकिन दूसरे से नहीं कराई जा सकती है, उसे इंगिनी मरण सल्लेखना कहते हैं।
3. **प्रायोपगमन सन्यास**-जिसमें आहारादिक के पूर्ण त्याग के साथ शरीर की वैय्यावृत्ति न तो स्वयं की जाती है और न दूसरों से करवाई जाती है तथा जिस आसन या मुद्रा में क्षपक सल्लेखना लेने वाला) स्थित हुआ है उसी आसन में या मुद्रा में रहते हुये शरीर का त्याग कर दिया जाता है, उसे प्रायोपगमन सन्यास मरण कहते हैं।

प्रश्न 12. मरण के दूसरे तरह के भेद कौन से हैं ?

उत्तर - मरण के दूसरे तरह के भेद-बालबाल मरण, बालमरण, बाल पण्डितमरण, पण्डितमरण और पण्डित-पण्डित मरण रूप हैं।

प्रश्न 13. ये बालबाल मरण आदि पाँच तरह के मरण किन-किन जीवों के होते हैं ?

उत्तर -
1. मिथ्यादृष्टि जीव का बाल-बाल मरण होता है ।
2. सम्यग्दृष्टि जीव का बाल मरण होता है ।
3. अणुव्रतादिक के धारक श्रावकों का बाल पण्डित मरण होता है ।

4. महाव्रतों के धारक दिगम्बर मुनियों का पण्डित मरण होता है ।
5. केवली भगवान का जो (शरीर और कर्म से मुक्त होने रूप) मरण होता है, उसे पण्डित-पण्डित मरण कहते हैं।

प्रश्न 14. यहाँ मरण के प्रकरण में जो बाल और पण्डित शब्द आया है उसका अर्थ क्या है ?

उत्तर - यहाँ मरण के प्रकरण में बाल का अर्थ अव्रती या अज्ञानीपना है, और पण्डित का अर्थ व्रती या ज्ञानीपना है। अणुव्रती के मरण के साथ बाल शब्द लगाने का तात्पर्य है कि वहाँ एकेन्द्रिय जीवों की हिंसा का अत्याग (अव्रत) पना पाया जाता है ।

प्रश्न 15. जिस त्यागी तपस्वी जीवन के अन्त में सल्लेखना का ग्रहण नहीं, उसका जीवन कैसा है ?

उत्तर - जिस प्रकार अच्छा अध्ययन करने वाला विद्यार्थी अंत में परीक्षा नहीं देता या परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाता है तो उसका सारा विद्याध्ययन निरर्थक हो जाता है। इसी तरह जैसे जीवन भर शस्त्र का अभ्यास करने वाला मनुष्य अगर युद्ध में शस्त्र चलाना चूक जाता है तो उसका सारा शस्त्राभ्यास निष्फल कहलाता है। उसी तरह जीवन पर्यंत त्याग, तपस्या करने वाला धर्मी अगर जीवन के अंत में सल्लेखना धारण नहीं करता तो उसका त्याग, तपस्यामय जीवन निष्फल कहा जाता है।

प्रश्न 16. सल्लेखना ग्रहण करने में उत्साह बढ़ाने हेतु कोई उत्तम शास्त्र का उपदेश बतलाइए ?

उत्तर - जैनाचार्य रचित मूलाचार ग्रन्थ में कहा गया है कि -

धीरेण वि मरिदव्वं, णिद्धीरेण वि अवश्य मरिदव्वं ।
जदि दोण्हि वि मरिदव्वं, वरं हि धीरत्तेण मरिदव्वं ॥ 100 ॥

अर्थ-धैर्यशाली का भी मरण होता है और धैर्य रहित वाले का भी अवश्य मरण होता है, जब दोनों का ही मरण होता है तब तो धैर्यशीलता (सल्लेखना) के साथ मरना सबसे श्रेष्ठ है।

प्रश्न 17. वह कौन-सा पक्षी था जिसकी महापुरुष रामचन्द्रजी ने णमोकार मन्त्र सुनाते-सुनाते सल्लेखना कराई एवं जिसे सल्लेखना के माहात्म्य से स्वर्ग की प्राप्ति हुयी ?

उत्तर - वह 'जटायु' नामक गिद्ध पक्षी था ।

प्रश्न 18. ऐसे महान् आचार्य कौन थे जिनके चरणों में सम्राट चन्द्रगुप्त ने दीक्षा धारण की थी तथा जिन्होंने अंत में श्रवणबेलगोला में (चन्द्रगिरि पर्वत पर) बनी गुफा में सल्लेखना ली थी ?

उत्तर - ऐसे महान् आचार्य थे 'श्री श्रुतकेवली भद्रबाहु स्वामी '।

प्रश्न 19. प्रायोपगमन संन्यास रूप सल्लेखना में स्थित वे कौन-से मुनि थे जिन्हें तीन दिन तक सियारनी खाती रही फिर भी वे अपने ध्यान-तप से विचलित नहीं हुये और समाधिमरण के माहात्म्य से जिन्हें सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र का सुख प्राप्त हुआ तथा आगे एक मनुष्य का भव प्राप्त कर जो (जैसे अनेक व्रती आत्माएँ सल्लेखना मरण द्वारा मोक्ष को प्राप्त हुयी हैं वैसे ही) मोक्ष (निर्वाण) सुख प्राप्त करेंगे ?

उत्तर - वे मुनि थे 'श्री सुकुमाल' स्वामी जी ।

अध्याय 16.
पर्व व्रत माहात्म्य

लोक में महाव्रती बनने के पूर्व जितने भी व्रत या अनुष्ठान किये जाते हैं, उनमें मुनि पद की साधना का ध्येय गर्भित होता है। क्योंकि मोक्ष की प्राप्ति मुनि बने बिना नहीं होती। और मुनि बनने के लिए एक भक्त (एकासन) की साधना एवं इन्द्रिय विषयों से विराम लेने की साधना निचली अवस्था में इन पर्व व्रतों के पालन के समय स्वतः हो जाया करती है। जिस कारण आगे मुनि बनने पर तपस्या में आकुल-व्याकुल परिणाम नहीं हो पाते। समता के साथ अंतराय, उपवास आदिक सहने की सहनशीलता आ जाती है। इसी तरह जो वर्तमान में साधु वेश नहीं धारण कर पाते उन्हें अपने आरम्भ-समारम्भ आदिक से अर्जित पापों को धोने के लिए ये पर्व व्रत बड़े कार्यकारी होते हैं। इनके पालन के समय भव्यात्मा लोग असंख्यात गुणी कर्मों की निर्जरा एवं अतिशय पुण्य का सम्पादन करते हुए कर्मों के क्षयोपशम हो जाने से आगे संयम के लेने में समर्थ हो जाते हैं। अतः यहाँ नियम व यम व्रत आदिक रूप से व्रतों की चर्या का महत्त्व बतलाते हुए सोलहवें अध्याय में 'पर्व व्रत माहात्म्य' नामक विषय पर प्रकाश डाला गया है।

प्रश्न 1. पर्व किसे कहते हैं?

उत्तर- जिस प्रकार ईख (गन्ना) के मध्य-मध्य में अनेक ईख (गन्ना) की उत्पत्ति के कारण रूप स्थान होते हैं। उसी तरह वर्ष एवं मासों के मध्य-मध्य में आने वाले जो किसी महान् त्यागी, संयमी महापुरुषों से सम्बन्धित या धर्मोत्पत्ति से सम्बन्धित घटना को याद कराते हुए अनेक सुखों की उत्पत्ति वृद्धि के कारण होते हैं, उन्हें पर्व कहते हैं।

प्रश्न 2. वह कौन-सा महापर्व है जिस पर्व में देवगण आठ दिनों तक नंदीश्वरद्वीप में जाकर अकृत्रिम बावन जिनालयों की पूजन करते हैं और यहाँ, श्रावकगण आहार आदिक के संयम का पालन करते हुए वीतराग भगवान की विशेष आराधना भक्ति में तथा मुनिजन वीतराग प्रभु की भक्ति में तन्मय होते हैं?

उत्तर- वह पर्व है 'अष्टाह्निका' महापर्व।

प्रश्न 3. अष्टाह्निका पर्व कब और कितने बार मनाया जाता है?

उत्तर- कार्तिक शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक।
फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक।
आषाढ़ शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक।
इस प्रकार यह पर्व इन समयों पर वर्ष में तीन बार मनाया जाता है।

प्रश्न 4. वह कौन-सा पर्व है जिसमें एक मास पर्यंत भव्यात्माओं द्वारा दर्शनविशुद्धि आदि भावनाएं भाते हुए एक भुक्ति या एक आहार और एक उपवास आदि नियमों के साथ-साथ वीतराग प्रभु की आराधना की जाती है।

उत्तर - वह पर्व है 'षोडशकारण पर्व'।

प्रश्न 5. षोडशकारण पर्व कब और कितने बार मनाया जाता है?

उत्तर - माघ कृष्णा एकम से फाल्गुन कृष्णा एकम तक।
चैत्र कृष्णा एकम से वैशाख कृष्णा एकम तक।
भाद्रपद कृष्णा एकम से आश्विन कृष्णा एकम तक।
इस प्रकार यह पर्व इन अवसरों पर वर्ष में तीन बार मनाया जाता है।

प्रश्न 6. वह कौन-सा पर्व है जिसमें धर्मीजन दस दिनों तक उत्तम क्षमादि दस धर्मों के गुणों का गान गाते हुए और दस उपवास या एक बार शुद्धाहार आदि नियमों के साथ-साथ दस धर्मों की प्राप्ति की भावना भाते हुए वीतराग जिनेन्द्र की महापूजा करते हैं?

उत्तर - वह पर्व है 'दशलक्षण पर्व'।

प्रश्न 7. दशलक्षण पर्व कब और कितने बार मनाया जाता है?

उत्तर - माघ शुक्ला पञ्चमी से माघ शुक्ला चतुर्दशी तक, चैत्र शुक्ला पञ्चमी से चैत्र शुक्ला चतुर्दशी तक भाद्रपद शुक्ला पञ्चमी से भाद्रपद शुक्ला चतुर्दशी तक। इस प्रकार यह दशलक्षण महापर्व इन मंगल अवसरों पर वर्ष में तीन बार मनाया जाता है।

प्रश्न 8. कार्तिक कृष्णा अमावस्या को मनाया जाने वाला वह कौन-सा उत्तम पर्व है जिस अवसर पर भगवान महावीर को मोक्षपद (मुक्ति लक्ष्मी) का लाभ प्राप्त हुआ था एवं भगवान महावीर के मोक्ष जाने के बारह घण्टे बाद इन्द्रभूति (गौतम) गणधर परमेष्ठी को केवलज्ञान की (अनन्त चतुष्टय लक्ष्मी की) प्राप्ति हुई थी तथा जिस दिन सभी श्रावकगण बड़े वैभव के साथ भगवान महावीर एवं गणधर परमेष्ठी की पूजन करते हैं?

उत्तर - वह उत्तम पर्व है 'दीपावली'।

प्रश्न 9. चैत्र शुक्ला त्रयोदशी को मनाया जाने वाला वह कौन-सा महत्त्वपूर्ण पर्व का दिन है जिस दिन अंतिम तीर्थङ्कर महावीर का अंतिम जन्म हुआ था और जिस सुअवसर पर पूरे देश में भगवान महावीर का, उनका अहिंसा संदेश गाते हुए रथोत्सव या विमानोत्सव किया जाता है?

उत्तर - वह महत्त्वपूर्ण पर्व का दिन है 'महावीर जयन्ती'।

प्रश्न 10. वैशाख शुक्ला तृतीया को मनाया जाने वाला वह कौन-सा महा आनन्द का पर्व है, जिस दिन तीर्थङ्कर आदिनाथ मुनीश्वर को प्रथम आहारदान (इक्षुरस का आहारदान) देने का सौभाग्य राजा श्रेयांस ने अपने गृह में प्राप्त किया था और जिस शुभ दिन आज लोग आदिनाथ प्रभु की पूजन और दिगम्बर मुनियों को आवश्यक रूप से आहारदान देने की भावना पूर्ण करते हैं?

उत्तर – वह महा आनन्द का पर्व है 'अक्षय तृतीया'।

प्रश्न 11. भगवान महावीर के केवलज्ञान से सम्पन्न होने पर, समवसरण की रचना होने के छ्यासठ दिन बाद जिस दिन प्रथम बार उन वीर प्रभु की दिव्यध्वनि खिरी (निकली) थी, ऐसा वह जिनवाणी के गुणगान गाये जाने वाला श्रावण कृष्णा एकम को मनाये जाने वाला कौन-सा महान् पर्व का दिन है ?

उत्तर – वह महान् पर्व का दिन है 'वीर शासन जयन्ती'।

प्रश्न 12. श्रावण शुक्ला पूर्णिमा को मनाया जाने वाला ऐसा कौन-सा धर्म रक्षा का पर्व दिन है जिस दिन विष्णुकुमार मुनिराज से अकम्पनाचार्य आदि सात सौ मुनियों की रक्षा हुई थी तथा जिस दिन ऐसे महान् उन सात सौ मुनीश्वरों की विष्णुकुमार मुनि के साथ भव्य गण पूजन कर धर्म रक्षा का संकल्प करते हैं ?

उत्तर – ऐसा वह धर्म रक्षा का पर्व है – 'रक्षाबन्धन'।

प्रश्न 13. प्रत्येक मास में दो-दो बार आने वाले वे कौन से पर्व दिन हैं, जिन पर्व के दिनों में श्रावक मुनि संघ आदि उपवास अथवा एकाशन, अवमौदर्य, रसपरित्याग आदि के साथ विशेष पूजा, भक्ति आदि का अनुष्ठान करते हैं ?

उत्तर – वे पर्व दिन हैं 'अष्टमी' और 'चतुर्दशी'।

प्रश्न 14. व्रत की परिभाषा क्या है ?

उत्तर – व्रत की परिभाषा बतलाते हुए जैन शास्त्रों में कहा है कि –

संकल्पपूर्वकः सेव्यो नियमोऽशुभ कर्मणः ।
निवृत्तिर्वा व्रतं स्याद्वा प्रवृत्तिः शुभ कर्मणि ॥

अर्थ-सेवन करने योग्य विषयों में संकल्पपूर्वक नियम करना अथवा हिंसादि अशुभ कर्मों में संकल्पपूर्वक विरक्त होना अथवा पात्र दानादिक शुभ कर्मों में संकल्पपूर्वक प्रवृत्ति करना व्रत है।

प्रश्न 15. व्रत धारण की आवश्यकता क्यों है ?

उत्तर – क्योंकि परम्परानुसार सुना जाता है कि –

व्रतेन यो विना प्राणी, पशुरेव न संशयः।
योग्यायोग्यं न जानाति, भेदस्तत्र कुतो भवेत् ॥

अर्थात् व्रत रहित प्राणी निस्संदेह पशु के समान है। जिसे उचित-अनुचित का ज्ञान नहीं है, ऐसे मनुष्य और पशु में क्या भेद है ?

फलमेयस्से मोत्तूण देव-मणुएसु इंदिय सुक्खं ।
पच्छा पावइ मोक्खं थुणिज्जभागे सुरिं देहिं ॥

अर्थात्-व्रतों के पालन करने के फल से यह जीव देव और मनुष्यों में इन्द्रिय-जनित

सुख भोगकर, पश्चात् देवेन्द्रों से स्तुति किया जाता हुआ मोक्ष सुख को प्राप्त होता है।

प्रश्न 16. कर्मक्षय के कारण स्वरूप नित्य व्रत और नैमित्तिक व्रत का लक्षण किस प्रकार है?

उत्तर - 1. **नित्य व्रत** - पञ्च अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत तथा मुनियों के महाव्रतादिक नित्य प्रतिदिन पालन करने की अपेक्षा से नित्य व्रत कहलाते हैं।

2. **नैमित्तिक व्रत**- जो व्रत नित्यव्रत में कहे गये पञ्च अणुव्रतादिक में वृद्धि या विशुद्धि के कारण होते हुए किसी विशेष अवसर पर (तिथि या दिन पर) समय की सीमा को लेकर किए जाते हैं, वे नैमित्तिक व्रत कहलाते हैं।

प्रश्न 17. नैमित्तिक व्रत के कितने भेद हैं?

उत्तर - नैमित्तिक व्रत के मुख्यतः दो भेद हैं - 1. सावधि व्रत और 2. निरवधि व्रत ।

प्रश्न 18. सावधि और निरवधि व्रत के लक्षण एवं उदाहरण बतलाइए?

उत्तर - 1. **सावधि व्रत**-जिन व्रतों में आरम्भ और अंत करने की तिथि निश्चित रहती है तथा दिन संख्या भी निश्चित रहती है, वे सावधि व्रत कहलाते हैं। जैसे-षोडशकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय, अष्टाह्निक इत्यादि।

2. **निरवधि व्रत**-जिन व्रतों में दिन संख्या तो निश्चित की जा सकती है, लेकिन प्रारम्भ और अंत की तिथि निश्चित नहीं रहती, वे निरवधि व्रत कहलाते हैं। जैसे-चारित्रशुद्धि व्रत (बारह सौ चौंतीस व्रत), सिंहनिष्क्रीड़ित एवं भक्तामर व्रत इत्यादि।

प्रश्न 19. नियम व्रत और यम व्रत किसे कहते हैं?

उत्तर - 1. **नियम व्रत**- जो कुछ काल की सीमा तक या मर्यादा तक किये जाते हैं, वे नियम व्रत कहलाते हैं।

2. **यम व्रत**- जो व्रत आजीवन पालन किए जाते हैं वे यम व्रत कहलाते हैं अगर दशलक्षण आदि व्रत आजीवन तक पालन किए जाएं तो वे भी यम व्रत में गर्भित होंगे।

प्रश्न 20. व्रत का ग्रहण और निष्ठापन किसकी साक्षीपूर्वक करना चाहिए?

उत्तर - व्रत का ग्रहण और निष्ठापन या उद्यापन निर्ग्रन्थ मुनिवर की साक्षीपूर्वक करना चाहिए तथा सम्पूर्ण किए गए व्रत में जो अतिचार आदिक दोष लगे हों, उनकी शुद्धिकरण हेतु क्षमा भावनापूर्वक प्रायश्चित को अंगीकार करना चाहिए।

प्रश्न 21. नैमित्तिक व्रतों के ग्रहण करने की विधि क्या है और ऐसे व्रतों के ग्रहण करते समय क्या भावना भाना चाहिए?

उत्तर - व्रत ग्रहण करते समय श्रावकों को सर्वप्रथम जिनालय में जिनेन्द्र भगवान का दर्शन, पूजन कर, निर्ग्रन्थ मुनिवर के सामने या ऐसे गुरु के अभाव में जिनेन्द्र भगवान के सामने कोई उत्तम प्रासुक (अचित्त) नारियल, सुपाड़ी, बादाम आदि फल अत्यन्त विशुद्धि के साथ जाकर समर्पित करते

हुए अपने व्रत ग्रहण की याचना करना चाहिए और गुरु से अनुमति मिलने के पश्चात् गुरु के मंगल आशीर्वाद प्राप्ति की भावना पूर्वक निम्नलिखित प्रतिज्ञा बोलना चाहिए-

''अर्हत् - सिद्धाचार्योपाध्याय- सर्व साधु साक्षिकं सम्यक्त्व पूर्वकं, दृढ़व्रतं, सुव्रतं समारूढ़ं मे भवतु, मे भवतु, मे भवतु,'' नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु इस प्रकार बोलते हुए गुरु से आशीर्वाद प्राप्त कर नौ बार णमोकार मंत्र का जप करना चाहिए।

व्रत ग्रहणकर्ता को ऐसे उत्तम समय पर यह मंगल भावना करना चाहिए कि हे प्रभो! मेरा यह व्रत निश्चित सीमा तक निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न हो। इसके बाद बोलना चाहिए कि- **''दुक्खक्खओ, कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइ गमणं, समाहि मरणं, जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं''** अर्थात् मेरे दु:खों का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, सुगति गमन हो, समाधि मरण हो और जिनेन्द्र भगवान के उत्तम गुणों की प्राप्ति हो।

प्रश्न 22. ऊपर कहे गए प्रतिज्ञा वाक्य में ''सम्यक्त्वपूर्वक'' का अर्थ क्या है एवं उसे रखने या बोलने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर - ऊपर कहे गए अर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय... इत्यादि प्रतिज्ञा वाक्य में सम्यक्त्व पूर्वक का अर्थ सरागी देवी-देवता, कुगुरु आदिक की उपासना छोड़कर, सम्यग्दर्शन के पच्चीस मल दोषों से रहित, वीतराग देव-शास्त्र-गुरु की उपासना श्रद्धा रूप सम्यक्त्व को अंगीकार करते हुए व्रत का संकल्प करना चाहिए। क्योंकि **''नि:शल्यो व्रती''** ऐसा तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ में कहा गया है जिसका अर्थ है व्रती को शल्य से रहित होना चाहिए। शल्य के तीन भेद हैं माया शल्य, मिथ्यात्व शल्य और निदान शल्य। शल्य वह है जो सुई के समान आत्मा में कष्ट पहुँचाती है। जिसके साथ व्रती, सुखी निर्विकल्पी नहीं रह सकता है। अत: सम्यक्त्व धारण कर माया, मिथ्यात्व आदि शल्यों का त्याग करना चाहिए। इतना ही नहीं, और भी सुनिए कि-सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र में समीचीनता नहीं आती, चाहे वह ज्ञान ग्यारह अंग का क्यों न हो एवं चारित्र मुनि सदृश भी क्यों न हो। अत: ज्ञान और अपने व्रतों की समीचीनता (सम्यक्ता) बनाने के लिए अथवा ज्ञान और चारित्र का मिथ्यापन दूर करने के लिए सम्यक्त्व अवश्य ग्रहण करना चाहिए। (सम्यग्दर्शन का विशेष वर्णन 'सम्यग्दर्शन माहात्म्य' प्रकरण में किया गया है।)

प्रश्न 23. व्रत का पालन करते समय व्रती का आचरण कैसा होना चाहिए?

उत्तर - व्रत के साथ व्रती को निम्नलिखित क्रियाओं पर ध्यान देना अति आवश्यक है क्योंकि इनके बिना व्रत में निर्दोषपना नहीं आ सकता।

1. उपवास से सहित किए जाने वाले व्रत में निर्जल रहना चाहिए अर्थात् पानी भी नहीं पीना चाहिए और न कुल्ला करना चाहिए।
2. उपवास के पूर्व दिन ही मध्याह्न में या सायंकाल में भोजन के पश्चात् अच्छे ढंग से मुख

शुद्धि कर सूर्यास्त के पूर्व ही गुरु/भगवान के चरणों में व्रत ग्रहण कर लेना चाहिए।

3. जो व्रत, उपवासपूर्वक किया जाता है उसमें, धारणा अर्थात् उपवास के पूर्व दिन, उपवास के दिन और पारणा अर्थात् उपवास के दूसरे दिन ऐसे तीन दिन-रात तथा जो व्रत एकाशन पूर्वक किया जाता है, उसमें एकाशन के पूर्व दिन एवं एकाशन के दिन ऐसे दो दिन-रात अवश्य रूप से (स्वास्थ्य लाभ एवं मन उज्ज्वलता की दृष्टि से) ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।
4. उपवास पूर्वक अगर व्रत हो तो धारण के दिन सायंकाल में, उपवास के दिन प्रातः काल में, मध्याह्न काल में और सायंकाल में तथा पारणा के दिन प्रातःकाल में एवं इसी तरह अगर व्रत के दिन एकाशन हो तो एकाशन दिन में प्रातःकाल में, मध्याह्नकाल में, सायंकाल में और दूसरे दिन प्रातः काल में आत्मिक विशुद्धि हेतु सामायिक पाठ सहित पञ्च णमोकार मन्त्र की शक्त्यानुसार 3 या 5 माला फेरते हुए सामायिक करना चाहिए।
5. व्रत के दिन श्रावकों को भगवान की पूजा और आहार दान आदि के निमित्त प्रथम कुँए, झरने या नदी से लाए गए छने और प्रासुक किए गए उत्तम जल से शरीर आदिक को शुद्ध करना चाहिए।
6. शौच क्रिया हेतु भले दूर जाना पड़े लेकिन गुप्त स्थान पर जाना चाहिए तथा अवश्य रूप से अपने हाथ में पानी से भरा पात्र ले जाना चाहिए। वहाँ शुद्धीकरण कर निवास स्थान या धर्म स्थान के बाहर ही मिट्टी या कोई चूर्ण से कम-से-कम तीन बार हाथ शुद्ध कर, पैर मुखादिक साफ कर अंदर आना चाहिए।
7. आहारादिक के निमित्त नल के पानी का उपयोग न करें, क्योंकि उसमें जीव गालन की क्रिया का पालन नहीं होता अर्थात् मोटे दुहरे छन्ने से छाने गए पानी के छन्ने में स्थित जीवानी (जीवों) को पुनः उसी पूर्व स्थान पर पहुँचाना नहीं होता, जिस कारण अहिंसा रूपी मूल या प्रधान धर्म का पालन नहीं होता। इसके अलावा तालाब का पानी जो एक ही जगह भरा रहता है और सभी लोग जिसमें स्नान, वस्त्र शुद्धि आदि कार्य करते हैं, अतः अशुद्धता को प्राप्त अनेक रोगों की उत्पत्ति का कारण स्वरूप तालाब का जल जैनियों या विवेकियों को उपयोग करने योग्य नहीं।
8. व्रत ग्रहणकर्ता को पाउडर, क्रीम, नेल पालिस, लिपिस्टिक, रेशमी वस्त्र एवं चमड़ा आदिक हिंसक वस्तुओं का त्याग कर देना चाहिए।
9. व्रत के दिनों में श्रावकों को शारीरिक सुन्दरता रूप संस्कार की वृद्धि न करते हुए तथा अहिंसा की रक्षा हेतु दाढ़ी और सिरादिक के बालों को नहीं कटवाना चाहिए।
10. व्रत के दिन ब्रह्मचर्य व्रत के साथ फूल या फूलमालाओं का त्याग करना चाहिए। क्योंकि

पुष्प एक काम का बाण माना गया है और सचित् पुष्पों में त्रस जीवों की बाहुल्यता रहती है।

11. व्रत के दिन उस व्रत की या ब्रह्मचर्य व्रत की सुरक्षा हेतु और भावों की निर्मलता हेतु टी.वी. आदि के पाप चित्रों को नहीं देखना चाहिए।
12. व्रत भावना में उत्कृष्ट विशुद्धि बढ़ाने हेतु श्रावकों को भारी शृंगार एवं भड़कीले वस्त्रों को छोड़ना चाहिए। हो सके तो सफेद या पीले रंग के वस्त्रों का उपयोग कर सकते हैं।
13. व्रत के दिन लौकिक कथा या विकथा न कहना, न पढ़ना और न सुनना चाहिए।
14. व्रत के दिन श्रावकों को विधिवत् जिनेन्द्र भगवान का गन्धोदक ग्रहण करके प्रासुक (अचित्त) द्रव्यों से कम-से-कम तीन पूजन (देव-शास्त्र-गुरु, मूलनायक भगवान और व्रत सम्बन्धी) करना चाहिए तथा अन्त में शान्तिपाठ आदिक बोलना चाहिए।
15. अपने व्रत में, परिणामों की विशुद्धि हेतु व्रत में निश्चित किए मन्त्र की माला फेरना (जाप करना) चाहिए। (अपनी शक्त्यानुसार 1,3,5,11,21 इत्यादि) ।
16. व्रत के दिन ज्यादा-से-ज्यादा समय आरम्भ, परिग्रह, व्यापार एवं शृंगारादिक से दूर होकर स्वाध्याय, जप, स्तोत्र पठन आदि उत्तम कार्य करते हुए शान्त स्थान या जिनालय आदि प्रशस्त स्थान में बिताना चाहिए।
17. उपवास के दिन औषध आदिक का भी सेवन नहीं करना चाहिए।
18. एकाशन के दिन एक ही बार मर्यादा सहित शुद्ध खाद्य, स्वाद्य, लेह्य और पेय आहारों में से योग्य आहार ग्रहण करें। एक बार के अलावा दूसरी बार सुबह या सायंकाल में कोई भी पानी दूध, चाय, काफी आदिक पदार्थ ग्रहण न करें, अगर ग्रहण करते हैं तो वह एक भुक्ति नहीं रहती, एकाशन नियम खण्डित हो जाता है। हाँ अगर शक्ति नहीं है तो अपनी योग्यतानुसार ही गुरु के समक्ष व्रत ग्रहण की प्रतिज्ञा करें।
19. बाजार में तैयार किया गया या अजैनों के द्वारा तैयार किया गया आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए। क्योंकि जहाँ पैसों का लोभ एवं शुद्धाहार की विधि की अनभिज्ञता है वहाँ मर्यादा सहित व्रती के योग्य आहार की उपलब्धि नहीं हो सकती।
20. अगर एकाशन के दिन अचानक कोई व्याधि उत्पन्न हो जाए तो एक भुक्ति के समय ही देशी शुद्ध दवा का उपयोग कर सकते हैं। लेकिन त्रस जीवों की हिंसा से उत्पन्न दवाइयों का उपयोग नहीं करना चाहिए।
21. कम-से-कम एकाशन व्रत के दिन तो आहार सेवन के समय मौन व्रत का अवश्य रूप से पालन करना चाहिए।
22. इसी तरह आहार के प्रारम्भ एवं अंत के समय पञ्च णमोकार मन्त्र का जाप करना चाहिए।

23. व्रत के दिन प्रमाद से दूर होने के लिए, ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु और परिणामों की विशुद्धि के लिए लकड़ी का पाटा या चटाई का उपयोग करना चाहिए। बिस्तर, गद्दी आदिक का त्याग करना चाहिए।
24. लोक में अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, पञ्चमी और ग्यारस ये पञ्च पर्व तिथियां मानी गयी हैं अतः जिन व्रतों के लिए कोई तिथियां निश्चित नहीं हैं, उन व्रतों को ऐसी पञ्च पर्व रूपी उत्तम तिथियों में किया जा सकता है।
25. व्रत निष्ठापन के समय अपनी शक्त्यानुसार जैनतीर्थ क्षेत्र या अतिशयक्षेत्रों की वन्दना (यात्रा) अथवा विधान एवं सतपात्रों को उपकरण दान आदि कार्य भी उत्साह पूर्वक कर सकते हैं।
26. व्रत निष्ठापन (सम्पूर्णता) के समय या उद्यापन (समापन) के शुभ अवसर पर धर्म प्रभावना हेतु मण्डल विधान पूजा एवं जिनेन्द्र देव का रथोत्सव या विमानोत्सव भी उत्साहपूर्वक कर सकते हैं।

प्रश्न 24. प्रमाद से दूर होने के लिए एवं व्रतों में विशुद्धि बढ़ाने के लिए व्रत के दिन, व्रती की दिनचर्या कैसी होनी चाहिए?

उत्तर - दिन चर्या

सुबह 4 से 5 $^{1}/_{2}$ बजे तक-सुप्रभात स्तोत्र, पञ्च णमोकार मन्त्र जप और सामायिक पाठ-पठन इत्यादि। (अगर व्रती प्रतिमाधारी हैं तो उन्हें रात्रिक प्रतिक्रमण भी करना चाहिए अगर प्रतिमाधारी नहीं तो अपनी भावनानुसार, भक्ति प्रतिक्रमण कर सकते हैं)।

प्रातः काल- 6 से 7 $^{1}/_{2}$ बजे तक-वीतराग भगवान की पूजन, भक्ति करना चाहिए।

7 $^{1}/_{2}$ से 8 $^{1}/_{2}$ बजे तक - सम्यक् शास्त्र का स्वाध्याय करना चाहिए।

9 से 11 $^{1}/_{2}$ बजे तक आहार दान एवं आहार ग्रहण कर सकते हैं।

मध्याह्न - 12 से 1 बजे तक जप, सामायिक पाठ-पठन आदि।

1 से 3 बजे तक भक्तामर स्तोत्र आदि का पठन स्वाध्यायादि।

3 से 4 $^{1}/_{2}$ बजे तक गुरु प्रवचन, तत्त्व चर्चा आदि।

सायंकाल - 6 से 7 $^{1}/_{2}$ बजे तक जप सामायिक पाठ पठन (प्रतिमाधारी को दैवसिक प्रतिक्रमण भी) करना चाहिए।

7 $^{1}/_{2}$ से 10 बजे तक स्वाध्याय, वीतराग भक्ति पाठ आदि।

प्रश्न 25. हमारे आगम ग्रन्थों में सभी व्रतों के साथ ब्रह्मचर्य का पालन करना अति आवश्यक बतलाया गया है उसके निर्दोष परिपालन हेतु उसके कौन-कौन से सहयोगी नियमों का आवश्यक रूप से पालन करना चाहिए?

उत्तर - ब्रह्मचर्य व्रत के सहयोगी नियम -

1. जुआ, चोरी, शिकार, माँस, शराब, परस्त्री सेवन और वेश्यागमन इन सप्त व्यसनों का त्याग रूप नियम होना चाहिए।
2. रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिए।
3. कम-से-कम घर में छना जल पीने का नियम होना चाहिए।
4. कन्दमूल (आलू, प्याज, लहसुन, मूली, गाजर, शकरकंदादि) का त्याग करना चाहिए। क्योंकि इन कंदमूल वनस्पतियों में अनन्त जीवों का वास होने से ये अनन्तकाय वनस्पति कहलाती हैं और ये अनन्त जीवों के घात का कारण होने से तथा ये तामसिक होने से त्याज्य हैं।
5. नित्य वीतराग जिनेन्द्र देव का दर्शन करना चाहिए।
6. ब्रह्मचर्य व्रत वालों को मिथ्यात्व का अर्थात् सरागी देव-देवी, यक्ष-यक्षिणी की पूजा, आरती का त्याग करना चाहिए। क्योंकि यक्ष-यक्षिणी आदि देवी-देवता आगम में काय प्रवीचार (अब्रह्म) से सहित माने गए हैं।
7. टी.वी. (टेलीविजन), सिनेमा आदि पाप रूप चित्रों के देखने का त्याग करना चाहिए।
8. चमड़ा, रेशम, नेलपालिश, लिपिस्टिक, शैम्पो आदि हिंसक वस्तुओं का त्याग करना चाहिए।
9. ब्रह्मचर्य व्रत के दिनों या ब्रह्मचारी को काम के बाण रूप पुष्प या पुष्पमाला का त्याग करना चाहिए।

   (लवंग भी एक प्रासुक पुष्प है जो रागवर्धक नहीं एवं जीव राशि से रहित होने के कारण अचित्त है, अतः ऐसे प्रासुक अचित्त रूप लवंग पुष्प का उपयोग श्रावक लोग वीतरागी की पूजादि के निमित्त अवश्य कर सकते हैं।
10. स्त्रियों को पुरुषों से एवं पुरुषों को स्त्रियों से दूर शयन करना चाहिए।
11. ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा हेतु शयन करते समय सीधे, उल्टे शयन न करते हुए बायें करवट से शयन करना चाहिए एवं दाहिने करवट से उठना चाहिए। इससे स्वास्थ्य भी ठीक रहता है।
12. स्त्रियों से पुरुषों को एवं पुरुषों से स्त्रियों को ज्यादा वार्तालाप एवं हँसी-मजाक करने के त्याग रूप नियम होना चाहिए।
13. दूसरे परिवारों के विवाह के सम्बन्ध जुटाने का त्याग रूप नियम करना चाहिए। अपने परिवार के सदस्यों के विवाह का यहाँ निषेध नहीं समझना चाहिए और दूसरे परिवारों में विवाह के अवसर पर वहाँ जाकर भोजन करने का निषेध भी नहीं समझना चाहिए। लेकिन दूसरे परिवारों के बच्चों का विवाह यहाँ करो, वहाँ करो ऐसा कहना ब्रह्मचर्य व्रत के क्षेत्र में

उपयुक्त नहीं।

प्रश्न 26. व्रत के दिन तिथि सम्बन्धी कौन से विशेष नियम का ध्यान रखना चाहिए?

उत्तर - किसी निश्चित तिथि के अनुसार किए जाने वाले व्रतों को जिस दिन सूर्योदय से कम-से-कम 6 घटिका प्रमाण तिथि हो उसी तिथि के दिन व्रत करना चाहिए।

प्रश्न 27. घटिका का प्रमाण क्या है?

उत्तर - 24 मिनट की एक घटिका होती है और 6 घटिकाओं के तीन मुहूर्त होते हैं।

प्रश्न 28. शुद्धा और विद्धा तिथि का लक्षण क्या है?

उत्तर - 1. दिनमान में एक ही तिथि हो, किसी अन्य तिथि का सम्बन्ध न हो तो वह शुद्धा तिथि कहलाती है।

2. एक ही दिन में दो या तीन तिथियों का सम्बन्ध हो तो वह विद्धा तिथि कहलाती है।

प्रश्न 29. एक दिन में दो या तीन तिथियों के रहने पर किस तिथि का क्षय माना जाएगा?

उत्तर - एक दिन में दो तिथियों के रहने पर अंतर (बाद वाली) तिथि का क्षय माना जाएगा, इसी तरह जिस दिन तीन तिथियां रहेंगी, उस दिन मध्य (बीच वाली) तिथि का क्षय माना जाएगा। **विशेष**-तिथि ह्रास अर्थात् जिस तिथि को व्रत करना है, उसी का ह्रास-क्षय हो तो उस तिथि के पहले वाली तिथि को व्रत करना होगा। क्योंकि व्रत की तिथि उस दिन सूर्योदय में न भी रहेगी तो भी अस्त काल में अवश्य आ जाएगी। अतएव तात्पर्य यही है कि सूर्योदय काल में यदि व्रत की तिथि छः घटी प्रमाण न हो तो व्रत एक दिन पहले करना चाहिए।

प्रश्न 30. दशलक्षण और अष्टाह्निका इन पर्व दिनों में तिथि के क्षय एवं वृद्धि के समय क्या करना चाहिए?

उत्तर - दशलक्षण और अष्टाह्निका इन पर्व दिनों में तिथि के क्षय होने पर एक दिन पहले से व्रत आरम्भ करना चाहिए और तिथि की वृद्धि होने पर एक दिन अधिक करना चाहिए।

प्रश्न 31. तिथि क्षय और तिथि वृद्धि में क्या प्रतिष्ठा आदिक मांगलिक कार्य कर सकते हैं?

उत्तर - नहीं, प्रतिष्ठा जैसे मांगलिक कार्यों के लिए तिथि वृद्धि और तिथि क्षय दोनों को त्याज्य बतलाया गया है।

प्रश्न 32. अयन और अयन शुद्धि किसे कहते हैं?

उत्तर - छह महीने का एक अयन होता है। अयन के दो भेद हैं, दक्षिणायन व उत्तरायण, व्यवहार में कर्क राशि के सूर्य से लेकर धनु राशि के सूर्य पर्यन्त (श्रावण से पौष तक) दक्षिणायन और मकर राशि से लेकर मिथुन राशि पर्यन्त (माघ से आषाढ़ तक) सूर्य का उत्तरायण होता है। कुछ कार्यों में अयन शुद्धि को परम ग्राह्य माना गया है। माङ्गलिक कार्य (पञ्चकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठा आदि) उत्तरायण में ही सम्पन्न किए जाते हैं।

प्रश्न 33. ऋतु किसे कहते हैं किन-किन मासों में कौन-कौन सी ऋतुएं होती हैं ?

उत्तर - दो मास की एक ऋतु होती है एवं एक वर्ष में छह ऋतुएं होती हैं। चैत्र और वैशाख मास में बसंत ऋतु,ज्येष्ठ-आषाढ़ मास में ग्रीष्म ऋतु, श्रावण-भाद्रपद मास में वर्षा ऋतु, कुवार (आश्विन)-कार्तिक मास में शरद ऋतु, अगहन-पौष माह में हेमंत ऋतु और माघ-फाल्गुन मास में शिशिर ऋतु होती है।

प्रश्न 34. अधिक मास और क्षय मास के समय व्रत आदिक कार्यों के करने के सम्बन्ध में क्या व्यवस्था है ?

उत्तर - मास वृद्धि के सम्बन्ध में कहा है कि -

संवत्सरे यदि भवेन्मासे वै चाधिकस्तदा ।
पूर्वस्मिन्न व्रतं कार्यं त्वपरस्मिन् कृतं शुभम् ॥

अर्थ-यदि वर्ष में एक मास अधिक हो तो पहले वाले मास में व्रत नहीं करना चाहिए, किन्तु आगे वाले में व्रत करना चाहिए। जैसे दो श्रावण मासों के पड़ने पर पहले श्रावण को छोड़कर दूसरे श्रावण में व्रत किया जाएगा।

विशेष-दो वर्ष छोड़कर तीसरे वर्ष में एक मास की वृद्धि हो जाती है, जो अधिमास या मल मास कहलाता है। यह अधिमास चैत्र से लेकर आश्विन तक पड़ता है अर्थात् चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावण, भाद्रपद और आश्विन ये ही मास वृद्धि को प्राप्त होते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि सूर्य मन्दगति से गमन करता है और चन्द्रमा तेज गति से।

मास क्षय के सम्बन्ध में कहा है कि -

संवत्सरे यदि भवेन्मासो वै हीयमानकः ।
पूर्वस्मिंश्च व्रतं कार्यं परस्मिन्न तु योग्यता ॥

अर्थ-संवत्सर अर्थात् वर्ष में यदि मासहानि हो तो पूर्व के मास में व्रत करना चाहिए आगे वाले मास में नहीं। व्रत की योग्यता पूर्वमास में ही होती है, उत्तर मास में नहीं।

विशेष -अधिमास के सदृश संवत्सर में क्षय मास भी हुआ करता है जिसमें एक मास की हानि हो जाया करती है। यह नियम है कि जिस वर्ष क्षय मास पड़ेगा उस वर्ष दो अधिमास अवश्य होंगे। क्षय मास प्रायः कार्तिक, मार्गशीर्ष और पौष में ही होता है। मास क्षय का कारण यह है कि उस समय चन्द्र की अपेक्षा सूर्य की गति अधिक होती है। यदि प्रथम अधिमास भाद्रपद मास को मान लिया जाए तो दूसरा अधिमास चैत्र में पड़ेगा तथा अगहन में क्षयमास होगा। क्षय मास पड़ने पर व्रत पिछले (पूर्व) मास में किया जाएगा। जैसे कि कार्तिक क्षय मास है, तो कार्तिक मास के व्रत आश्विन में ही कर लेना चाहिए।

प्रश्न 35. पक्ष का लक्षण, भेद एवं माङ्गलिक कार्य करने योग्य पक्ष कौन-सा है बतलाइए ?

उत्तर - पन्द्रह दिन का एक पक्ष होता है। जिसमें एकम से अमावस्या तक चन्द्र कलाओं का ह्रास देखा जाता है, उसे कृष्णपक्ष कहते हैं। और जिसमें एकम से पूर्णिमा तक चन्द्र कलाओं की वृद्धि देखी जाती है, उसे शुक्ल पक्ष कहते हैं। इस प्रकार एक मास में कृष्ण और शुक्ल दो पक्ष होते हैं। प्रायः सभी मांगलिक कार्य शुक्ल पक्ष में ही किए जाते हैं। अति आवश्यक हो तो कृष्ण पक्ष की पञ्चमी तक प्रतिष्ठादिक मांगलिक कार्य किए जा सकते हैं। लेकिन पञ्चमी के बाद तिथियां ग्राह्य नहीं हैं।

प्रश्न 36. व्रतादिक मांगलिक कार्यों के लिए कौन-कौन सी तिथियां प्रशस्त मानी गई हैं?

उत्तर - द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, अष्टमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा तिथियां सभी व्रतादिक मांगलिक कार्य के करने के लिए प्रशस्त मानी गई हैं।

दूसरी मान्यतानुसार चतुर्थी, षष्ठी, अष्टमी, नवमी, द्वादशी और चतुर्दशी इन तिथियों की पक्षरन्ध्र संज्ञा है। इन तिथियों में प्रतिष्ठादिक मांगलिक कार्य करना शुभ नहीं बतलाया। यदि इन तिथियों में कार्य करने की अत्यन्त आवश्यकता हो तो इन तिथियों की प्रारम्भिक पाँच घटिकाएं अर्थात् सूर्योदय से दो घंटे छोड़कर मांगलिक कार्य कर सकते हैं।

प्रश्न 37. किन-किन तिथियों की क्या-क्या संज्ञाएं हैं और किस-किस संज्ञक तिथियों में मांगलिक कार्य करना सुयोग है?

उत्तर - नन्दा, भद्रा, जया, रिक्ता और पूर्णा ये तिथियों की पाँच संज्ञाएं बतलाई गई हैं।

- प्रतिपदा (एकम), षष्ठी और एकादशी की नन्दा संज्ञा है।
- द्वितीया, सप्तमी और द्वादशी की भद्रा संज्ञा है।
- तृतीया, अष्टमी और त्रयोदशी की जया संज्ञा है।
- चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी की रिक्ता संज्ञा है।
- पञ्चमी, दशमी और पूर्णिमा या अमावस्या की पूर्णा संज्ञा है।

इनमें से पूर्णा, जया और भद्रा संज्ञक तिथियों में मांगलिक कार्य करना उत्तम माना है।

पूर्णा संज्ञक तिथियां बृहस्पतिवार (गुरुवार) को पड़ें तो सिद्धा होने से मांगलिक कार्य सुसिद्ध होता है।

प्रश्न 38. पञ्चकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठा, जिनालयारम्भ, विद्यारम्भ आदि कार्यों के अयोग्य मास शून्य संज्ञक तिथियां कौन-सी हैं?

उत्तर - चैत्र में दोनों पक्षों की अष्टमी और नवमी, वैशाख में दोनों पक्षों की द्वादशी, ज्येष्ठ में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी और शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी, आषाढ़ में शुक्ल पक्ष की सप्तमी, कृष्ण पक्ष की षष्ठी, श्रावण में द्वितीया और तृतीया, भाद्रपद में प्रतिपदा (एकम) और द्वितीया, आश्विन (कुवार) में दशमी और एकादशी, कार्तिक में कृष्ण पक्ष की पञ्चमी, शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी,

मार्गशीर्ष (अगहन) में सप्तमी और अष्टमी, पौष में चतुर्थी और पञ्चमी, माघ में कृष्ण पक्ष की पञ्चमी और शुक्ल पक्ष की षष्ठी एवं फाल्गुन में शुक्ल पक्ष की तृतीया मास शून्य संज्ञक एवं निर्बल तिथियां मानी गई हैं। इनमें पञ्चकल्याणक आदि कार्य करने से जीवन में अनेक हानियां होने की संभावनाएं बतलाई गई हैं।

प्रश्न 39. पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा, जिनालयारम्भ, बड़े-बड़े विधान, व्रतों का प्रतिष्ठापन (ग्रहण) और उद्यापन हेतु ग्रह उदय सम्बन्धी कौन-सा नियम ध्यान रखने योग्य है?

उत्तर - ऐसे महान् कार्यों के लिए गुरु और शुक्र का उदय रहना आवश्यक है। इन दोनों के अस्त रहते हुए ऊपर कहे गए मांगलिक कार्य करने योग्य नहीं।

ज्योतिष शास्त्र में प्रत्येक शुभ कार्य करने के लिए शुक्र और गुरु का बल, चन्द्र शुद्धि और सूर्य शुद्धि ग्रहण की जाती है। इन ग्रहों के बल के बिना शुभ कार्यों का करना त्याज्य बतलाया गया है।

प्रश्न 40. मांगलिक कार्यों के लिए कौन-कौन से वार श्रेष्ठ माने गए हैं एवं कौन-कौन से वार त्याज्य माने गए हैं तथा कौन-कौन से उत्तम वारों में किया गया सुयोग्य कार्य सफल होता है?

उत्तर - मांगलिक कार्यों को करने में, वारों में बुधवार, गुरुवार और शुक्रवार श्रेष्ठ एवं ग्राह्य माने गए हैं। मतान्तर से रविवार को भी ग्रहण किया गया है। लेकिन धर्म सम्बन्धी मांगलिक कार्यों के लिए मंगलवार, शनिवार सर्वथा त्याज्य बतलाए गए हैं। तथा सोमवार को मध्यम बतलाया गया है।

विशेष -शुभ साफल्य हेतु-बुधवार को अक्षरारम्भ, शिलान्यास और काव्य निर्माण; गुरुवार को दीक्षारम्भ, विद्यारम्भ और प्रतिष्ठा; शुक्रवार को विद्यारम्भ, व्रतदान और षोडश संस्कार; रविवार को विद्यारम्भ, व्रत दान, मन्त्र पठनादि पुण्यकृत्य तथा सोमवार को प्रतिष्ठा, जाप्य आदिक अनुष्ठान करना उत्तम माना गया है।

प्रश्न 41. क्या यह एकान्त नियम है कि श्रेष्ठ वारों या तिथियों में किए गए धर्म कार्य सफल ही होते हैं और अशुभ समय में किए गए धर्म कार्य असफल होते हैं?

उत्तर - नहीं, ऐसा एकान्त नियम नहीं कि-श्रेष्ठ वारों या तिथियों में किए गए कार्य सफल ही होते हैं क्योंकि श्रेष्ठ वार, तिथि, मास और वर्ष आदिक कार्यों की सफलता में निमित्त मात्र हैं। अगर तीव्र अशुभ कार्य में सफलता नहीं मिलती तथा तीव्र पुण्य कर्म का उदय हो तो अन्य समय में भी कार्य सफल होते हुए देखे जाते हैं अतः शुभ की सफलता हेतु उत्तम तिथि आदिक के योग के साथ पुण्य कर्म का योग भी होना परम आवश्यक है।

प्रश्न 42. जब पुण्य कर्म के योग में ही कार्यों की सफलता होती है तो तिथि आदिक को देखने की क्या आवश्यकता है?

उत्तर - जैसे-लोग दुर्घटना से बचने हेतु सावधानी से कार्य किया करते हैं एवं रोगों की उत्पत्ति से बचने के लिए दवा का सेवन किया करते हैं क्योंकि अशुभ निमित्तों में अशुभ कर्म की उदीरणा

(अकाल में फल मिलना) देखी जाती है, अतः वैसे ही अशुभ कर्म की उदीरणा से बचने के लिए शुभ या प्रशस्त दिन, तिथि आदिक को देखकर कार्य किया जाता है जो सुयोग्य माना गया है। और योग्य समय पर किए जा रहे शुभ कार्यों का परिणाम यह है कि उस समय पर कार्य करने वाले पुण्यात्माओं के हृदय में निश्चिंतपना और निर्भयपना देखा जाता है।

विशेष-इसी तरह धर्मियों की धार्मिक दृढ़ता के परीक्षार्थ उनके धार्मिक कार्यों में भी अनेक विघ्नों की उपस्थिति देखे जाने पर भी वे '**श्रेयांसि बहुविघ्नानि**' (अच्छे कार्यों में प्रायः अनेक विघ्न आते हैं) इस सूक्ति को ध्यान में रखते हुए प्रशस्त मार्ग से विचलित न होकर, उत्साहित होते हुए सम्यक्त्वपूर्वक अनेकानेक प्रशस्त अनुष्ठानों द्वारा अपने पुण्य को वृद्धिंगत करते हुए अपने कर्तव्यों की पूर्णता करते हैं।

प्रश्न 43. अपने जिनधर्म में भाद्रपद मास का अत्यधिक महत्त्व क्यों बतलाया गया है?

उत्तर - सभी मासों के बीच भाद्रपद मास अत्यन्त पवित्र है। इस मास की भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी को उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल का आरम्भ दिन कहा गया है, जिस कारण भाद्रपद शुक्ल पञ्चमी से लेकर भाद्रपद शुक्ल चतुर्दशी तक नियम, व्रतों के साथ पर्युषण पर्व मनाया जाता है। पर्युषण पर्व के इन दस दिनों में मुक्ति मार्ग की शिक्षा देने वाले उत्तम क्षमादि दशलक्षण धर्मों का चिन्तन किया जाता है, अतः इस पर्युषण पर्व और दशलक्षण व्रत पर्व का सुन्दर संयोग भव्यात्माओं के उद्धार का उत्तम अवसर माना जाता है। तथा ऐसा मासोत्तम मास भाद्रपद में षोडशकारण, दशलक्षण, रत्नत्रय एवं अनन्त चतुर्दशी इत्यादि अनेक व्रत दिन आते हैं अतएव अनेक नियम, व्रतों का खजाना स्वरूप इस भाद्रपद मास की प्रशंसा करते हुए पुराण शास्त्रों में कहा गया है कि -

अहो भाद्र पदाख्योऽयं, मासोऽनेक व्रताकरः।
धर्म परो मध्येऽन्य मासानां नरेन्द्रवत्॥ (मल्लिनाथ पुराण)

अर्थ-जिस प्रकार मनुष्यों में श्रेष्ठ राजा माना गया है। उसी तरह रत्नत्रय धर्म की वृद्धि हेतु अनेक व्रतों का स्थान स्वरूप भाद्रपद मास को सभी मासों के बीच श्रेष्ठ माना गया है।

प्रश्न 44. सुदर्शन मेरु के दक्षिण में स्थित विदेह क्षेत्र के कच्छावती देश के मध्य वीतशोक पुर नाम के नगर में रत्नत्रय व्रत पालन करने में प्रसिद्ध वे कौन से राजन् थे, जिन्होंने वन विहार के समय वन में विराजमान वीतरागी मुनि का दर्शन कर और उनका उपदेश सुनकर नवीन कर्मों के आस्रव स्वरूप एवं संसार परिभ्रमण के कारण स्वरूप मिथ्यात्व के मार्ग को छोड़कर रत्नत्रय-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमय मोक्षमार्ग को सच्चा मार्ग समझकर रत्नत्रय व्रत को धारण किया था और ऐसे रत्नत्रय व्रत को तेरह वर्ष तक पालन करने से जिनकी आत्मा इतनी पावन हो गई थी कि-एक दिन वन में एक जड़ से उखड़े वृक्ष को देखकर, जिन्हें संसार की असारता का चिंतन होने से संसार के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो गया था और जिन्होंने सारा

राजपाट छोड़कर नग्न दिगम्बरी दीक्षा धारण कर जीवन के अंत में समाधिमरण धारण किया था। जिसके फलस्वरूप उन्हें ऊर्ध्वलोक के अपराजित विमान में अहमिन्द्र का पद प्राप्त हुआ था, वहाँ से आकर यहाँ मनुष्य लोक में मल्लिनाथ तीर्थङ्कर का पद प्राप्त किया था तथा अन्त में निर्वाण (मोक्ष) पद प्राप्त किया था ?

उत्तर - रत्नत्रय व्रत के पालन करने में प्रसिद्ध वे महान् राजन् थे श्री 'वैश्रवण' राजन् ।

प्रश्न 45. धातकीखण्ड के पूर्व विदेह देश में सीतोदा नदी के तट पर स्थित विशालाक्षा नगरी में रहने वाले प्रियंकर राजा, राजमंत्री, मतिसागर सेठ और लक्षभद्र राज-पुरोहित इन चारों की वे कौन सी सुयोग चार कन्याएं थीं, जो एक दिन बसंत ऋतु में वन क्रीड़ा को निकली थीं और जिन्हें पुण्य के सुयोग में उसी वन में वृक्ष तल के नीचे शिला पर विराजमान महा दिगम्बर मुनि का शुभ दर्शन हुआ था और जिन कन्याओं ने भक्तिपूर्वक महा मुनि से संसार दुःख से छुटकारा पाने हेतु व्रतोपदेश ग्रहण किया था और दशलक्षण पर्व में व्रत करने का नियम लिया था, एवं उस दशलक्षण व्रत का दस वर्ष तक विधिवत् पालन कर और उसका उद्यापन कर जीवन के अंत में समाधिमरण के साथ महाशुक्र नामक दसवें स्वर्ग में अमरगिरि, अमरचूल, देवप्रभु और पद्मसारथी नामक महर्द्धिक देवपर्याय को प्राप्त किया था और वहाँ से च्युत होकर उज्जयिनी नगरी में राजन् मूलभद्र के गृह में रानी लक्ष्मीमती के गर्भ से पूर्णकुमार, देवराज, गुणचन्द्र और पद्मकुमार पुत्र पर्याय को प्राप्त किया था और पिता के दीक्षा ग्रहण के उपरान्त कुछ काल तक राज्य का धर्म नीति से पालन कर तत्पश्चात् संसार, भोगों से विरक्त हो उन चारों पुत्रों ने नग्न दिगम्बर बन जंगल में उग्र तपश्चरण पूर्वक केवलज्ञान प्राप्त कर सम्पूर्ण कर्मों का नाश कर मोक्ष पद को प्राप्त किया था ?

उत्तर - वे सुयोग्य चार कन्याएं थीं- प्रियंकर- नृपति कन्या 'मृगांक रेखा', मंत्री-कन्या 'कामसेना', सेठ मतिसागर-कन्या 'मदन वेगा' और लक्षभद्र राजपुरोहित-कन्या 'रोहणी'। जिन्हें दशलक्षण व्रत पालन के माहात्म्य से आगे केवलज्ञान और अंत में मोक्ष की प्राप्ति हुई।

प्रश्न 46. बिहार प्रदेश की राजगृह नगरी में राजा हेमप्रभ के शासन काल में सोमशर्मा नामक श्रावक की वह कौन सी कन्या थी जो अति कुरूपा थी, जिसके यहाँ चर्या (आहार) को पधारे मतिसागर नामक चारण मुनि से पिता के द्वारा अपनी कन्या के कुरूपा होने का कारण पूछे जाने पर मुनि ने कुरूपा होने का कारण पूर्व भव में मुनि-अविनय बतलाया था। तथा फिर पिता के द्वारा बेटी के इस कर्म से छुटकारा कैसे हो? ऐसे पूछे जाने पर मुनि महाराज ने पाप बन्ध से छूटने एवं तीर्थङ्कर पद के योग्य पुण्य बन्ध की प्राप्ति के कारण स्वरूप षोडशकारण भावना भाने का उपदेश दिया, जिसे सुनकर उस कन्या ने सोलह वर्ष तक पालन करने हेतु षोडशकारण व्रत को ग्रहण किया था। जीवन में उसका अच्छी तरह पालन कर, जीवन के अंत में समाधिमरण धारण कर सोलहवें स्वर्ग में देवपर्याय को प्राप्त किया था। वहाँ स्वर्गिक सुख को भोगकर फिर मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर विदेह क्षेत्र में सीमंधर तीर्थङ्कर के पद को प्राप्त किया था ?

उत्तर - वह कन्या थी 'कालभैरवी' जिसे षोडशकारण व्रत के अनुपालन से आगे सीमंधर तीर्थङ्कर का

पद प्राप्त हुआ।

प्रश्न 47. अयोध्या नगरी में कुबेरदत्त नामक सेठ के वे कौन से तीन सुयोग्य पुत्र थे, जिन्होंने वीतरागी मुनिवर से अष्टाह्निका (नंदीश्वर) व्रत ग्रहण किया था और जीवन के अंत में समाधिमरण धारण कर उस व्रत के माहात्म्य से स्वर्ग में महर्द्धिक देव का पद प्राप्त किया था। जिनमें से प्रथम पुत्र ने स्वर्गिक सुख भोगकर फिर मनुष्यगति को प्राप्त कर अयोध्या नगरी में नवनिधि, चौदह रत्न, छियानवे हजार रानियां और छः खण्ड का राज्य आदि वैभव से युक्त हरिषेण चक्रवर्ती का पद प्राप्त किया था।) दूसरे और तीसरे पुत्र ने स्वर्ग से आकर अरिंजय व अमितंजय नामक दो मुनियों की पर्याय को प्राप्त किया था ?

उत्तर - कुबेर दत्त नामक सेठ के वे सुयोग्य पुत्र थे श्रीवर्मा, जयकीर्ति और जयवर्मा जिन्होंने अष्टाह्निका (नंदीश्वर) व्रत के माहात्म्य को प्रकट किया था।

प्रश्न 48. विदेह क्षेत्र सम्बन्धी गान्धिल नामक देश के पाटलीपुर नामक नगर में वे कौन से श्रावक थे जिन्होंने एक दिन पिहिताश्रव नामक केवली के चरणों में अपनी सेठ अवस्था से दरिद्र अवस्था हो जाने का कारण पूर्व भव में की गई मुनि-निंदा जानकर और अपने पाप कर्म के क्षय हेतु जिनगुण सम्पत्ति व्रत के पालन करने का संकल्प किया था, जिस कारण कुछ भवों के बाद उस व्रत के प्रभाव से उस श्रावक ने श्रेयांस राजा के पद को प्राप्त किया था। और अपने पूर्वोपार्जित महापुण्य से प्रथम तीर्थङ्कर भगवान (मुनीश्वर) आदिनाथ को प्रथम आहार दान देने का सौभाग्य प्राप्त किया था तथा अंत में दिगम्बरी दीक्षा धारण कर निर्वाण पद प्राप्त किया था ?

उत्तर - वे श्रावक थे 'नागदत्त' सेठ जिन्होंने जिनगुण सम्पत्ति व्रत का उत्तम माहाम्त्य प्रकट किया था।

प्रश्न 49. अयोध्या नगरी के निकटवर्ती पद्म खण्ड नामक ग्राम में रहने वाले वे कौन से भव्यात्मा श्रावक-श्राविका थे, जिन्होंने अनन्त चतुर्दशी व्रत का दृढ़ता से पालन कर उस व्रत के माहात्म्य से उन भव्य श्रावक ने स्वर्गादिक के सुख भोगकर मोक्षपद प्राप्त किया था एवं श्राविका भी आगे मोक्ष पद प्राप्त करेगी ?

उत्तर - वे भव्यात्मा श्रावक थे 'सोम शर्मा' और श्राविका 'सोमाश्री'।

प्रश्न 50. उज्जयिनी नगरी में रहने वाले वे कौन से महान् राजा थे जिन्होंने चारित्रशुद्धि व्रत (बारह सौ चौंतीस उपवास व्रत) का दृढ़ता से पालन कर तीसरे भव में विदेह क्षेत्र की विजयापुरी नगरी में धनञ्जय राजा के पुत्र रूप में जन्म लेकर पञ्चकल्याणक सहित चन्द्रभानु नामक तीर्थङ्कर का पद प्राप्त किया था और बाद में निर्वाण (मोक्ष) सुख को प्राप्त किया था ?

उत्तर - वे महान् राजा थे 'हेमवर्मा' जिन्होंने चारित्र शुद्धि व्रत के माहात्म्य से विदेह क्षेत्र के चन्द्रभानु तीर्थङ्कर के पद को धारण कर निर्वाण पद को प्राप्त किया था।

अध्याय17.
अष्ट कर्म विवेचन

कर्म सिद्धान्त से अनभिज्ञ आत्मा चमत्कार में ही नमस्कार और वीतराग में भी कर्ता-धर्तापन की भावनाओं में उलझी रहती है। तरह-तरह की सांसारिक वांछाएं, प्रार्थनाएं और लोक स्वार्थ की उपासनाओं में अपना बहुमूल्य जीवन गंवाती हैं। लेकिन जब यह आत्मा कर्म सिद्धान्त के स्वरूप को समझती है तभी यह संसार में भटकाने वाले भूल-भुलैया के मार्ग को छोड़कर सुमार्ग को अपनाती है एवं अपने धार्मिक अनुष्ठानों को सम्यक्त्व सह समीचीन रूप से करती हुई अशुभ कर्मों की निर्जरा करने का पुरुषार्थ करती है एवं कर्मों के क्षय, क्षयोपशम, उपशम इत्यादिक से एक दिन अपने सुनिश्चित मुक्ति लक्ष्य को साकार करने में सक्षम हो जाती है। अतः कर्म सिद्धान्त का अटूट श्रद्धान कराने हेतु कर्मों के भेद-प्रभेद एवं उनके लक्षण इत्यादिक का वर्णन करते हुए इस अध्याय में 'अष्ट कर्म विवेचन' को दर्शाया गया है।

प्रश्न 1. कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर - जो पुद्गल परमाणु, राग-द्वेषादि के निमित्त से, आत्मा के प्रदेशों के साथ मिलकर आत्मा का स्वभाव ढक देते हैं, उन पुद्गल परमाणुओं को कर्म कहते हैं।

प्रश्न 2. ज्ञानावरण कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर - जो कर्म आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करे या ढके वह ज्ञानावरण कर्म कहलाता है। जैसे- कपड़ा, कपड़े से ढके पदार्थ के ज्ञान में जैसे कपड़ा बाधक होता है, उसी तरह ज्ञान के प्रकट होने में ज्ञानावरण कर्म बाधक होता है।

प्रश्न 3. ज्ञानावरण कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर - ज्ञानावरण कर्म के पाँच भेद हैं - 1. मति ज्ञानावरण 2. श्रुत ज्ञानावरण, 3. अवधि ज्ञानावरण 4. मनःपर्यय ज्ञानावरण और 5. केवल ज्ञानावरण।

प्रश्न 4. दर्शनावरण कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर - जो कर्म आत्मा के दर्शन गुण में बाधक होता है, वह दर्शनावरण कर्म कहलाता है। जैसे - द्वारपाल, भीतरी वस्तु आदिक के दर्शन में बाधक होता है, उसी तरह दर्शन होने में दर्शनावरण कर्म बाधक होता है।

प्रश्न 5. दर्शनावरण कर्म के कितने भेद हैं एवं उनके लक्षण बतलाइए?

उत्तर - दर्शनावरण कर्म के नौ भेद होते हैं -

1. **चक्षु दर्शनावरण**-जिस कर्म के उदय होने पर चक्षुदर्शन (चाक्षुष् ज्ञान से पूर्व होने वाला सामान्य अवलोकन) न हो सके, उसे चक्षु दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
2. **अचक्षु दर्शनावरण**-जिस कर्म के उदय होने पर अचक्षु दर्शन (चक्षु इन्द्रिय के सिवाय शेष इन्द्रिय व मन से होने वाले ज्ञान से पहले होने वाला सामान्य अवलोकन) न हो सके, उसे अचक्षु दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
3. **अवधि दर्शनावरण**-जिस कर्म के उदय होने पर अवधि दर्शन (अवधिज्ञान के पूर्व होने वाला सामान्य अवलोकन) न हो सके, उसे अवधि दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
4. **केवल दर्शनावरण**-जिस कर्म के उदय से केवल दर्शन (केवलज्ञान के साथ होने वाला सामान्य अवलोकन) न हो सके, उसे केवल दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
5. **निद्रा दर्शनावरण**-जिस कर्म के उदय का निमित्त पाकर (अवलोकन में बाधक रूप) मद, खेद, श्रम निवारक निद्रा आवे, उसे निद्रा दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
6. **निद्रा-निद्रा दर्शनावरण**-जिस कर्म के उदय होने पर निद्रा के बाद निद्रा आवे अर्थात् गाढ़ निद्रा आती है, उसे निद्रा-निद्रा दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
7. **प्रचला दर्शनावरण** - जिस कर्म का उदय पाकर प्रचला (बैठे-बैठे नेत्रादि में विकार करने वाली) आवे उसे प्रचला दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
8. **प्रचला-प्रचला दर्शनावरण** - जिस कर्म के उदय होने पर प्रचला के बाद प्रचला (जिसमें दांत, होंठ, हाथ आदि चले, लार बहे) आवे उसे प्रचला-प्रचला दर्शनावरण कर्म कहते हैं।
9. **स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण** - जिस कर्म के उदय से स्त्यानगृद्धि (निद्रा में ही कोई भयंकर कार्य कर लिया जाए और जागने पर मालूम भी न हो सके ऐसी निद्रा) आवे उसे स्त्यानगृद्धि दर्शनावरण कर्म कहते हैं।

प्रश्न 6. वेदनीय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर - जो कर्म आत्मा के अव्याबाध गुण में बाधक होता है या सुख-दुःख का वेदन कराता है वह वेदनीय कर्म कहलाता है।

जैसे मधुलिप्त तलवार-जिस प्रकार तलवार पर लिप्त मधु का स्वाद जिह्वा से चखने पर विषय सुख का वेदन और जीभ कट जाने से दुःख का वेदन होता है। उसी तरह साता-असाता वेदनीय कर्म के निमित्त से सांसारिक सभी कार्यों में सुख या दुःख का वेदन हुआ करता है।

प्रश्न 7. वेदनीय कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर - वेदनीय कर्म के दो भेद हैं -

1. साता वेदनीय कर्म - यह कर्म सुख की प्राप्ति में निमित्त होता है।
2. असाता वेदनीय कर्म - यह कर्म दुःख की प्राप्ति में निमित्त होता है।

प्रश्न 8. मोहनीय कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर – जो कर्म, आत्मा के अपने स्वरूप और सम्यक् मार्ग को भुलाकर मिथ्या मार्ग से व पर पदार्थों से मोहित करता है और आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात करता है, वह मोहनीय कर्म कहलाता है। जैसे शराब के पान करने पर व्यक्ति विवेक शून्य हो अपने को एवं अपनी सम्पदा को भी भूल जाता है उसी तरह मोहनीय कर्म के निमित्त से संसारी जीव वस्तु के वास्तविक स्वरूप में विपरीत कल्पना करता है। आत्मा को शरीर और शरीरादिक को आत्मा रूप समझता है। पर वस्तु में ममत्व बुद्धि होने से उसके नष्ट होने पर शोकाकुल होता है एवं अपने आत्म हित के कारण स्वरूप सम्यक् धर्म और धर्म के साधन नष्ट होने पर भी कोई परवाह नहीं करता।

प्रश्न 9. मोहनीय कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – मोहनीय कर्म के दो भेद हैं –

1. **दर्शनमोहनीय** – जिस कर्म के उदय से आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात होता है, उसे दर्शनमोहनीय कर्म कहते हैं।
2. **चारित्रमोहनीय** – जिस कर्म के उदय से आत्मा के चारित्र गुण का घात होता है, उसे चारित्रमोहनीय कर्म कहते हैं।

प्रश्न 10. दर्शनमोहनीय कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – दर्शनमोहनीय कर्म के तीन भेद हैं –

1. **मिथ्यात्व**–जिस कर्म के उदय से जीव के जीवादिक सप्त तत्त्व में या देव–शास्त्र–गुरु में विपरीत श्रद्धान होता है, उसे मिथ्यात्व दर्शनमोहनीय कर्म कहते हैं।
2. **सम्यक् मिथ्यात्व**–जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्व मिथ्यात्व रूप मिले हुए परिणाम होते हैं, जिनको न तो सम्यक्त्व रूप कह सकते हैं और न मिथ्यात्व रूप, उसे सम्यक् मिथ्यात्व दर्शन मोहनीय कर्म कहते हैं।
3. **सम्यक् प्रकृति**–जिस कर्म के उदय से सम्यक्त्व गुण का मूल घात न होते हुए चल मलादिक दोष उत्पन्न होते हैं, उसे सम्यक् प्रकृति दर्शनमोहनीय कर्म कहते हैं।

प्रश्न 11. चारित्रमोहनीय कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर – चारित्रमोहनीय कर्म के दो भेद हैं –

1. **कषायवेदनीय** – अनन्तानुबन्धी आदिक सोलह कषाएं कषायवेदनीय कहलाती हैं।
2. **नोकषायवेदनीय** – किंचित् या ईषत् (थोड़ी या सूक्ष्म) रूप जो हास्यादिक नौ कषायें हैं, वे नोकषायवेदनीय कहलाती हैं।

प्रश्न 12. कषाय के कितने भेद हैं?

उत्तर – कषाय के सोलह भेद हैं –

1–4 अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ – इन कषायों के कारण सम्यक्त्वाचरण चारित्र का घात होता है या इस कषाय के माध्यम से सम्यग्दर्शन प्रकट नहीं हो पाता।

5-8 अप्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ-इन कषायों के कारण देश चारित्र (अणुव्रतादिक) प्रकट नहीं हो पाते।

9-12 प्रत्याख्यान क्रोध, मान, माया, लोभ-इन कषायों के कारण सकल चारित्र (महाव्रतादिक) प्रकट नहीं हो पाते।

13-16 संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ-इन कषायों के कारण यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो पाता।

प्रश्न 13. नोकषाय के कितने भेद हैं?

उत्तर - नोकषाय के नौ भेद हैं -

1. हास्य - इस कषाय के कारण हँसी आती है।
2. रति - इस कषाय के निमित्त से विषयों में प्रीति उत्पन्न होती है।
3. अरति - इस कषाय के निमित्त से विषयों में अप्रीति उत्पन्न होती है।
4. शोक - इस कषाय के कारण रंज (एक प्रकार का दु:ख) उत्पन्न होता है।
5. भय - इस कषाय की वजह से डर लगता है।
6. जुगुप्सा - इस कषाय के कारण ग्लानि पैदा होती है।
7. स्त्री वेद - इस कषाय के कारण पुरुष के साथ रमण करने का भाव पैदा होता है।
8. पुरुष वेद - इस कषाय के निमित्त से स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा उत्पन्न होती है।
9. नपुंसक वेद - इस कषाय के कारण स्त्री और पुरुष दोनों के साथ रमण करने की इच्छा प्रकट होती है।

प्रश्न 14. आयु कर्म किसे कहते हैं?

उत्तर - जो कर्म जीव को विवक्षित चतुर्गति रूप भव या शरीर में किसी निश्चित अवधि तक रोके रहता है वह अवगाहनत्व गुण का घातक आयु कर्म है। जैसे-खूंटा-खूंटे से बंधे पशु आदिक को जिस प्रकार कुछ काल तक या किसी निश्चित काल पर्यन्त खूंटे का बंधन स्वीकार करना पड़ता है उसी तरह विभिन्न गतियों से संसारी जीव को दु:खादिक के अनुभव करते हुए खूंटे के समान आयु कर्म के बंधन में बंधना पड़ता है।

प्रश्न 15. आयु कर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर - आयु कर्म के चार भेद हैं -

1. नरकायु - जिस कर्म के उदय से जीव नारकी के शरीर में रुका रहता है।
2. तिर्यञ्चायु -जिस कर्म के उदय से जीव तिर्यञ्च के शरीर में रुका रहता है।
3. मनुष्यायु - जिस कर्म के उदय से जीव मनुष्य के शरीर में रुका रहता है।
4. देवायु - जिस कर्म के उदय से जीव देव के शरीर में रुका रहता है।

प्रश्न 16. नामकर्म किसे कहते हैं?

उत्तर - जिस कर्म के उदय को पाकर जीव गत्यादिक नाना रूप परिणमता है अथवा शरीरादिक के निर्माण का कारण है एवं जिसके उदय से आत्मा के शुद्ध स्वभाव का आच्छादन होता है, उसे नाम कर्म कहते हैं। यह कर्म चित्रकार के सदृश शरीर के नाना रूपों के निर्माण में कारण है।

प्रश्न 17. नामकर्म के कितने भेद हैं?

उत्तर - नामकर्म के तिरानवे भेद हैं -

* चार गति-नरक गति, तिर्यञ्च गति, मनुष्य गति और देव गति। (1 से 4 तक)
* पाँच जाति-एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति और पंचेन्द्रिय जाति। (4+ 5= 9)
* पाँच शरीर-औदारिक शरीर, वैक्रियिक शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर और कार्मण शरीर। (9+ 5=14)
* तीन अंगोपांग-औदारिक शरीर अंगोपांग, वैक्रियिक शरीर अंगोपांग, आहारक शरीर अंगोपांग। (14 +3 +17)
* एक निर्माण। (17+1=18)
* पाँच बंधन-औदारिक शरीर बंधन, वैक्रियिक शरीर बंधन, आहारक शरीर बंधन, तैजस शरीर बंधन और कार्मण शरीर बंधन। (18+ 5= 23)
* पाँच संघात - औदारिक शरीर संघात, वैक्रियिक शरीर संघात, आहारक शरीर संघात, तैजस शरीर संघात और कार्मण शरीर संघात। (23+ 5= 28)
* छह संस्थान - समचतुरस्र संस्थान, न्यग्रोध परिमण्डल संस्थान, कुब्जक संस्थान, स्वाति संस्थान, वामन संस्थान, हुण्डक संस्थान। (28 +6 =34)
* छह संहनन - वज्रवृषभनाराच संहनन, वज्रनाराच संहनन, नाराच संहनन, अर्द्धनाराच संहनन, कीलक संहनन, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन। (34+ 6 =40)
* पाँच वर्ण-कृष्ण, नील, रक्त, पीत, श्वेत । (40+ 5 =45)
* दो गंध-सुगंध, दुर्गन्ध । (45+ 2 =47)
* पाँच रस-खट्टा, मीठा, कड़वा, कषायला, चरपरा। (47+ 5= 52)
* आठ स्पर्श - कठोर, कोमल, रूखा, चिकना, हल्का, भारी, ठण्डा, गर्म। (52+ 8= 60)
* चार आनुपूर्व्य -नरकगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, तिर्यग्गति प्रायोग्यानुपूर्व्य, मनुष्यगति प्रायोग्यानुपूर्व्य, देवगति प्रायोग्यानुपूर्व्य । (60+4 =64)
* एक अगुरुलघु, एक उपघात, एक परघात, एक आतप, एक उद्योत। (64+5 =69)
* दो विहायोगति-एक प्रशस्त विहायोगति, एक अप्रशस्त विहायोगति। (69+2 =71)

- एक उच्छ्वास, एक त्रस, एक स्थावर, एक बादर, एक सूक्ष्म, एक पर्याप्ति, एक अपर्याप्ति,

एक प्रत्येक, एक साधारण। (71+9= 80)

- एक स्थिर, एक अस्थिर, एक शुभ, एक अशुभ, एक सुभग, एक दुर्भग। (80+6 =86)
- एक सुस्वर, एक दु:स्वर, एक आदेय, एक अनादेय, एक यश:कीर्ति, एक अयश:कीर्ति,
- एक तीर्थङ्करत्व नामकर्म। (86+7 =93)

प्रश्न 18. गति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से आत्मा एक गति से दूसरी गति को गमन करता है, वह गति नामकर्म है। इसके नरकगति आदि चार भेद हैं। जिस कर्म के निमित्त से आत्मा का नारक भाव होता है, वह नरक गति नामकर्म है। इसी तरह अन्य में लगाना चाहिए।

प्रश्न 19. जाति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - अविरोधी सदृशता से एक रूप करने वाले विशेष से सहित जाति रूप जिस कर्म के उदय से जीव एकेन्द्रिय आदि कहा जाता है, उसे जाति नाम कर्म कहते हैं इसके एकेन्द्रिय जाति आदि पाँच भेद हैं। जिस कर्म के उदय से आत्मा एकेन्द्रिय कहा जाता है, वह एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म है। इसी तरह अन्य में लगाना चाहिए।

प्रश्न 20. शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से आत्मा के शरीर की रचना होती है, वह शरीर नामकर्म है। वह औदारिक शरीर नामकर्म आदि पाँच प्रकार का है।

प्रश्न 21. औदारिक शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - उदार अथवा स्थूल रूप मनुष्य एवं तिर्यञ्चों के शरीर को औदारिक शरीर नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 22. वैक्रियिक शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - अणिमा आदि आठ गुणों के ऐश्वर्य के सम्बन्ध से एक, अनेक, छोटा, बड़ा आदि विविध प्रकार का शरीर करने रूप विक्रिया करना, जिस शरीर का प्रयोजन है, वह वैक्रियिक शरीर नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 23. आहारक शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान करने के लिए या असंयम को दूर करने की इच्छा से प्रमत्त संयत मुनि द्वारा जिस शरीर की रचना की जाती है, वह आहारक शरीर नामकर्म है।

प्रश्न 24. तैजस शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो दीप्ति का कारण है, वह तैजस शरीर नामकर्म कहलाता है। या जो औदारिक व वैक्रियिक शरीर में तेज उत्पन्न करता है, वह तैजस शरीर नामकर्म कहा जाता है।

प्रश्न 25. कार्मण शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - कर्मों के समूह का नाम कार्मण शरीर नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 26. अंगोपांग नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से हाथ-पैर आदि अंगों की एवं अंगुली आदि उपांगों की रचना होती है, वह अंगोपांग नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 27. निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से रचना होती है, उसे निर्माण नामकर्म कहते हैं। वह दो प्रकार का है, स्थान निर्माण एवं प्रमाण निर्माण।

प्रश्न 28. स्थान निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जाति नामकर्म का अवलम्बन लेकर जो कर्म या योग्य स्थान पर चक्षु आदि अवयवों की रचना करता है, वह स्थान निर्माण नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 29. प्रमाण निर्माण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जाति नामकर्म का अवलम्बन लेकर जो कर्म यथा योग्य प्रमाण में चक्षु आदि अवयवों की रचना करता है, वह प्रमाण निर्माण नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 30. बन्धन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – शरीर नामकर्म के उदय से प्राप्त हुए पुद्गलों का परस्पर सम्बन्ध (अन्योन्य प्रदेश संश्लेष) को जिस कर्म के उदय से प्राप्त होते हैं, वह बन्धन नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 31. संघात नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों की छिद्र रहित होकर परस्पर प्रदेशों के अनुप्रवेश द्वारा एकरूपता आती है, वह संघात नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 32. संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से औदारिक आदि शरीरों की आकृति बनती है, वह संस्थान नामकर्म कहलाता है। उसके समचतुरस्र संस्थान आदि छह भेद होते हैं।

प्रश्न 33. समचतुरस्र संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति, ऊपर नीचे तथा बीच में समभाग से बनती है, उसे समचतुरस्र संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 34. न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बड़ के वृक्ष की तरह होता है अर्थात् जिस कर्म से नाभि से नीचे के अंग पतले और ऊपर के मोटे होते हैं, उसे न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 35. स्वाति संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सर्प की बामी के सदृश नीचे मोटा और ऊपर पतला होता है वह स्वाति संस्थान नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 36. कुब्जक संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिस कर्म के उदय से शरीर कुबड़ा होता है, उसे कुब्जक संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 37. वामन संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर बौना होता है, उसे वामन संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 38. हुंडक संस्थान नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर के अंगोपांग किसी खास आकार के नहीं होते अथवा टेढ़े-मेढ़े होते हैं, उसे हुंडक संस्थान नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 39. संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से अस्थियों (हड्डियों) का बन्धन विशेष होता है, वह संहनन नामकर्म कहलाता है। वह वज्रवृषभनाराच संहनन आदि के भेद से छह प्रकार का है।

प्रश्न 40. वज्रवृषभनाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से वज्र की हड्डियां, वज्र के वेष्ठन और वज्र की ही कीलियां होती हैं उसे वज्रवृषभनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 41. वज्रनाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से वज्र की हड्डियां और वज्र की कीलियां होती हैं, लेकिन वेष्ठन वज्र के नहीं होते, उसे वज्रनाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 42. नाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से हड्डियां व वेष्ठन कीलियों सहित होते हैं, उसे नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 43. अर्द्ध नाराच संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से हड्डियों की संधियां अर्द्ध कीलित होती हैं, उसे अर्द्ध नाराच संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 44. कीलक संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से हड्डियां परस्पर कीलित होती हैं, उसे कीलिका या कीलक संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 45. असंप्राप्तासृपाटिका संहनन नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से हड्डियां अलग-अलग नसों से बंधी हुई होती हैं, परस्पर कीलित नहीं होती, उसे असंप्राप्तासृपाटिका संहनन नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 46. स्पर्श नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर में स्पर्श की उत्पत्ति होती है उसे स्पर्श नामकर्म कहते हैं। उसके कठोर, नरम आदि आठ भेद हैं।

प्रश्न 47. रस नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर में रस सम्बन्धी भेद होता है वह रस नामकर्म कहलाता है। वह खट्टा,

मीठा आदि पाँच भेद रूप है।

प्रश्न 48. गंध नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर में गंध की उत्पत्ति होती है, उसे गंध नामकर्म कहते हैं। वह सुगन्ध-दुर्गन्ध के भेद से दो भेद वाला होता है।

प्रश्न 49. वर्ण नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर में वर्ण सम्बन्धी विभाग होता है, उसे वर्ण नामकर्म कहते हैं। जिसके कृष्ण, नील आदि पाँच भेद होते हैं।

प्रश्न 50. आनुपूर्व्य नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से पूर्व शरीर के आकार का विनाश नहीं होता अर्थात् मरण होने के पश्चात् और जन्म होने के पहले तक आत्मा के प्रदेशों का आकार पूर्व शरीर के आकारवत् बना रहता है, उसे आनुपूर्व्य नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 51. अगुरुलघु नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर लोहे के पिण्ड के समान गुरु होने से न तो नीचे गिरता है और न अर्कतूल के समान लघु होने से ऊपर जाता है, वह अगुरुलघु नामकर्म है।

प्रश्न 52. उपघात नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से स्वयंकृत उद्बन्धन और मरुस्थल में गिरना आदि निमित्तक उपघात होता है वह उपघात नामकर्म कहलाता है या जिस कर्म के उदय से जीव को स्वयं को पीड़ा देने वाले अवयव उत्पन्न होते हैं, उसे उपघात नामकर्म कहते हैं। जैसे-लम्बोदर, हाथीपैर, पेड़ में कांटे एवं बारहसींगे के सींग इत्यादि।

प्रश्न 53. परघात नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से पर शस्त्रादिक का निमित्त पाकर व्याघात होता है, वह परघात नामकर्म कहलाता है। पेड़ के कांटे एवं बारहसींगे के सींग स्व पर घातक हैं।

प्रश्न 54. आतप नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर में आतप की रचना होती है वह आतप नामकर्म कहलाता है। वह सूर्यबिम्ब में होता है।

प्रश्न 55. उद्योत नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर में उद्योत होता है वह उद्योत नामकर्म कहलाता है। वह चन्द्रबिम्ब और जुगनू आदि में होता है।

प्रश्न 56. उच्छ्वास नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय का निमित्त पाकर उच्छ्वास (स्वास लेना) होता है, वह उच्छ्वास नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 57. विहायोगति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - विहायस् का अर्थ आकाश होता है। उस आकाश में गति कराने वाला कर्म विहायोगति नामकर्म कहलाता है। इसके प्रशस्त और अप्रशस्त दो भेद होते हैं।

प्रश्न 58. प्रत्येक शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के निमित्त से शरीर एक आत्मा के उपभोग का कारण होता है, वह प्रत्येक शरीर नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 59. साधारण शरीर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - बहुत आत्माओं के उपभोग का कारणस्वरूप साधारण शरीर जिस कर्म के निमित्त से होता है वह साधारण शरीर नामकर्म है।

प्रश्न 60. त्रस नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से द्वीन्द्रियादिक में जन्म होता है, वह त्रस नामकर्म है।

प्रश्न 61. स्थावर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के निमित्त से एकेन्द्रियों में उत्पत्ति होती है, वह स्थावर नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 62. सुभग नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से अन्य जनों को प्रीति कर अवस्था उत्पन्न हो, वह सुभग नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 63. दुर्भग नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से रूपादि गुणों से युक्त होकर भी अप्रीतिकर अवस्था होती है, वह दुर्भग नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 64. सुस्वर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के निमित्त से मनोज्ञ स्वर की रचना होती है, वह सुस्वर नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 65. दु:स्वर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के निमित्त से स्वर अमनोज्ञ होता है, वह दु:स्वर नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 66. शुभ नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से रमणीय शरीर होता है, वह शुभ नामकर्म है।

प्रश्न 67. अशुभ नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से असुन्दर शरीर होता है, वह अशुभ नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 68. सूक्ष्म नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से (बहुत सूक्ष्म अथवा बाधाकर रहित) शरीर होता है, वह सूक्ष्म नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 69. बादर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से अन्य बाधाकर शरीर बनता है, वह बादर नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 70. पर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से आहार आदि पर्याप्तियाँ पूर्ण होती हैं, वह पर्याप्ति नामकर्म कहलाता है अथवा आहार वर्गणा, भाषा वर्गणा और मनोवर्गणा के परमाणुओं को शरीर इन्द्रियाँ आदि परिणमाने में कारणभूत जीव की शक्ति विशेष की पूर्णता को पर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 71. पर्याप्तियां कितनी होती हैं, वे कौन-कौन सी हैं, लक्षण सहित बतलाइए ?

उत्तर - पर्याप्तियां छह होती हैं - 1. आहार पर्याप्ति 2. शरीर पर्याप्ति 3. इन्द्रिय पर्याप्ति 4. प्राणापान (श्वासोच्छ्वास) पर्याप्ति 5. भाषा पर्याप्ति 6. मनःपर्याप्ति।

1. **आहार पर्याप्ति**-आहार वर्गणा के परमाणुओं को खल वा रस भाग रूप परिणमाने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को आहार पर्याप्ति कहते हैं।
2. **शरीर पर्याप्ति**-जिन परमाणुओं को खल रूप परिणमाया था, उनको हड्डी वगैरह कठिन अवयवरूप और जिनको रस रूप परिणमाया था उनको रूधिरादिक स्वरूप परिणमाने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।
3. **इन्द्रिय पर्याप्ति**-आहार वर्गणा के परमाणुओं को इन्द्रिय के आकार रूप परिणमाने में तथा इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण करने के कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं।
4. **श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति**-आहार वर्गणा के परमाणुओं को श्वासोच्छ्वास रूप परिणमाने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं।
5. **भाषा पर्याप्ति** - भाषा वर्गणा के परमाणुओं को वचन रूप परिणमाने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को भाषा पर्याप्ति कहते हैं।
6. **मनःपर्याप्ति** - मनोवर्गणा के परमाणुओं को हृदय स्थान में आठ पाँखुरी के कमलाकार मन रूप परिणमाने को तथा उसके द्वारा यथावत् विचार करने में कारणभूत जीव की शक्ति की पूर्णता को मनःपर्याप्ति कहते हैं।

प्रश्न 72. ये पर्याप्तियां किन-किन जीवों के कितनी-कितनी होती हैं ?

उत्तर - एकेन्द्रिय जीव के पास भाषा और मन के बिना चार पर्याप्तियां होती हैं। द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असैनी पञ्चेन्द्रिय जीव के पास मन के बिना पाँच पर्याप्तियां होती हैं। सैनी पञ्चेन्द्रिय के पास छहों पर्याप्तियां होती हैं।

प्रश्न 73. ये पर्याप्तियां कितने काल में पूर्ण होती हैं ?

उत्तर - इन सभी पर्याप्तियों के पूर्ण होने का काल अन्तर्मुहूर्त है। एक-एक पर्याप्ति का काल भी अन्तर्मुहूर्त है तथा सबका मिलकर भी अन्तर्मुहूर्त काल है पहली से दूसरी का तथा दूसरी से तीसरी का इसी तरह छठवीं पर्याप्ति का काल क्रम से बड़ा-बड़ा अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिए।

प्रश्न 74. निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जब तक किसी जीव की शरीर पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती किन्तु नियम से पूर्ण होने वाली होती है, तब तक उस जीव को निर्वृत्त्यपर्याप्तक जीव कहते हैं।

प्रश्न 75. पर्याप्तक जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिसकी शरीर पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है उसे पर्याप्तक जीव कहते हैं।

प्रश्न 76. लब्ध्यपर्याप्तक जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस जीव की एक भी पर्याप्ति पूर्ण नहीं होती तथा स्वास के अठारहवें भाग में मरण हो जाता है, उसे लब्ध्यपर्याप्तक जीव कहते हैं।

प्रश्न 77. अपर्याप्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो छह प्रकार की पर्याप्तियों के अभाव में कारण है, वह अपर्याप्ति नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 78. स्थिर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धी धातु, उपधातुएं आदि अपने-अपने स्थान पर रहती हैं, वह स्थिर नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 79. अस्थिर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर सम्बन्धित धातु इत्यादिक स्व-स्व स्थान पर नहीं रह पाती वह अस्थिर नामकर्म है।

प्रश्न 80. आदेय नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से शरीर में कान्ति (प्रभा) उत्पन्न होती है, वह आदेय नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 81. अनादेय नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - कान्ति हीन शरीर के होने में कारण होने वाला, अनादेय नामकर्म है।

प्रश्न 82. यशः कीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से भव में पुण्य गुणों की प्रसिद्धि हो, वह यशः कीर्ति नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 83. अयशः कीर्ति नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से यशःकीर्ति नहीं होती, वह अयशःकीर्ति नामकर्म कहलाता है।

प्रश्न 84. तीर्थङ्कर नामकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से कल्याणक पूजाओं से युक्त अरहंत अवस्था की प्राप्ति होती है, उसे तीर्थङ्कर नामकर्म कहते हैं।

प्रश्न 85. गोत्रकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के निमित्त से जीव, उच्च-नीच कहलाने वाले गोत्र में उत्पन्न होता है वह गोत्रकर्म कहलाता है। जैसे-कुम्भकार-जिस प्रकार मिट्टी का कार्य करने वाला कुम्भकार अनेकाकार के छोटे-बड़े घड़े इत्यादिक वस्तुओं को बनाया करता है, उसी तरह गोत्रकर्म संसारी जीवों को

छोटे-बड़े (उच्च,नीच) कुलों में उत्पन्न कराया करता है।

प्रश्न 86. उच्चगोत्रकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से लोक पूजित (सदाचार युक्त) कुलों में जन्म होता है, वह उच्च गोत्रकर्म है।

प्रश्न 87. नीचगोत्रकर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जिस कर्म के उदय से गर्हित कुलों में जन्म होता है, वह नीच गोत्रकर्म कहलाता है।

प्रश्न 88. अन्तराय कर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर - जीव के दान लाभादिक कार्यों में विघ्न या रुकावट करने वाला कर्म अन्तराय कर्म कहलाता है। जैसे-भण्डारी-जिस प्रकार राजकोष (भण्डार) में रहने वाला भण्डारी लोगों को मनचाही वस्तुएं लेने में बाधक बनता है, उसी तरह अन्तराय कर्म जीवों को दान, लाभ, भोग, उपभोग और शक्ति में बाधा उपस्थित करता है।

प्रश्न 89. अन्तराय कर्म के कितने भेद होते हैं एवं उनके संक्षिप्त अर्थ बतलाइए ?

उत्तर - अन्तराय कर्म के पाँच भेद होते हैं -

1. **दानान्तराय कर्म** - यह कर्म दान देने में बाधा डालता है ।
2. **लाभान्तराय कर्म** - यह कर्म वस्तुओं की प्राप्ति में बाधा डालता है।
3. **भोगान्तराय कर्म**-यह कर्म भोजनादिक एक बार भोगने योग्य वस्तुओं के भोगने में बाधा उपस्थित करता है।
4. **उपभोगान्तराय कर्म**-यह कर्म आसनादिक बार-बार भोगने योग्य वस्तुओं को भोगने में बाधा उपस्थित करता है।
5. **वीर्यान्तराय कर्म**-यह कर्म शक्ति या उत्साह में बाधा डालता है।

प्रश्न 90. ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्मों का आस्रव व बन्ध किन-किन कारणों से होता है ?

उत्तर - (1) ज्ञानावरण कर्म के आस्रव व बन्ध के प्रमुख कारण

1. मोक्षमार्ग के साधनस्वरूप तत्त्व ज्ञान का गुणगान या अन्य ज्ञान के धारक ज्ञानी पुरुष क । नहीं सुहाना।
2. ज्ञान या मोक्षमार्ग (रत्नत्रय मार्ग) के प्रदाता का नाम छुपाना।
3. तत्त्व ज्ञानी होते हुए भी, अपना वह देने योग्य तत्त्व ज्ञान, योग्य पात्र को भी किसी स्वार्थवश नहीं देना।
4. ज्ञान एवं ज्ञान के साधनों में विघ्न डालना।
5. ज्ञान के क्षेत्र में दूसरे की वृद्धि न सुहाने से शरीर या वचनों से उसके सच्चे ज्ञान की प्रसिद्धि को रोकना।

6. समीचीन ज्ञान में दूषण लगाना।
7. शास्त्रों को बेचकर अपनी आजीविका चलाना।
8. शास्त्र या उसके उपदेश का अनादर करना।
9. मिथ्या शास्त्र का पढ़ना-पढ़ाना इत्यादि।

(2) दर्शनावरण कर्म के आस्रव व बन्ध के प्रमुख कारण

1. सच्चे (वीतरागी) देव-शास्त्र-गुरु और उनका गुणगान नहीं सुहाना।
2. सद्दर्शन के मार्ग प्रदर्शक का नाम छुपाना।
3. दर्शन सुलभ होते हुए भी, वह देखने योग्य सद्दर्शन योग्य पात्र को भी किसी स्वार्थवश नहीं करने देना।
4. सद्दर्शन या उस दर्शन के साधनों में विघ्न डालना।
5. जिसको सच्चा दर्शन सुलभ है उसकी यह दर्शन सुलभता न सुहाने से शरीर एवं वचनों से उसके सच्चे दर्शन में दोष लगाना।
6. सच्चे वीतरागता रूप दर्शन के साधनों अर्थात् जिनबिम्ब आदिक के व्यापार से अपनी आजीविका चलाना।
7. वीतराग दर्शन एवं उसके उपदेश का अनादर करना।
8. वीतराग के अलावा सरागता की पूजा वंदन आदि क्रिया करना।
9. अति निद्रा लेना।
10. मिथ्या तीर्थों की प्रशंसा करना।
11. सच्चे तपस्वियों से ग्लानि करना।
12. देखने के साधन-चक्षु आदिक का नष्ट करना इत्यादि।

(3) वेदनीय कर्म के आस्रव बन्ध के प्रमुख कारण

अ. असाता वेदनीय सम्बन्धी -

1. दुःख (पीड़ा) रूप परिणाम का होना।
2. शोक (इष्ट वस्तु के वियोग में विकलता) का होना।
3. ताप (अपवाद आदिक से मन की खिन्नता) का होना।
4. आक्रन्दन (आँसू बहाते हुए खुलकर रोने रूप) का होना।
5. वध (प्राणों का घात कर देने रूप) का होना।
6. परिदेवन (संक्लेश परिणामों के साथ गुणानुस्मरण करते हुए रोने रूप) का होना।
7. ऊपर कहे गए इन दुःखादिकों को दूसरों को भी उत्पन्न करना।
8. विश्वासघात करना।

9. व्रतों का भङ्ग करना इत्यादि।

ब. साता वेदनीय सम्बन्धी –

1. प्राणी अनुकम्पा रखना।
2. व्रती सेवा करना।
3. सत्पात्रदान देना।
4 मुनिव्रत पालन करना।
5. अणुव्रत पालन करना।
6. क्षमा भाव रखना।
7. निर्लोभी वृत्ति रखना।
8. जिनेन्द्र देव पूजन करना।
9. तपस्वियों की वैयावृत्ति करना।
10. विनय शीलता रखना।
11. सुखकर सम्यक्वचन बोलना इत्यादि ।

(4) मोहनीय कर्म के आस्रव व बन्ध के प्रमुख कारण

अ . दर्शनमोहनीय सम्बन्धी–

1. केवली कवलाहारी होते हैं, इत्यादिक कहते हुए केवली पर दूषण लगाना।
2. शास्त्र में मांसाहार को निर्दोष कहा है, इत्यादिक कहते हुए सच्चे शास्त्र पर दूषण लगाना।
3. साधु अशुचिमय होते हैं, इत्यादिक कहते हुए सच्चे (दिगम्बर जैन) साधुओं पर दूषण लगाना।
4. जिन धर्म में कोई सार नहीं एवं इसका पालन करने से लोग दुर्गति में जाएंगे इत्यादिक कहते हुए धर्म की झूठी निंदा करना।
5. देव गति के देव सुरा (शराब) का और माँस का सेवन करते हैं, इत्यादिक कहते हुए देवों पर झूठा अपवाद लगाना।
6. असत्य या असंयम के मार्ग को मोक्षमार्ग कहना इत्यादि।

ब. चारित्रमोहनीय कर्म सम्बन्धी–

1. क्रोधादिक तीव्र कषाय करना ।
2. सच्चे तपस्वियों की निंदा करना ।
3. जिन धर्म से बाह्य (भिन्न या विपरीत) लिंग को धारण करना ।
4. सत्य धर्म का उपहास करना ।
5. मनुष्यों की हंसी मजाक उड़ाना ।

6. राग को बढ़ाने वाली कुचेष्टा करना ।
7. व्रत और शील के पालन में रुचि न रखना ।
8. पापी लोगों की संगति करना।
9. दूसरों के सुख के साधन नष्ट करना।
10. हमेशा शोक में लीन रहना।
11. कष्टों से भय रूप परिणाम रखना।
12. सुखकर धर्माचार से घृणा करना।
13. अपवाद में रुचि रखना।
14. असत्य बोलने की आदत रखना।
15. दूसरों के दोष ढूंढ़ने की आदत रखना।
16. स्त्रियों में रागादिक युक्त परिणाम होना।
17. परस्त्री सेवन करना।
18. बलात्कार करना।
19. गुप्त इन्द्रियों का विनाश करना इत्यादि।

(5) आयु कर्म के आस्रव व बन्ध के प्रमुख कारण

अ. नरकायु सम्बन्धी-

1. बहुत आरम्भ (हिंसा का कार्य) करना।
2. बहुत परिग्रह संग्रह करना।
3. दूसरों को दुःख देने वाली क्रूर प्रवृत्ति करना।
4. अत्यन्त आसक्ति-सह इन्द्रिय विषयों का सेवन करना।
5. सच्चे तपस्वियों की अविनय करना।
6. मुनियों पर उपसर्ग करना।
7. आयतनों को तोड़ना (नष्ट करना)।
8. अति अशुभ कृष्ण लेश्या रूप परिणाम होना।
9. रौद्र ध्यानी होना इत्यादि।

ब. तिर्यञ्चायु सम्बन्धी-

1. मायाचार करना।
2. धर्मोपदेश में मिथ्या कथन मिलाना।
3. मिथ्यात्व प्रचार करना।
4. नकली वस्तु को असली वस्तु कहकर देना।

5. कुशीलमय जीवन बिताना।
6. छल-कपट भाव रखकर विश्वासघात करना।
7. मरण समय अशुभ आर्त्त ध्यान रूप परिणामों का होना इत्यादि।

स. मनुष्य आयु सम्बन्धी-

1. अल्प आरम्भ करना।
2. अल्प परिग्रह का होना।
3. स्वभाव से विनम्र होना।
4. भद्र प्रकृति का होना।
5. सरल व्यवहारी होना।
6. तनु अल्प कषाय परिणामी होना।
7. वीतरागी का पूजक, सेवक होना।
8. सत्पात्रदानी होना।
9. मरण समय संक्लेश रूप परिणाम का न होना इत्यादि।

द. देवायु सम्बन्धी-

1. संयम रखना।
2. महाव्रतों का पालन करना।
3. अणुव्रतों का पालन करना।
4. सहनशीलता का होना।
5. तप धारण करना।
6. सम्यक्त्व धारण करना।
7. सच्चे धर्म का उपासक होना।
8. सुपात्र को भक्तिपूर्वक दान देना।
9. आयतनों की सेवा करना इत्यादि।

विशेष -

- वैसे तो सम्यग्दर्शन के साथ महाव्रत मोक्ष के (निर्वाण के) कारण हैं लेकिन उन महाव्रतों के साथ योग्य द्रव्य, क्षेत्रादिक का अभाव होने से स्वर्ग के कारण हैं।
- सम्यग्दृष्टि मनुष्य को अहमिन्द्र या सौधर्म इन्द्र आदिक देवों की ही आयु का बन्ध होता है। उस सम्यग्दृष्टि को कभी भी उस सम्यक्त्व के काल में वैमानिक सम्बन्धी देवियों और भवनत्रिक (भवनवासी, व्यन्तरवासी और ज्योतिष्क) सम्बन्धी देव तथा देवियों की आयु का बन्ध नहीं होता।

(6) नाम कर्म के आस्रव व बन्ध के प्रमुख कारण

अ. अशुभ नामकर्म सम्बन्धी-

1. मन,वचन, काय की वक्रता (कुटिलता, विपरीतता) का होना।
2. सम्यग्दर्शनादिक रूप मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति करने वाले को उस प्रकार की प्रवृत्ति करने से रोकना।
3. चुगली करना।
4. मिथ्यात्व का सेवन करना।
5. पर निन्दा में रुचि का होना।
6. मन की चंचलता का होना।
7. किसी के अंगों का नष्ट करना।
8. नाप-तौल के बाट घट-बढ़ रखना।
9. अशोभनीय या भय कारक रूपों की रचना इत्यादि।

ब. शुभ नामकर्म सम्बन्धी-

1. मन,वचन, काय की सरलता का होना।
2. मोक्षमार्ग में रुचि करना।
3. सम्यग्दर्शन का धारण करना।
4. पर निन्दा में अरुचि होना।
5. चुगली करने का त्याग करना।
6. मन की स्थिरता का होना।
7. सद्भावना रखना।
8. संसार के कारण स्वरूप प्रपञ्च से डरना।
9. प्रमाद छोड़ना।
10. विवाद छोड़ना इत्यादि।

स. शुभ नामकर्म के अन्तर्गत तीर्थङ्कर प्रकृति सम्बन्धी-

1. सम्यग्दर्शन की विशुद्धता रखना।
2. विनय सम्पन्नता होना।
3. शील व व्रतों का निरतिचार पालन करना।
4. निरन्तर ज्ञानलवलीनता होना।
5. निरन्तर संवेग (पाप से भय)होना।
6. शक्ति के अनुसार त्याग करना।

7. शक्ति के अनुसार तप करना।
8. साधु समाधि (विघ्न शमन) करना।
9. वैयावृत्ति (साधु सेवा) करना।
10. अरहन्त भक्ति करना।
11. आचार्य भक्ति करना।
12. बहुश्रुत भक्ति करना।
13. प्रवचन (शास्त्र) भक्ति करना।
14. आवश्यक नित्य पालन अर्थात् धार्मिक क्रियाओं का सदा पालन करना।
15. धर्म-मार्ग की प्रभावना करना।
16. धर्मीजनों के प्रति वात्सल्य भाव करना।

(7) गोत्रकर्म के आस्रव व बन्ध के कारण

अ. नीच गोत्रसम्बन्धी-

1. पर के सच्चे या झूठे दोषों को प्रकट करना अर्थात् निन्दा करना।
2. अपने गुणों को प्रकट करना अर्थात् अपनी प्रशंसा करना।
3. दूसरों के सद्गुणों को ढकना।
4. दूसरों के असद् (बुरे) गुणों को प्रकाशित करना।
5. किसी सद्धर्मी को समाज या समूह के बीच नीचा दिखाने का भाव रखना।

ब. उच्च गोत्रसम्बन्धी-

1. आप ही श्रेष्ठ हैं इत्यादिक वचनों से पर प्रशंसा करना।
2. मैं कुछ भी नहीं (गुणों के क्षेत्र में) इत्यादिक वचनों से आत्म-निन्दा करना।
3. दूसरों के सद्गुणों को प्रकट करना।
4. दूसरों के असद् गुणों को ढांकना।
5. जो अपने से गुणों में बड़े हैं, उनके प्रति विनययुक्त नम्र रहना (उठ करके खड़े होना, हाथ जोड़ना इत्यादि)।
6. ज्ञान का मद नहीं करना अर्थात् अहंकार का अभाव होना।
7. धर्मीजनों को समाज के बीच ऊपर उठाने का भाव होना इत्यादि।

(8) अन्तराय कर्म के आस्रव व बन्ध के प्रमुख कारण

1. किसी के दान कार्य में बाधा डालना।
2. किसी के लाभ में बाधा डालना।
3. किसी के भोग (जो एक बार भोगा जाए) में बाधा डालना।

4. किसी के उपभोग (जो बार-बार भोगा जाए) में बाधा डालना।
5. किसी की शक्ति में बाधा डालना अर्थात् शक्ति को दबाना या समाप्त करना।
6. किसी अच्छे कार्य को करते समय रोकना।
7. किसी अच्छे कार्य को करने वाले को बंधन में डालना।
8. जिनेन्द्र आदि वीतरागी की पूजा में विघ्न डालना।
9. मोक्ष मार्ग के साधनों में विघ्न उपस्थित करना।
10. पूजा में समर्पित किए पदार्थों को अर्थात् निर्माल्य को पुनः ग्रहण करना इत्यादि।

प्रश्न 91. कर्मों की दस करण रूप अवस्थाएं कौन-सी हैं एवं उनके लक्षण बतलाइए?

उत्तर - कर्मों की दस करण रूप अवस्थाएं- 1. बंध 2. उत्कर्षण 3. संक्रमण 4. अपकर्षण 5. उदीरणा 6. सत्व 7. उदय 8. उपशम 9. निधत्ति और 10. निकाचना के प्रकार से कर्मों के दस रूप होते हैं।

1. **बन्ध** - कर्मों का आत्मा के साथ सम्बन्ध होना बन्ध है।
2. **उत्कर्षण**- कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग का बढ़ना उत्कर्षण है।
3. **संक्रमण**- कर्मबन्ध प्रकृति का अन्य प्रकृति रूप परिणमन होना संक्रमण है।
4. **अपकर्षण**- कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग का घट जाना अपकर्षण है।
5. **उदीरणा**- उदयावली के बाहर स्थित कर्म द्रव्य को अपकर्षण के बल से उदयावली काल में लाना उदीरणा है।
6. **सत्त्व**- बंधे हुए कर्म पुद्गल का कर्म रूप रहना सत्त्व है।
7. **उदय**- कर्म प्रदेशों का अपने समय को प्राप्त होकर फल देने लगना उदय है।
8. **उपशम** - निश्चित समय तक कर्म का उदयावली में प्राप्त नहीं होना उपशम है।
9. **निधत्ति** - कर्मों का उदय, उदीरणा और संक्रमण इन अवस्थाओं को प्राप्त नहीं होना, निधत्ति है।
10. **निकाचित** - जिस कर्म की उदीरणा, उत्कर्षण, अपकर्षण और संक्रमण ये चारों ही अवस्थाएं न हो सकें, उसे निकाचित कहते हैं।

अध्याय 18.
गुणस्थान वर्णन

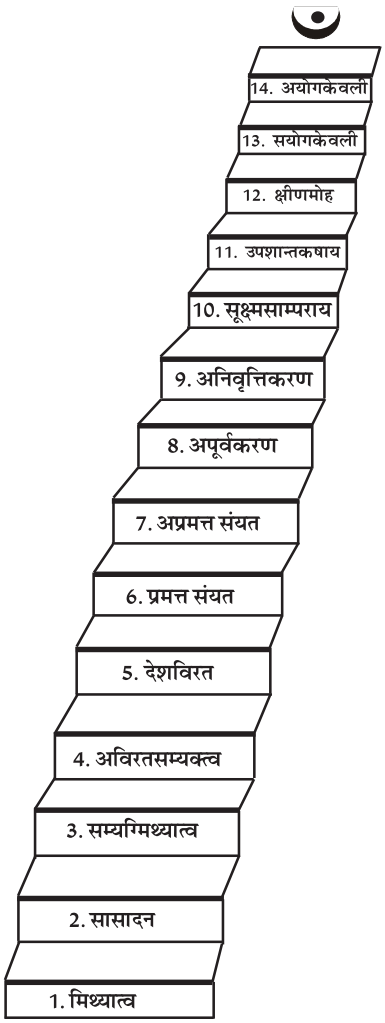

गुणस्थान हमारे परिणामों के माप रूप होते हैं। गुणस्थानों से कषाय और योगों की स्थिति जानी जाती है। नसैनी पर चढ़ने में और गुणस्थानों पर बढ़ने में इतना अंतर अवश्य मानना पड़ता है कि नसैनी पर सीढ़ियों के आधार से सीधा-सीधा ऊपर-ऊपर की ओर चढ़ा जाता है, लेकिन गुणस्थानों में दूसरा और तीसरा गुणस्थान मिथ्यात्व के संसर्ग अथवा सम्यक्त्व के छूटने से नीचे के गुणस्थानों की ओर आने से होता है। क्योंकि कोई भव्यात्मा जब पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से सम्यग्दृष्टि बनना चाहे तो उसे सम्यक्त्व की प्राप्ति होने पर सीधा चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त होता है। इसी तरह सम्यग्दृष्टि आत्मा मुनि बनते समय सीधा सप्तम गुणस्थान को प्राप्त करता है। फिर ध्यान से बाहर आ उपकरण आदि के निमित्त छठवें गुणस्थान को प्राप्त करता है और समिति व षट् आवश्यक आदि के समय सातवां गुणस्थान होता है। ऐसे छठवें एवं सातवें गुणस्थान रूपी झूले में मुनि लोग प्रतिदिन अनेक बार झूला करते हैं। इसी तरह उपशम श्रेणी में 8, 9, 10 व 11वें गुणस्थान वाले मुनिवर नियम से नीचे कम-से-कम सातवें या छठवें गुणस्थान तक आते हैं एवं वे मुनिवर इसी जीवन में एक बार और उपशम श्रेणी पर चढ़ सकते हैं। लेकिन जब मुनिवर क्षपक श्रेणी पर चढ़ते हैं तब एक अंतर्मुहूर्त के अंदर ही घातिया कर्मों का नाश कर केवली बन तेरहवें गुणस्थान में पहुँच जाते हैं तथा आयु समाप्त होने के पहले योग निरोध आदि के द्वारा चौदहवें गुणस्थान को प्राप्त कर अंतर्मुहूर्त के भीतर ही मोक्षगति को प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार इन गुणस्थानों के लक्षणों को एवं उनके आरोहण व अवरोहण के क्रम और उसके महत्त्व को जानने हेतु इस 'गुणस्थान वर्णन' अध्याय को वर्णित किया है।

प्रश्न 1. गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर - मोह और मन-वचन-काय की प्रवृत्ति के कारण जीव के अंतरंग परिणामों में प्रतिक्षण होने वाले उतार-चढ़ाव का नाम गुणस्थान है। विशेष-जीवों के परिणाम अनन्त हैं, जिनको कहने का विषय बनाना अशक्य होने से जीवों के उत्कृष्ट मलिन परिणामों से लेकर उत्कृष्ट विशुद्ध परिणामों तक तथा उनसे ऊपर जघन्य वीतराग परिणामों से उत्कृष्ट वीतराग परिणामों तक की अनन्त वृद्धियों के क्रम को संक्षेप में कहने योग्य बनाने के लिए उनको चौदह श्रेणियों में विभाजित किया गया है। वे ही श्रेणियां यहाँ चौदह गुणस्थान नाम पाती हैं। प्राणी जब अपने अंतरंग पुरुषार्थ के द्वारा अपने विशुद्ध परिणामों को बढ़ाता चला जाता है, तब वह कर्मों को उपशम, क्षय व क्षयोपशम करता हुआ अंत में जब सम्पूर्ण कर्मों का क्षय कर देता है तभी उसे मोक्ष प्राप्त होता है।

प्रश्न 2. गुणस्थानों का नाम निर्देश करते हुए उनका संक्षिप्त अर्थ बतलाइए ?

उत्तर - चौदह गुणस्थानों के नाम :- 1. मिथ्यादृष्टि 2. सासादन सम्यग्दृष्टि 3. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) 4. असंयत सम्यग्दृष्टि 5. संयतासंयत (देशविरत) 6. प्रमत्त संयत (प्रमत्तविरत) 7. अप्रमत्त संयत 8. अपूर्वकरण 9. अनिवृत्तिकरण 10. सूक्ष्मसाम्पराय 11. उपशान्तकषाय 12. क्षीणमोह 13. सयोगकेवली और 14. अयोगकेवली।

चौदह गुणस्थानों का संक्षिप्त विवेचन :-

1. **मिथ्यादृष्टि गुणस्थान** - वीतराग सर्वज्ञ द्वारा कहे हुए षट् द्रव्य, पञ्च अस्तिकाय, सप्त तत्त्व और नव पदार्थों में तीन मूढ़ता आदि पच्चीस दोषों रहित जो श्रद्धान नहीं करता और जैसे ज्वर से युक्त मनुष्य को मधुर रस भी कड़वा लगता है व रुचता नहीं, उसी तरह जिसे वीतराग देव-शास्त्र और गुरु रुचते नहीं एवं जो महा मोही सदा भोगाकांक्षा से युक्त होने के कारण रागी परिग्रही देव-गुरु आदिक की उपासना में लगा रहता है तथा जिसकी मति विपरीत, एकान्त, विनय, संशय और अज्ञान रूप पञ्च मिथ्यात्व में लीन रहती है, वहीं मिथ्यादृष्टि कहलाता है और ऐसे जीव का मिथ्यात्व रूप परिणाम मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहलाता है।
2. **सासादन गुणस्थान** - सम्यक्त्व रूपी रत्न पर्वत के शिखर से च्युत, मिथ्यात्व रूपी भूमि के सम्मुख और सम्यक्त्व के नाश को प्राप्त जो जीव है, उसे सासादन या सासादन सम्यग्दृष्टि समझना चाहिए। सा-आसादन अर्थात् जो समीचीन दृष्टि या सम्दग्दर्शन की आसादना (विराधना) सहित होता है, वह सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है। जैसे कोई मनुष्य प्रथम मंजिल से गिरा और नीचे जमीन पर नहीं आ पाया लेकिन आएगा अवश्य, वैसे ही नीचे आने वाले मनुष्य की जमीन से ऊपर की अवस्था के समान सम्यक्त्व रूपी मंजिल से गिरकर मिथ्यात्व रूपी भूमि पर आने वाले जीव की मिथ्यात्व के पूर्व की अवस्था का नाम सासादन गुणस्थान है।

3. **सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान**- सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित भाव का होना सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान है। जैसे मिश्रित किए गए दही और गुड़ के स्वाद विशेष के समान जब आत्मा सम्यग्दर्शन रूप सुतत्त्व श्रद्धा या वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की पूजा के साथ-साथ मिथ्यादर्शन रूप कुतत्त्व श्रद्धा या सरागी देव-गुरुआदिक की पूजा करने रूप मिश्रित श्रद्धा होती है या दोनों (वीतरागी, सरागी सब) देवों की भक्ति से पुण्य होगा ऐसा निश्चयात्मक श्रद्धान होता है वह सम्यग्मिथ्यात्व या मिश्र गुणस्थान कहलाता है।

4. **असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान** - जिसकी दृष्टि अर्थात् श्रद्धा समीचीन होती है उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। वह जब पञ्च इन्द्रियों के विषय एवं त्रस व स्थावर जीवों की हिंसा से विरक्त नहीं है तब असंयत या अव्रती कहलाता है। ऐसे सम्यग्दृष्टि जीव तीन प्रकार के होते हैं। 1. क्षायिक सम्यग्दृष्टि 2.वेदक या क्षयोपशमिक सम्यग्दृष्टि और 3. औपशमिक सम्यग्दृष्टि ।

   सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्रिय विषय या षट् जीवनिकाय की हिंसा से विरत न होने पर सर्वथा अव्रती नहीं होता किन्तु कुलाचार (जैन कुलाचार) रूप सप्तव्यसन, रात्रिभोजन और बिना छना जल त्याग रूप व्रतों का धारक अवश्य होता है। सरागी विषयी देवगति के देव-देवी और परिग्रही गुरु आदिक की उपासना से वह रहित होता है।

   वह सम्यग्दृष्टि जीव वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु व सप्त तत्त्वों पर श्रद्धा करता हुआ निःशंकित आदिक अष्ट अंगों व प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि गुणों को धारण करता है। तथा पुत्र, स्त्री और वैभव आदिक पर गर्व न करता हुआ अपने आपको तृण समान समझता है। जो उत्तम गुणों के ग्रहण करने में तत्पर रहता है, उत्तम साधुओं की विनय करता है तथा साधर्मी जनों से अनुराग करता है। संसार शरीर और भोगों में हेय बुद्धि को धारण करने वाला वह मोक्ष का पिपासु असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान वाला कहलाता है।

5. **संयतासंयत गुणस्थान** - जो जीव एकमात्र वीतरागी पञ्च परमेष्ठी में ही श्रद्धा रखता है तथा त्रस जीवों के घात से विरत है और इन्द्रिय विषयों से एवं स्थावर जीवों के घात से विरक्त नहीं है वह जीव विरताविरत या संयतासंयत कहलाता है। वह संयतासंयत जीव पांच अणुव्रतों के साथ-साथ तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत रूप सप्त शीलों में संयुक्त होता हुआ गुणश्रेणी रूप कर्मनिर्जरा का पात्र होता है।

6. **प्रमत्तसंयत गुणस्थान**-जो पुरुष प्राणी संयम एवं इन्द्रिय संयम रूप सकल संयम से सहित होकर पञ्च महाव्रत आदि अट्ठाईस मूलगुणों और शील अर्थात् बारह तपादिक उत्तर गुणों से युक्त होकर भी व्यक्त और अव्यक्त (बाहरी और भीतरी) प्रमाद से सहित रहता है वह प्रमत्त संयत कहलाता है।

7. **अप्रमत्तसंयत गुणस्थान**-जो व्यक्त और अव्यक्त रूप समस्त प्रकार के प्रमाद से रहित है,

वह सकल संयमी मूलोत्तर गुणों का धारी है, स्व और पर के ज्ञान से युक्त है तथा शुभ ध्यान में सदा लीन है वह अप्रमत्त संयत कहलाता है।

इस सप्तम गुणस्थान के दो भाग होते हैं, एक स्वस्थान अप्रमत्त और दूसरा सातिशय अप्रमत्त। पूर्व कथित भूमिका वाले मुनिराज प्रवृत्ति सहित हों या प्रवृत्ति रहित हों या ध्यान में लीन हों, उनका गुणस्थान स्वस्थान अप्रमत्त होता है और जो मुनि अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान की प्राप्ति के सम्मुख हों, उनका गुणस्थान सातिशय अप्रमत्त नामक सातवां गुणस्थान होता है।

आगे आने वाले अपूर्वकरण नामक आठवें गुणस्थान से दो श्रेणियां प्रारम्भ होती हैं। पहली उपशम श्रेणी और दूसरी क्षपक श्रेणी।

(1) **उपशमश्रेणी**-उपशमश्रेणी में चार गुणस्थान होते हैं - अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्तमोह।

जहाँ मोहनीय कर्म का उपशम करता हुआ आत्मा आगे बढ़ता है वह उपशम श्रेणी है। जैसे गंदले पानी में फिटकरी डालने पर पानी का कचरा नीचे जम जाता है उसी तरह उपशम श्रेणी में आत्मा अपने पुरुषार्थ से मोहनीय कर्म या कषायों को नीचे दबाकर उपशान्त कर देता है। लेकिन पानी के हिलते ही जैसे कचरा ऊपर आ जाता है वैसे ही अंतर्मुहूर्त के भीतर आत्म पुरुषार्थ के ढीले होते ही मोहनीय कर्म की वजह से वह नियम से नीचे वाले गुणस्थानों में आ जाता है।

(2) **क्षपक श्रेणी**- क्षपक श्रेणी में भी चार गुणस्थान होते हैं अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्म साम्पराय को प्राप्त करता हुआ आत्मा ग्यारहवें उपशान्त मोह गुणस्थान में न जाकर सीधा बारहवें क्षीणकषाय गुणस्थान को प्राप्त होता है। जिस श्रेणी में मोहनीय कर्म का क्षय करता आत्मा श्रेणी के गुणस्थानों से होते हुए आगे बढ़ता है, वह क्षपक श्रेणी कहलाती है। जैसे कि फिटकरी से शुद्ध किए गए जल के नीचे वाले कचरे को नीचे-के-नीचे ही किसी टोंटी से बाहर निकाल दिया जाता है, उसी तरह मोहनीय कर्म का क्षय करता हुआ आत्मा आगे बढ़ते हुए हमेशा के लिए मोहनीय कर्म से रहित हो जाता है। कभी भी वह पीछे के गुणस्थानों में नहीं आता।

8. **अपूर्वकरण गुणस्थान** - इस गुणस्थान में संज्वलन कषाय का मन्दोदय होने से पूर्व में अप्राप्त ऐसे परम आह्लाद सुख के अनुभव रूप अपूर्व-अपूर्व (नए-नए) परिणाम होने से इस गुणस्थान में होने वाले उपशमक और क्षपक अपूर्वकरण नामक अष्टम गुणस्थानवर्ती कहलाते हैं।

9. **अनिवृत्तिकरण गुणस्थान**- समान समयवर्ती जीवों के परिणामों की भेद रहित वृत्ति को निवृत्ति कहते हैं, देखे, सुने और अनुभव किए हुए भोगों की वांछादि रूप सम्पूर्ण संकल्प-विकल्प रहित अपने निश्चल परमात्म स्वरूप के एकाग्र ध्यान के परिणाम से

जिन जीवों के एक समय में परस्पर निवृत्ति अर्थात् अन्तर या भेद नहीं होता वे वर्ण तथा संस्थान के भेद होने पर भी अनिवृत्तिकरण उपशमक व क्षपक संज्ञा के धारक नवम गुणस्थानवर्ती जीव कहलाते हैं।

10. **सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान**-सूक्ष्म (फीकी) लालिमा के सदृश सूक्ष्म राग सहित या सूक्ष्म कषाय सहित जीव को सूक्ष्म उपशमक या क्षपक जानना चाहिए। ऐसा सूक्ष्म कषाय (सूक्ष्म लोभ) को इसी दसवें गुणस्थान में क्षय कर क्षपक जीव सीधा क्षीण कषाय नामक बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है और जो सूक्ष्म कषाय का उपशम करता है वह उपशान्त कषाय नामक ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है।

11. **उपशान्तकषाय गुणस्थान**-फिटकरी (कतक फल) से सहित जल अथवा शरद काल में सरोवर का पानी जिस प्रकार निर्मल होता है, उसी तरह जिसका सम्पूर्ण मोहकर्म सर्वथा उपशान्त हो गया है ऐसा उपशान्त कषाय गुणस्थानवर्ती जीव अत्यन्त निर्मल परिणाम वाला होता है। जिनका राग नष्ट हो गया हो उन्हें 'वीतराग' कहते हैं 'छद्म' ज्ञानावरण और दर्शनावरण के साथ होने वाले अज्ञान को कहते हैं, उनमें जो रहते हैं, उन्हें वीतराग छद्मस्थ कहते हैं। जो उपशान्तकषाय होते हुए भी वीतराग छद्मस्थ हैं, वे उपशान्त कषाय वीतराग छद्मस्थ कहलाते हैं।

12. **क्षीणकषाय गुणस्थान**-मोह कर्म के निःशेष क्षीण हो जाने से जिसका चित्त स्फटिक मणि के निर्मल भाजन में रक्खे हुए सलिल के समान स्वच्छ हो गया है, ऐसे निर्ग्रन्थ साधु को वीतरागियों ने क्षीणकषाय गुणस्थान वाला संयत कहा है। जिस प्रकार फिटकरी आदिक से स्वच्छ किया हुआ जल शुद्ध-स्वच्छ स्फटिक मणि के भाजन में निथार लेने पर सर्वथा निर्मल और शुद्ध होता है, उसी तरह क्षीण कषाय गुणस्थानवर्ती संयत को भी निर्मल स्वच्छ एवं शुद्ध परिणाम वाला जानना चाहिए। इन्हें क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ भी कहते हैं।

13. **सयोगकेवली गुणस्थान**-जिनका केवलज्ञान रूपी सूर्य की किरणों से अज्ञान नष्ट हो गया है, जो केवलज्ञानी होने से परमात्म संज्ञा को प्राप्त हुए हैं, वे असहाय (इन्द्रियों की सहायता से रहित) ज्ञान और दर्शन से युक्त होने से केवली, तीनों योगों से युक्त होने के कारण सयोगी और घाति कर्मों से रहित होने कारण जिन कहलाते हैं। इन सभी विशेषणों युक्त आत्मा सयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थानवर्ती कहलाती है। इनका पुनः संसार में जन्म धारण न होने से ये जीवन मुक्त भी कहे जाते हैं।

14. **अयोगकेवली गुणस्थान**-जो अठारह हजार शीलों के स्वामी हैं, जो आस्रव से रहित हैं, जो मन,वचन, काय, वर्गणा के अवलम्बन से कर्मों के ग्रहण करने में कारण, जो आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन रूप मन-वचन-काय योग है, उससे रहित हैं और केवलज्ञान से विभूषित हैं, वे चौदहवें गुणस्थानवर्ती अयोगी जिन कहलाते हैं। ये अष्ट कर्मों से रहित

हो जाने से आगे सिद्ध अवस्था में कर्म मुक्त कहलाते हैं।

प्रश्न 3. किन-किन गुणस्थानों से जीव ऊपर वाले गुणस्थानों को प्राप्त करते हैं एवं किन-किन गुणस्थानों से जीव नीचे वाले गुणस्थानों को प्राप्त करते हैं अर्थात् गुणस्थान में रहने वाले जीवों का आरोहण-अवरोहण क्रम क्या है?

उत्तर - गुणस्थान में रहने वाले जीवों का आरोहण-अवरोहण का क्रम चार्ट में देखिए -
(जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश के भाग 2 - पृष्ठ 247 के अनुसार)।

गुणस्थानों के आरोहण-अवरोहण सम्बन्धी नियम चार्ट

नं.	गुणस्थान	आरोहण क्रम	अवरोहण क्रम
1.	मिथ्यादृष्टि		
	अनादि	उपशम सम्यक्त्व सहित 4,5,7	
	सादि	3,4,5,7	
2.	सासादन	×	1
3.	मिश्र	4	1
4.	असंयत-		
	उपशम सम्यग्दृष्टि	5,7	3, 2 (सासादन पूर्वक), 1
	क्षायिक सम्य	5,7	×
	क्षयोपशमिक सम्य.	5,7	3,1
5.	संयतासंयत	7	4,3,2,1
6.	प्रमत्तसंयत	7	5,4,3,2,1
7.	अप्रमत्तसंयत	8	6 (मृत्यु होने पर देवों में जन्म चौथा गुणस्थान)
8.	अपूर्वकरण	9	7 (मृत्यु होने पर देवों में जन्म चौथा गुणस्थान)
9.	अनिवृत्तिकरण	10	8 (मृत्यु होने पर देवों में जन्म चौथा गुणस्थान)
10.	सूक्ष्मसम्पराय	11,12	9 (मृत्यु होने पर देवों में जन्म चौथा गुणस्थान)
11.	उपशांत कषाय	×	10 (मृत्यु होने पर देवों में जन्म चौथा गुणस्थान)
12.	क्षीण कषाय	13	×
13.	सयोग केवली	14	×
14.	अयोग केवली	सिद्ध	×

प्रश्न 4. चौदह गुणस्थान किन-किन गतियों में किन-किन जीवों के होते हैं?

उत्तर -

- प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान चारों गति में मिथ्यादृष्टि जीवों के होता है।
- दूसरा सासादन गुणस्थान चारों गति के उपशम सम्यक्त्व को छोड़कर नीचे मिथ्यात्व गुणस्थान की ओर आने वाले जीव का होता है।
- तीसरा सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान चारों गति के जीवों के प्रथम गुणस्थान से आरोहण के समय एवं चौथे, पाँचवें और छठवें से अवरोहण के समय होता है।

- चौथा असंयत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान चारों गति के मिथ्यात्व को छोड़कर समीचीन श्रद्धा रखने वाले जीव का होता है।
- पाँचवा संयतासंयत गुणस्थान सम्यग्दर्शन के धारी आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका, प्रतिमाधारी एवं अणुव्रत मात्र के स्थान को प्राप्त करने वाले जीव का होता है।

  (इनमें सम्यग्दर्शन सहित पञ्च अणुव्रत तिर्यञ्च गति और मनुष्य गति इन दोनों में सम्भव हैं लेकिन आर्यिका, ऐलक क्षुल्लक एवं सामायिक आदि प्रतिमाओं का स्थान केवल मनुष्यगति में ही होता है)
- छठवां प्रमत्त संयत गुणस्थान इस मनुष्यगति में 28 मूलगुणों सहित मुनि के होता है। इसके आगे के भी सभी गुणस्थान मनुष्यगति के मुनिव्रत धारक जीवों को ही सम्भव हैं।
- सातवां अप्रमत्त संयत गुणस्थान त्रिगुप्ति (मन,वचन,काय गुप्ति) से सहित मुनिवर के ही होता है। (ध्यान सामायिक की अवस्था के अलावा शुभ भावना से युक्त समिति, षट् आवश्यक आदिक का पालन करते समय भी गुप्तियां रह सकती हैं)
- उपशम श्रेणी वाला आठवां अपूर्वकरण गुणस्थान, नौवां अनिवृत्तिकरण गुणस्थान, दसवां सूक्ष्मसाम्पराय और ग्यारहवां उपशान्तकषाय गुणस्थान उपशम श्रेणी पर चढ़ने वाले मुनिवर का होता है।
- क्षपक श्रेणी वाला आठवां अपूर्वकरण गुणस्थान, नौवां अनिवृत्तिकरण गुणस्थान, दसवां सूक्ष्मसाम्पराय और बारहवां क्षीण कषाय, क्षपक श्रेणी पर चढ़ने वाले मुनिवर का होता है।
- तेरहवां सयोग केवली गुणस्थान केवलज्ञानी सयोगी अरहंत भगवान का होता है।
- चौदहवां अयोग केवली गुणस्थान केवलज्ञानी अयोगी भगवान का होता है।

इन चौदह गुणस्थानों से अतीत होने पर आत्मा मोक्ष पद को प्राप्त कर सिद्ध परमेष्ठी अवस्था रूप में अनन्त काल के लिए अनन्त सुख के साथ सिद्धालय में विराजमान हो जाती है।

अध्याय 19.
अध्यात्म में उपयोग एवं स्वरूपाचरण

अध्यात्म की गहराइयों तक न पहुँच पाने के कारण आज के कुछ कमजोर उपादान वाले लोगों के लिए उपयोग (जो कि अशुभ, शुभ और शुद्ध के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है) एवं स्वरूपाचरण के विषय में व उसके धारक स्वामी तथा गुणस्थान का आगमपरक परिज्ञान न होने से भ्रान्तियों के जंगल में भटकना पड़ रहा है; उन्हें लक्ष्य कर आगमानुसार उपयोगों के साथ-साथ होने वाले शुभाशुभ भावों एवं उनके फलों का वर्णन यहाँ किया है। तथा स्वरूपाचरण के साथ निश्चय चारित्र की सामञ्जस्यता कैसे, उसके स्वामी, गुणस्थान की चर्चा भी की गई है। इसी तरह योग्यतानुसार समयसार ग्रन्थ के पढ़ने की महिमा, शुद्धात्मानुभूति, निर्विकल्प समाधि, स्वात्मानुभूति आदि की योग्यता का कथन करते हुए यह भी कहना आवश्यक प्रतीत हुआ कि ध्यान रूपी रथ की धुरी को कौन धारण कर सकता है? इत्यादि विषयों के कहने का मूल उद्देश्य यही रहा कि भव्य अध्यात्म की ऊँचाइयों को त्यागी पुरुषार्थी बन अवश्य छू सकता है। इसी भावना से उन्नीसवां अध्याय 'अध्यात्म में उपयोग और स्वरूपाचरण' नामक वर्णित हुआ है।

प्रश्न 1. अध्यात्म में उपयोग के कितने भेद होते हैं?

उत्तर - अध्यात्म में उपयोग के शुद्धोपयोग, शुभोपयोग और अशुभोपयोग ये तीन भेद होते हैं।

प्रश्न 2. उपयोग की प्राप्ति का क्रम किस प्रकार है?

उत्तर - आचार्य कुन्दकुन्दस्वामी ने अपने वारसाणुवेक्खा ग्रन्थ में कहा है कि -

सुहजोगस्स पवित्ती संवरणं कुणदि असुहजोगस्स।
सुहजोगस्स णिरोहो सुद्धुवजोगेण संभवदि॥63॥

अर्थात् शुभोपयोग में प्रवृत्ति अशुभोपयोग का संवर (निरोध) करती है, जबकि शुभोपयोग का निरोध शुद्धोपयोग में प्रवृत्त होने पर हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि अशुभोपयोग को तो बुद्धिपूर्वक छोड़कर शुभोपयोग में प्रवृत्ति की जाती है अर्थात् पञ्च पापादिक छोड़कर व्रतादिक रूप आचरण किया जाता है। जबकि शुभोपयोग को छोड़ा नहीं जाता बल्कि जब अप्रमत्त अवस्था में वीतराग चारित्र रूप शुद्धोपयोग में यह आत्मा लीन हो जाती है तो शुभोपयोग स्वयमेव छूट जाता है। यह शुद्धोपयोग अधिक-से-अधिक अन्तर्मुहूर्त मात्र तक ही रह सकता है तथा प्रमत्त दशा में आने पर शुभोपयोग में ही प्रवृत्ति करना पड़ती है।

इस उपर्युक्त गाथा से एक बात और स्पष्ट हो जाती है कि आत्मा में एक समय में एक

ही उपयोग होता है। जिस समय शुभोपयोग होता है उस समय अशुभोपयोग का निरोध रहता है तथा जब शुभोपयोग है तो उस समय शुद्धोपयोग भी नहीं हो सकेगा।

प्रश्न 3. किस-किस गुणस्थान में कौन-कौन सा उपयोग होता है?

उत्तर - प्रवचनसार ग्रन्थ में कहा गया है कि -

जीवो परिणमदिजदा सुहेण असुहेण वा सुहो असुहो ।
सुद्धेण तदा सुद्धो हवदि हि परिणामसब्भावो ॥9॥

अर्थात् परिणाम का सद्भाव होने से जीव जब शुभ व अशुभ रूप परिणाम करता है तब शुभ से शुभोपयोगी और अशुभ से अशुभोपयोगी होता है और जब शुद्ध रूप से परिणमन करता है तब निश्चय से या वास्तव में शुद्धोपयोगी होता है।

इसी गाथा की पूज्य जयसेनाचार्य द्वारा रचित टीका के अन्तिम भाग में उपयोगों का गुणस्थान परक विवेचन एवं शुद्धोपयोग का फल बड़ी अच्छी तरह वर्णित किया गया है जो इस प्रकार है -.....**''अत्र प्राभृतशास्त्रे तान्येव गुणस्थानानि संक्षेपेणाशुभाशुभ शुद्धोपयोग रूपेण कथितानि। कथमिति चेत्-मिथ्यात्वसासादनमिश्र- गुणस्थानत्रये तारतम्येनाशुभोपयोगः तदनन्तरमसंयतसम्यग्दृष्टि देशविरतप्रमत्तसंयत गुणस्थानत्रये तारतम्येन शुभोपयोगः तदनन्तरमप्रमत्तादिक्षीणकषायान्त गुणस्थानषट्के तारतम्येन शुद्धोपयोगः तदनन्तरं सयोग्ययोगिजिन गुणस्थानद्वये शुद्धोपयोगफलमिति भावार्थः ॥9॥''**

यहाँ प्राभृत शास्त्र में वे ही गुणस्थान संक्षिप्त रूप से अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग रूप से कहे गए हैं। किस प्रकार से कहे गए हैं ऐसा पूछो तो-मिथ्यात्व, सासादन और मिश्र-इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से (घटता हुआ) अशुभोपयोग। इसके बाद असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरत और प्रमत्तसंयत इन तीन गुणस्थानों में तारतम्य से (बढ़ता हुआ) शुभोपयोग, इसके आगे अप्रमत्त संयत गुणस्थान से क्षीण कषाय पर्यंत छह गुणस्थानों में तारतम्य से (बढ़ता हुआ) शुद्धोपयोग इसके बाद सयोगीजिन और अयोगीजिन ये दो गुणस्थान शुद्धोपयोग के फल हैं।

प्रश्न 4. शुद्धोपयोग से परिणत आत्मा का स्वरूप किस प्रकार से होता है?

उत्तर - आचार्य श्री कुन्दकुन्द देव ने प्रवचनसार ग्रन्थ में कहा है कि -

सुविदिदपयत्थसुत्तो संजमतवसंजुदो विगदरागो।
समणो समसुहदुक्खो भणिदो सुद्धोवओगो त्ति॥1-14॥

जिसने आत्मादि पदार्थों के प्रतिपादक सूत्र को अच्छी तरह से जान लिया है, जो संयम और तप से सहित है, वीतरागी है और सुख-दुख में हर्ष-विषाद से रहित समता शील है, वह श्रमण ही शुद्धोपयोग रूप है अर्थात् शुद्धोपयोगी है।

प्रश्न 5. श्रमण की परिभाषा और चर्या क्या है?

उत्तर - प्रवचनसार में कहा गया है कि -

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठु कंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥ 3-41

जो शत्रु और बंधुवर्ग में, सुख और दुख में, प्रशंसा और निंदा में, स्वर्ण तथा पाषाण में एवं जीवन और मरण में सम अर्थात् समान भाव रखने वाला होता है, वही श्रमण है।

प्रश्न 6. शुभोपयोग का स्वरूप किस प्रकार है?

उत्तर - आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने प्रवचनसार में कहा है कि -

जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स ॥2-65॥

जो उपयोग, अठारह दोषों से रहित तथा अनन्तज्ञानादि चतुष्टय एवं चौंतीस अतिशयों से सहित परमभट्टारक देवाधिदेव अरहंत भगवान को जानता है, ज्ञानावरणादि आठ कर्मों से रहित सिद्ध भगवान को देखता है एवं उसी प्रकार आचार्य उपाध्याय तथा साधु परमेष्ठी की आराधना करता है। और समस्त जीवों के प्रति अनुकंपा रखता है, वह उपयोग शुभोपयोग है।

प्रश्न 7. शुभोपयोग यह कौन सा भाव है?

उत्तर - यह शुभोपयोग दर्शनमोहनीय तथा-चारित्र मोहनीय कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होने के कारण क्षयोपशम भाव है। यह शुभोपयोग औदायिक भाव नहीं है।

सर्वप्रथम प्रवचनसार में अमृतचन्द्रसूरि ने ही अपनी टीका (गा. 2-65 की) में शुभोपयोग को क्षयोपशमिक भाव माना है। यथा-''**विशिष्ट क्षयोपशमदशा- विश्रांत दर्शनचारित्रमोहनीय पुद्गलानुवृत्तिपरत्वेन परिग्रहीतशोभनोपरागत्वात् परम भट्टारक महादेवाधिदेव परमेश्वरार्हत्सिद्ध साधु श्रद्धाने समस्त भूतग्रामानुकम्पाचरणे च प्रवृत्तःशुभ उपयोगः।**''

अर्थात् दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय कर्म की विशिष्ट क्षयोपशम दशा होने पर ग्रहण किए गए शुभराग से परमभट्टारक देवाधिदेव अर्हन्त परमेष्ठी, सिद्ध परमेष्ठी, साधु परमेष्ठी में श्रद्धान रूप भक्ति तथा समस्त जीव समूहों में अनुकंपा रूप आचरण होना शुभोपयोग है।

प्रश्न 8. औपशमिक आदि पंच भाव किसमें कारण हैं अथवा ये क्या करते हैं?

उत्तर - धवल पुस्तक 6, पृ. 9 पर एवं जयधवल पुस्तक 1, पृ. 5 पर कहा है कि-

ओदइया बंधयरा उवसम-खय-मिस्सयाय मोक्खयरा।
भावो दु पारिणामिओ करणोभयवज्जियो होंति॥

इसी तरह समयसार, तात्पर्यवृत्ति पृष्ठ 374 पर कहा है कि -

मोक्षं कुर्वन्ति मिश्रोपशमिक क्षायिकाभिधाः ।
बन्धमौदयिको भावो निष्क्रियः परिणामिकाः ॥387॥

अर्थात् औपशमिक, क्षायोपशमिक तथा क्षायिक भाव मोक्ष को करते हैं तथा औदयिक भाव बन्ध के कारण हैं। जबकि पारिणामिक भाव बन्ध और मोक्ष के कारणों से रहित-निष्क्रिय हैं।

प्रश्न 9. कोई व्यक्ति अगर शुभोपयोग को केवल बन्ध का कारण माने और संवर, निर्जरा का कारण न माने तो क्या हानि है?

उत्तर - शुभोपयोग को औदयिक भाव मानकर केवल बंध का हेतु बतलाना आगम को सही रूप नहीं समझना है। शुभोपयोग क्षायोपशमिक भाव होने का कारण संवर और निर्जरा का हेतु है जैसा कि आचार्य वीरसेन स्वामी ने ग्रन्थराज 'कषायपाहुड' परमागम की जयधवला टीका में भी कहा है - ''**सुह-सुद्ध परणामेहिं कम्मक्खयाभावे तक्खयाणुववत्तीदो।**'' अर्थात् यदि शुभ और शुद्ध परिणामों से कर्मों का क्षय होना न माना जाए तो फिर कर्मों का क्षय हो ही नहीं सकता।

इसी तरह शुभोपयोग के सम्बन्ध में प्रचनसार की ''एसा पसत्थमूदा'' इस गाथा की टीका में अमृतचन्द्र सूरि ने कहा है कि ''**क्रमतः परम निर्वाणसौख्यकारणत्वाच्च मुख्यः**''।

अर्थात् प्रशस्त शुभोपयोग परंपरा से निर्वाण का कारण है। ऐसा भी कहा गया है। अणुव्रत और महाव्रत भी प्रत्याख्यानावरण और अप्रत्याख्यानावरण कषाय के क्षयोपशम से होने के कारण क्षायोपशमिक भाव हैं अतः वे बन्ध के कारण नहीं होते। इन व्रतों के काल में जो अन्य कषायों का उदय है वह बन्ध का कारण माना गया है।

प्रश्न 10. शुभोपयोग से संयुक्त श्रावकों की चर्या किस प्रकार होती है?

उत्तर - आचार्य कुन्दकुन्द देव ने पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ में कहा है कि -

अरहंतसिद्धसाहुसु भत्ती धम्मम्मि जाय खलु चेट्ठा।
अणुगमणं पि गुरुणं पसत्थरागो त्ति वुच्चंति ॥ 1-36 ॥

अर्थात् अरहंत, सिद्ध और साधु परमेष्ठी में भक्ति होना, व्यवहार रत्नत्रय रूप धर्म में प्रवृत्ति का होना तथा वीतरागी गुरुओं के-अनुकूल चलना, यह प्रशस्तराग या शुभोपयोग है, ऐसा पूर्व महर्षिजन कहते हैं।

प्रश्न 11. शुभोपयोगी श्रमणजनों की चर्या किस प्रकार होती है?

उत्तर - प्रवचनसार में कहा गया है कि -

दंसणणाणुवदेसो सिस्सग्गहणं च पोसणं तेसिं।
चरिया हि सरागाणं जिणिंद पूजोवदेसो य ॥3-65 ॥

दर्शन और ज्ञान का उपदेश देना, रत्नत्रय आराधना करने के इच्छुक मुमुक्षुओं को दीक्षा प्रदान कराना तथा उन्हें उनकी आवश्यक क्रियाओं-चर्या आदि के शिक्षण के माध्यम से उनका पोषण करना तथा श्रावकों को भगवान की पूजा आदि करने का उपदेश देना, यह सब शुभोपयोगी श्रमणों की चर्या है।

उपर्युक्त कार्यों में से श्रुतज्ञान या समीचीन उपदेश देने वाले मुनि उपाध्याय कहलाते हैं

और संसार से मुक्त होने की इच्छा रखने वाले मुमुक्षुओं को दीक्षा और प्रायश्चित्त आदि देने वाले सुयोग्य मुनियों को आचार्य परमेष्ठी कहते हैं।

प्रश्न 12. शुभोपयोग में स्थित मुनिजन किसका ध्यान करते हैं?

उत्तर - आचार्य कुन्दकुन्द देव ने भावपाहुड में कहा है कि-

झायहि पञ्च वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए।
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥123॥

हे मुनि! मनुष्य, देव और विद्याधरों से आराधिक श्रेष्ठ आराध्य वीर-महावीर भगवान तथा लोक में उत्तम, मंगल एवं शरण-स्वरूप पाँच परमेष्ठियों का ध्यान करो।

प्रश्न 13. शुद्धोपयोग में स्थित मुनिजन किसका ध्यान करते हैं?

उत्तर - आचार्य कुन्दकुन्द देव ने समयसार में कहा है कि शुद्धोपयोग की भूमिका में बैठा हुआ श्रमण यह भावना करता है कि -

अहमिक्को खलु सुद्धो दंसणणाणमइओ सदारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिवि अण्णं परमाणुमित्तंपि ॥43॥

निश्चय से मैं एकाकी हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन- ज्ञानमयी हूँ, सदा अरूपी हूँ। परमाणु मात्र भी परद्रव्य मेरा नहीं है।

प्रश्न 14. आज पंचम काल में 'झायहि पञ्च वि गुरवे' इस गाथानुसार पञ्चपरमेष्ठी रूप परात्मा के ध्यान वाले शुभोपयोगी मुनिजन और अहमिक्को खलु सुद्धो' इस गाथानुसार स्वात्मा के ध्यान में लीन शुद्धोपयोगी मुनियों का कौन-सा ध्यान होता है एवं आज ऐसे परात्मा व स्वात्मा रूप आत्मध्यान या आत्म स्वभाव में स्थित होकर वे मुनिजन किस प्रकार के फल को प्राप्त करते हैं?

उत्तर - जो व्यक्ति इस भरत क्षेत्र तथा पञ्चम काल में मोक्ष के साधन-भूत ध्यान की उत्पत्ति या प्राप्ति नहीं मानते हैं, उन्हें लक्ष्यकर व ध्यान की महिमा बताते हुए आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी मोक्षपाहुड में कहते हैं कि -

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥76
अज्जवि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहदि इंदत्तं।
लोयंतियदेवत्तं तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति॥ 77॥

अर्थात् इस भरत क्षेत्र एवं पञ्चमकाल में भी आत्म-स्वभाव में स्थित साधु के धर्मध्यान होता है, जो व्यक्ति ऐसा नहीं मानता है, वह अज्ञानी है।

आज भी जो मुनिजन भेदाभेद रूप व्यवहार और निश्चय रत्नत्रय के द्वारा शुद्ध आत्मा का ध्यान करते हैं, वे इन्द्र पद और लौकान्तिक देव पद को प्राप्त होते हैं तथा वहाँ से आकर मनुष्य भव को प्राप्त कर निर्वाण मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।

प्रश्न 15. उपर्युक्त ऐसे भावलिङ्गी मुनि पञ्चम काल में कब तक रहेंगे एवं अंतिम मुनि के समय क्या विशेष घटना होगी।

उत्तर - शुभोपयोग और शुद्धोपयोग से सहित आत्मस्वभाव में लीन होने वाले भावलिङ्गी मुनि पञ्चम काल के अंत तक अर्थात् आज से लगभग साढ़े अठारह हजार वर्ष तक होते रहेंगे और जैन धर्म का प्रभाव एवं श्रावक मुनिधर्म के पालन रूप में भगवान महावीर का धर्म शासन का काल चलता रहेगा।

उत्तरपुराण के सर्ग 16 श्लोक 431 में आचार्य गुणभद्र स्वामी कहते हैं कि पञ्चम काल में एक-एक हजार वर्ष के बाद क्रमशः होने वाले (धर्मनाशक) कल्कियों के अंतिम राजा के रूप में 'जलमन्थन' नामक अंतिम कल्कि होगा उस समय 'चन्द्राचार्य' के शिष्य 'वीरागंज' मुनि होंगे वहीं सर्वश्री आर्यिका, अग्निल श्रावक और फल्गूसेना नामक श्राविका होगी। ये अयोध्या नगरी के उत्तम व्रत के धारण करने वाले उत्तम धर्मात्मा होंगे। पंचम काल के 3 वर्ष साढ़े आठ माह बाकी रहने पर कार्तिक मास के अंतिम दिन प्रातःकाल के समय स्वाति नक्षत्र का उदय रहते हुए सल्लेखना से मरण करके प्रथम स्वर्ग में जाएंगे। उसी दिन मध्याह्न काल में राजा का भी मरण हो जाएगा एवं सायंकाल में अग्नि नाश को प्राप्त हो जाएगी। तथा इसके बाद धर्म, कर्म की व्यवस्था का भी अंत हो जाएगा।

प्रश्न 16. आज पञ्चम काल में होने वाले सम्यग्दृष्टि भावलिङ्गी मूलगुणादिक के धारक मुनियों को जो पूज्य नहीं मानता उनका आदर नहीं करता वह कौन होता है?

उत्तर - निर्ग्रन्थ नग्न दिगम्बर मुद्रा का अनादर करने वाला मिथ्यादृष्टि होता है ऐसा आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने निम्नलिखित गाथाओं द्वारा अष्टपाहुड में कहा है -

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो॥24॥
अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं।
ये गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति॥25॥(द.प.)

अर्थात् मात्सर्य भाव (ईर्ष्या) के कारण जो व्यक्ति सहजोत्पन्न निर्ग्रन्थ (दिगम्बर) मुद्रा को देखने के योग्य नहीं मानता अथवा उनका आदर नहीं करता, वह मिथ्यादृष्टि होता है, चाहे वह संयमी ही क्यों न हो।

देवों द्वारा भी वंदनीय, शील से सहित निर्ग्रन्थ मुद्रा को देखकर जो अपने को बड़ा मानते हैं, वे भी सम्यग्दर्शन से रहित हैं।

प्रश्न 17. एक संयमी आचार्य व उपाध्याय भी किन्हीं निर्ग्रन्थ साधुओं को नमस्कार करके उनका आदर करेंगे क्या?

उत्तर - हाँ, णमो लोए सव्वसाहूणं बोलते हैं न; क्योंकि वे सम्यक्त्व से सहित हैं। यही उपर्युक्त

'सहजुप्पण्णं रूप' आदि दो गाथाओं का भाव समझना चाहिए। तात्पर्य यह हुआ कि आत्म ध्यान से बाहर आने पर एक सम्यग्दृष्टि निर्ग्रन्थ दूसरे सम्यग्दृष्टि निर्ग्रन्थ से जब समीचीन व्यवहार या समाचार रूप क्रिया को करते हुए नमस्कार इत्यादिक मांगलिक कार्य करते हैं, तब जो गृहस्थ सम्यग्दृष्टि हैं उन्हें ऐसे सम्यग्दृष्टि साधुओं की आदर वन्दनादिक क्रियायें कभी भूलना नहीं चाहिए, नहीं तो सम्यक्त्व से विवर्जित हो जाएंगे।

प्रश्न 18. अशुभोपयोग का स्वरूप किस प्रकार है ?

उत्तर - प्रवचनसार ग्रन्थ में कहा गया है कि -

विसयकसाओगाढो दुस्सुदिदुच्चित्तदुट्ठगोट्ठिजुदो।
उग्गो उम्मग्गपरो उवओगो जस्स सो असुहो ॥2-66॥

जो उपयोग विषय-कषायों में आकण्ठ डूबा हुआ है, जो मिथ्या शास्त्रों में, आर्त्त-रौद्र रूप खोटे ध्यानों में तथा शील रहित पुरुषों की संगति में प्रवृत्त है, पापाचरण में उग्र है तथा उन्मार्ग में तत्पर है, वह अशुभोपयोग है।

प्रश्न 19. अशुभोपयोग, शुभोपयोग और शुद्धोपयोग का फल क्या है ?

उत्तर - आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने बारसाणुवेक्खा (द्वादशानुप्रेक्षा) में कहा है कि-

असुहेण णिरयतिरियं सुहउवजोगेण दिविजणरसोक्खं।
सुद्धेण लहइ सिद्धिं एवं लोयं विचिंतिज्जो॥42॥

अशुभोपयोग से यह जीव नरक और तिर्यञ्च गति के दुःखों को प्राप्त करता है तथा शुभोपयोग से स्वर्ग एवं मनुष्य गति के सुखों को प्राप्त करता है जबकि इन दोनों से भिन्न शुद्धोपयोग से मोक्ष सुख की प्राप्ति करता है। इस तरह से लोक चिंतन करना चाहिए।

प्रश्न 20. स्वरूपाचरण रूप निश्चय चारित्र का स्वरूप क्या है एवं वह किस आत्मा के किस गुणस्थान में प्राप्त होता है ?

उत्तर - प्रवचनसार ग्रन्थ में कहा गया है कि -

चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समोत्ति णिद्दिट्ठो ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो ॥1-7 ॥

चारित्र ही धर्म है तथा वह चारित्र समताभाव रूप कहा गया है। मोह और क्षोभ से रहित आत्मा का परिणाम ही समता है।

यहाँ मोह शब्द का वाच्यार्थ दर्शनमोह तथा क्षोभ शब्द का वाच्यार्थ चारित्र मोह है। चूंकि चारित्र मोहनीय कर्म का उदय दसवें गुणस्थान तक रहता है, अतः वहाँ तक इस प्रकार के समता रूप चारित्र की उत्पत्ति नहीं है अतः क्षपक श्रेणी में समस्त मोहनीय कर्म का क्षय हो जाने के उपरांत बारहवें गुणस्थान में स्वरूपाचरण चारित्र की उत्पत्ति मानना योग्य है। जैसा कि श्री अमृतचन्द्रसूरि ने उसी उपर्युक्त गाथा की टीका में उल्लेख किया है कि -''**स्वरूपे चरणं चारित्रं**

स्वसमयप्रवृत्तिरित्यर्थः। तदेववस्तुस्वभावत्वाद्धर्मः। शुद्धचैतन्यप्रकाशनमित्यर्थः। तदेव च यथावस्थितात्मगुणत्वात्साम्यम्। साम्यं तु दर्शन चारित्र-मोहनीयोदयापादित समस्त मोहक्षोभा-भावादत्यन्तनिर्विकारो जीवस्य परिणामः ।''

अर्थात् स्वरूप में रमण करना सो चारित्र है। स्वसमय में प्रवृत्ति करना, यह इसका अर्थ है। वहीं वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना यह इसका अर्थ है। वहीं यथावस्थित आत्मा गुण होने से समता रूप है, और वह समता विषमता रहित सुस्थित कर्म तथा चारित्रमोहनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाले समस्त मोह और क्षोभ (रागद्वेष) के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार जीव का परिणाम है।

यह स्वरूपाचरण रूप निश्चय या वीतराग चारित्र पूर्ण मोहनीय का नाश कराकर साक्षात कैवल्य उत्पत्ति का कारण है। इसी तरह छहढाला में भी कहा है कि सकल संयम के उपरान्त स्वरूपाचरण का क्रम आता है-

यों है सकल संजम चरित सुनिये स्वरूपाचरण अब।
जिस होत प्रकटे आपनी निधि मिटे पर की प्रवृत्ति सब ॥ 7 ॥

अर्थात् यह सकल संयम चारित्र (28 मूलगुण रूप) कहा है अब पर की प्रवृत्ति जिससे दूर होकर (तीन गुप्तियों में आत्मलीनता से) अपनी आत्म निधि (अनंत चतुष्टय वैभव) प्रकट होती है। ऐसे स्वरूपाचरण चारित्र का वर्णन सुनिये।

इस प्रकार मुनियों के सकल संयम के समय समिति आदि की अवस्था में भी यह स्वरूपाचरण चारित्र नहीं कहा, श्रेणी के उत्कृष्ट ध्यान में जो चारित्र प्रकट होता है। वह ऐसा स्वरूपाचरण चारित्र मुनि अवस्था से निचली गृहस्थ अवस्था में तो संभव ही नहीं है।

प्रश्न 21. अगर स्वरूपाचरण रूप निश्चय चारित्र क्षपक श्रेणी के बारहवें गुणस्थान में होता है तब व्यवहार चारित्र किस अवस्था में होता है ?

उत्तर - आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने व्यवहार चारित्र का वर्णन करते हुये चारित्रपाहुड ग्रन्थ में कहा है कि -

जिणणाणदिट्ठि सुद्धं पढमं सम्मत्तचरण चारित्तं।
विदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि ॥ 5 ॥

चारित्र के दो भेदों में पहला भेद सम्यक्त्वाचरण चारित्र है जो जिन भगवान के द्वारा प्रतिपादित ज्ञान और श्रद्धान से शुद्ध होता है। दूसरा भेद संयमाचरण चारित्र है। इसका भी जिनदेव के ज्ञान द्वारा उपदेश दिया गया है।

जिनमत में व्यवहार चारित्र दो भेद सहित कहा गया है प्रथम चारित्र सम्यक्त्वाचरण चारित्र है। जो सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों के पालन के साथ अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में होता है एवं दूसरा संयमाचरण चारित्र है जो ग्यारह प्रतिमा और बारह व्रत सह संयतासंयत गुणस्थान और पञ्चेन्द्रिय निरोध, पञ्च महाव्रत एवं पञ्च समिति त्रिगुप्ति आदि रूप प्रमत्त संयत आदि

गुणस्थानों में होता है।

प्रश्न 22. समयसार में किसकी चर्या का वर्णन किया गया है ?

उत्तर - समयसार में श्रमणों अर्थात् मुनियों की चर्या का वर्णन किया गया है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने जो समयसार में निश्चय या वीतराग रत्नत्रय का वर्णन करते हुये सम्यग्दर्शन के अष्ट अंगों के कथन में जो चत्तारि वि पाए..... इत्यादि रूप आठ गाथायें कही हैं। उनमें शुद्धात्मा से सम्बन्धित अध्यात्म परक मुनियों की वीतराग चारित्र से अन्वय रखने वाले वीतराग सम्यग्दर्शन का कथन किया गया है। जबकि श्रावकाचार आदि में व्यवहार सम्यग्दर्शन को अष्ट अंगों के वर्णन पर सापेक्ष होते हुये सराग सम्यग्दृष्टियों के लिये किया गया है। अतः समयसार में कथित शुद्धात्म योगी मुनियों के वीतराग निश्चय सम्यग्दर्शन या रत्नत्रय श्रावकों व प्रमत्त अवस्था वालों के व्यवहार रत्नत्रय से स्पष्ट बिल्कुल अलग है उसी कारण से समयसार में वीतरागी श्रमणों के रत्नत्रयमय चर्या को मुख्य करते हुये क्षायिक सम्यग्दृष्टि महापुरुष राम आदिक श्रावकों एवं उनकी चर्या को गौण रखा गया है।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने समयसार में कहा है कि

परमाणुमित्तियं पि हु य रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
णवि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरोवि॥211॥
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो॥212॥

जिसमें रागादिक का लेशमात्र भी विद्यमान है, ऐसा जीव सम्पूर्ण द्वादशाङ्ग शास्त्र में पारंगत होकर भी आत्मा को नहीं जान सकता। जब वह आत्मा को नहीं जानता तब फिर वह अन्य (पदार्थों) को भी नहीं जान सकता। इस प्रकार जो आत्मा और पर को नहीं जान सकता, वह जीव और अजीव दोनों को नहीं जानने के कारण सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है ? अर्थात् कभी नहीं हो सकता। इसलिए जो रागी है वह परमार्थ ज्ञान के अभाव में सम्यग्दृष्टि नहीं है। तात्पर्य यह है कि यहाँ समयसार में वीतरागी को सम्यग्दृष्टि कहा गया है, यहाँ सम्यग्दृष्टि जीव को भी निश्चय या वीतराग सम्यग्दर्शन की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि कहा गया है। नीचे के मिथ्यात्व आदि गुणस्थानों की अपेक्षा वह सराग सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

इसी बात को इन्हीं उपर्युक्त दो गाथाओं की टीका लिखते समय जयसेनाचार्य जी ने एक जगह कहा है कि **किंच-रागी सम्यग्दृष्टि र्न भवतीति भणितं भवद्भिः। तर्हि चतुर्थपञ्चम गुणस्थानवर्तिनः तीर्थङ्कर-कुमार-भरत-सगर-राम-पाण्डवादयः सम्यग्दृष्टयो न भवन्ति ? .....अत्र तु ग्रन्थे पञ्चम गुणस्थानादुपारितन गुणस्थानवर्तिनां वीतरागसम्यग्दृष्टिनां मुख्यवृत्याग्रहणं, सराग सम्यग्दृष्टिनां गौणवृत्तयेति व्याख्यानं सम्यग्दृष्टि व्याख्यान काले सर्वत्र तात्पर्येणज्ञातव्यं ''**

अर्थ- '' कोई शंकाकार कहता है कि - रागी जीव सम्यग्दृष्टि नहीं होता। ऐसा करते हो तो चतुर्थ, पञ्चम गुणस्थानवर्ती तीर्थङ्कर कुमार, भरत, सगर, राम एवं पाण्डव आदि सम्यग्दृष्टि नहीं होते हैं ? वैसा नहीं मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा तेतालीस प्रकृतियों के बन्ध का अभाव होने से सराग सम्यग्दृष्टि होते हैं। -------लेकिन इस ग्रन्थ में पञ्चम गुणस्थान से ऊपर गुणस्थानवर्ती वीतराग सम्यग्दृष्टियों का मुख्य वृत्ति से ग्रहण किया गया है और सराग सम्यग्दृष्टियों को गौण किया गया है। सम्यग्दृष्टि के व्याख्यान काल में सभी जगह इस तरह का अभिप्राय या तात्पर्य जानने योग्य है।'' अतः पञ्चम गुणस्थान के ऊपर वीतरागता प्रारम्भ होती है और उन्हीं वीतरागियों के लिए समयसार ग्रन्थ लिखा गया है।

प्रश्न 23. अगर समयसार में वीतराग सम्यग्दृष्टि मुनियों के आध्यात्मिक वर्णन को या निश्चय रत्नत्रय को मुख्यता दी गई है और श्रावकों के व्यवहार रत्नत्रय की चर्चा ही नहीं की गई है, तब तो श्रावकों को समयसार ग्रन्थ पढ़ने की कोई आवश्यकता ही नहीं लगती है ?

उत्तर - हाँ, कोई आवश्यकता नहीं लगती। क्योंकि जहाँ अपनी भूमिका के योग्य रत्नत्रय आदिक का वर्णन है, ऐसे ही ग्रन्थ पढ़ने योग्य हैं। किन्तु जिनके जीवन में एकान्त आदि मिथ्यात्व के साथ-साथ सच्चा जैनाचार (रात्रिभोजन त्याग आदि रूप) ही नहीं एवं अभी जिन्हें श्रावकों के बारह व्रत या ग्यारह प्रतिमा आदि रूप चारित्र ही प्राप्त नहीं हुआ उन्हें प्रथमतः पुराण ग्रन्थ, श्रावकाचारादि एवं गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार, क्षपणासार इत्यादि तथा इसके उपरान्त अष्टपाहुड, पञ्चास्तिकाय, द्वादशानुप्रेक्षा, नियमसार, प्रवचनसार आदि का क्रमशः स्वाध्याय करना चाहिए। क्योंकि रोटी पचाये बिना कैसे गुलाब जामुन को पचा सकते हैं ? जिसने गुलाब जामुन के समान समयसार का स्वाद लेना प्रारम्भ कर दिया तो फिर उसे पुराण आदिक चारित्र के ग्रन्थ कैसे रुचेंगे? यह ध्यान रखना चाहिए कि प्राथमिक अवस्था में ज्यादा गरिष्ठ वस्तु के सेवन से भूख मंद पड़ जाती है। पाचन गड़बड़ होकर बीमार पड़ जाते हैं। अतः जीवन चलाने के लिए प्रतिदिन खाने योग्य तो रोटी ही श्रेष्ठ है। आज कई लोग प्राथमिक अवस्था में अपने योग्य चारित्र के ग्रन्थ पढ़े बिना मुनियों के निश्चय चारित्र सम्बन्धी अध्यात्म परक समयसार जैसे ग्रन्थ पढ़कर श्रावक अवस्था में ही चारित्र के क्षेत्र में बीमार पड़े हैं। इसी तरह आज कुछ विषय भोगी चारित्र के उपेक्षक अयोग्य व्यक्तियों के हाथ में अध्यात्म ग्रन्थ आने से उनका दुरुपयोग हो रहा है। उन्हीं कुन्दकुन्द आचार्य द्वारा रचित चारित्रपाहुड में कहे गए अणुव्रतादिक को अपनाए बिना समयसार पढ़कर अपनी शान बढ़ाना चाहते हैं। जबकि समयसार ग्रन्थ मुनि अवस्था में ध्यान के लिए पढ़ने योग्य है। जो भव्य प्रथमानुयोग आदि के क्रम से बहुतायत आगम ग्रन्थों को स्वाध्याय कर चुका है और वह अब शुद्धात्मानुभूति हेतु मुनि दीक्षा लेने के लिए उत्सुक है वह आध्यात्मिक ग्रन्थ (समयसारादि) पढ़ सकता है क्योंकि वह मुनि बनकर उसे अमल में लाने वाला है। लेकिन अन्य लोगों द्वारा आध्यत्मिक ग्रन्थों को पढ़ने के उपरान्त व्यवहार चारित्र की उपेक्षा करना या चारित्र के धारकों (अणुव्रतियों, महाव्रतियों) की विनय नहीं करना यह

चारित्रपाहुड के लिखने वाले कुन्दकुन्द स्वामी की ही उपेक्षा करना है, ऐसा समझना चाहिए।

प्रश्न 24. अध्यात्म में जैसे स्वरूपाचरण और शुद्धोपयोग के समान शुद्धात्मानुभूति की प्राप्ति भी निर्ग्रन्थ एवं सम्यग्दृष्टि मुनियों को ही होती है; तब निर्विकल्प समाधि, स्वानुभूति या स्वात्मानुभूति और अभेद रत्नत्रय रूप आत्म ध्यान की प्राप्ति भी उन्हीं साधुओं (मुनियों) को ही होती है या कोई असंयमी पञ्चेन्द्रियों के विषयों में आसक्त परिग्रह की आशा से युक्त गृहस्थ के ही हो सकती है?

उत्तर – अरे! कितना अज्ञान है तुम्हारे पास। क्योंकि चतुर्थ और पञ्चम काल में होने वाले निर्ग्रन्थ भावलिङ्गी सकल संयमी मुनियों के जीवन में वैराग्य और परिग्रह त्याग की महिमा से प्राप्त होने वाली ये निर्विकल्प समाधि आदि अवस्थाएं अगर परिग्रही गृहस्थ के जीवन में होने लग जाएं तो उस जगत् में गृहस्थ और परमेष्ठियों में कोई अंतर ही न रहे। अथवा पञ्च परमेष्ठी के नीचे णमो गृहस्थाणं ऐसा एक और छठवां मन्त्र इस कलिकाल में बन जाए जो एक महा मिथ्यात्व का पोषक ठहरे। या मुनियों को तो नकारा जाए और गृहस्थों को गुरुदेव कहकर पुकारा जाना सम्यक् माने तो ऐसा होना ठीक नहीं है भव्य। अगर तुम इन उपर्युक्त अवस्थाओं की योग्यता को समझना चाहते हो तो सुनो ! द्वात्रिंशतिका (सामायिकपाठ) में अमितगति आचार्य कहते हैं कि–

आत्मानमात्मन्यवलोकमानस् त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र, स्थितोऽपि साधुर्लभते समाधिम् ॥25॥

हे आत्मन्! तू अपने आत्मा में अपने आपका अवलोकन (साक्षात्कार) कर एकाग्रचित्त हुआ साधु जहाँ कहीं भी अवस्थित होता है वहीं वह समाधि को प्राप्त कर लेता है।

अतः ध्यान रूप समाधि की निर्विकल्प अवस्था को साधु (मुनि) ही प्राप्त करते हैं यह कथन स्वतः स्पष्ट है। इसी तरह निर्विकल्प समाधि स्वात्मानुभूति आदि अवस्थाएं ध्यान रूप ही होती हैं, तथा जिस ध्यान की प्रसिद्धि हेतु बारह तप, श्रुतज्ञान एवं महाव्रतों को अंगीकार करना आवश्यक है। मुनि बने बिना ध्यान समाधि की बातें कागज के पुष्प सदृश निस्सार हैं। द्रव्यसंग्रह शास्त्र में कहते हैं कि –

तवसुदवदवं चेदा, झाणरहधुरंधरो हवे जम्हा।
तम्हा तत्तियणिरदा, तल्लद्धीए सदा होह ॥57॥

ध्यान धारण की योग्यता, बिना पुरुषार्थ या चारित्र के प्राप्त नहीं होती अर्थात् तप, श्रुत और व्रत का धारक आत्मा ही ध्यान रूपी रथ की धुरी को धारण करने वाला होता है। इसलिए उसकी प्राप्ति के लिए हमेशा उन तीनों अर्थात् तप, श्रुत और व्रत में निरत (तत्पर) होओ।

अध्याय 20.
अनेकान्त दृष्टि

इस हुण्डावसर्पिणी काल में जो तीन सौ त्रेसठ मतों का प्रादुर्भाव होता है, उसमें अनेकांत को समझने वाले कुछ भव्यात्मा लोग ही धर्म मार्ग में सुरक्षित रह जाते हैं। वे बड़े पुण्यात्मा होते हैं जो अनेकांत व स्याद्वाद के हृदय को समझ पाते हैं। प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक है उसके किसी पहलू को नकारा नहीं जा सकता। अनेकान्त दृष्टि में अपेक्षा दृष्टि से किसी धर्म को मुख्य-गौण करना जिसका मुख्य उद्देश्य होता है। वस्तु के पूर्ण स्वरूप को समझने हेतु सप्तभङ्गी का माध्यम भी बड़ा कार्यकारी होता है। इसी तरह नय व्यवस्था में व्यवहार-निश्चय का भी अपना एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। पर्याय, द्रव्य दृष्टि भी द्रव्य के पूर्ण स्वरूप का ज्ञान कराती है और पुण्य कहाँ तक साथ देता है यह भी साधन, साध्य के क्षेत्र में सोचना अनिवार्य होता है अतः इन सब अत्यावश्यक बातों का वर्णन करते हुए निकट भव्यों के कल्याण हेतु 'अनेकान्त दृष्टि' इस अध्याय में बहुमूल्य आगमिक बातों का अनायास ही प्रयास हुआ है।

प्रश्न 1. अनेकान्त दृष्टि का अर्थ क्या है ?

उत्तर - इस जगत् में जितनी भी वस्तुयें देखने व जानने में आ रही हैं, वे अनेक अन्त अर्थात् धर्म से सहित हैं। ऐसी दृष्टि या मान्यता का नाम अनेकान्त दृष्टि है।

किसी भी वस्तु के किसी एक धर्म का कथन करते समय उसके दूसरे धर्म को गौण तो किया जाता है लेकिन नकारा नहीं जाता। क्योंकि वे सभी (मुख्य गौण) धर्म वस्तु के स्वरूप को बनाए रखने में एक दूसरे के पूरक ठहरते हैं। वस्तु के एक किसी धर्म का सर्वथा अभाव मानने से वस्तु के स्वरूप के अस्तित्त्व पर आघात पहुँचता है तथा वस्तु का लक्षण या स्वरूप अखण्डित नहीं रहता। अतः वस्तु के सभी धर्मों (पक्षों या पहलुओं) के ज्ञान के लिए अनेकांत या स्याद्वाद का सहारा लेना परमावश्यक है।

प्रश्न 2. स्याद्वाद किसे कहते हैं ?

उत्तर - स्याद् का अर्थ होता है कथञ्चित् अथवा किसी एक अपेक्षा दृष्टि से वाद अर्थात् वचन शैली इसका नाम स्याद्वाद है। इस प्रकार किसी अपेक्षा, दृष्टि, विवक्षा, अविवक्षा, मुख्य-गौणता, वक्तव्य-अवक्तव्य और अर्पित-अनर्पित रूप वचन शैली से कथन करना स्याद्वाद रूप अनेकान्त कहलाता है।

प्रश्न 3. सप्तभङ्गी किसे कहते हैं ?

उत्तर - वचन के सात भङ्ग अर्थात् प्रकारों को सप्तभङ्गी कहते हैं।

विशेष-वचन के भङ्ग सात प्रकार के हो सकते हैं, उससे अधिक नहीं क्योंकि आठवीं तरह का कोई वचन-भङ्ग नहीं होता। और सात से कम मानने से कोई न कोई वचन-भङ्ग छूट जायेगा। (जो वस्तु तत्त्व को पूर्ण न समझ सकेगा।) अतः किसी भी पदार्थ के विषय में कोई भी बात कही जाती है तो वह मौलिक रूप से तीन प्रकार की होती है या हो सकती है। 1. है (अस्ति) के रूप में। 2.नहीं (नास्ति) के रूप में 3. न कह सकने योग्य (अवक्तव्य) के रूप में। इन उपर्युक्त मूल तीन भङ्गों के परस्पर मिलाकर तीन युगल (द्वि-संयोगी) रूप होते हैं-1. है और नहीं (अस्ति-नास्ति) रूप, 2. है और न कह सकने योग्य (अस्ति अवक्तव्य)रूप, 3. नहीं और न कह सकने योग्य (नास्ति अवक्तव्य) रूप।

इसी तरह एक भंग तीनों को मिला हुआ (त्रिसंयोगी) होता है- है, नहीं और न कह सकने योग्य (अस्ति नास्ति अवक्तव्य)।

इसी प्रकार वचन भङ्ग सात तरह के हैं, इन सातों भङ्गों के समुदाय को (सप्तानां भङ्गानां समुदायः सप्तभङ्गी) सप्तभङ्गी कहते हैं। इसी तरह स्यात् पद लगाकर उन सात भङ्गों के नाम इस प्रकार हैं-

1. स्यात् अस्ति 2. स्यात् नास्ति 3. स्यात् अस्ति नास्ति 4. स्यात् अवक्तव्य 5. स्यात् अस्ति अवक्तव्य 6. स्यात् नास्ति अवक्तव्य 7. स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य। (अब इन्हीं सातों भङ्गों को राम के उदाहरण में स्याद्वाद (अनेकान्त) दृष्टि लगाकर विवक्षा या अपेक्षा आदि के साथ समझेंगे।)

1. **स्यात् अस्ति**- प्रत्येक वस्तु अपने (विवक्षित-कहने के लिए इष्ट) दृष्टिकोण से (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा) अस्तित्त्व (मौजूद) रूप होती है। जैसे-राम अपने पिता दशरथ की अपेक्षा 'पुत्र' हैं।
2. **स्यात् नास्ति**- प्रत्येक वस्तु अन्य वस्तुओं की या अन्य (अविवक्षित) दृष्टिकोणों की अपेक्षा अभाव नास्तित्त्व रूप होती है। जैसे-राम राजा जनक की अपेक्षा पुत्र नहीं हैं।
3. **स्यात् अस्ति नास्ति**- दोनों दृष्टिकोणों के क्रम से कहने पर वस्तु अस्तित्त्व तथा अभाव (अस्ति नास्ति) रूप होती है। जैसे-राम दशरथ के पुत्र हैं जनक के पुत्र नहीं हैं।

1. विश्व धर्म की रूपरेखा पृ. 93

4. **स्यात् अवक्तव्य**-परस्पर विरोधी (हैं तथा नहीं रूप) दोनों दृष्टिकोणों से एक साथ (युगपत्) वस्तु वचन द्वारा कही नहीं जा सकती क्योंकि वैसा वाचक (कहने वाला) कोई शब्द नहीं है। अतः उस अपेक्षा से वस्तु अवक्तव्य (न कह सकने योग्य) होती है। जैसे - राम राजा दशरथ तथा राजा जनक की युगपत् (एक साथ एक शब्द द्वारा) अपेक्षा कुछ भी नहीं कह सकते।
5. **स्यात् अस्ति अवक्तव्य**-वस्तु न कह सकने योग्य (युगपत् कहने की अपेक्षा अवक्तव्य) होते हुए भी अपने दृष्टिकोण से होती तो है यह (स्यात् अस्ति अवक्तव्य) जानना चाहिए। जैसे राम यद्यपि दशरथ तथा जनक की अपेक्षा एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य (न कहे जा सकने योग्य) हैं फिर भी राजा दशरथ की अपेक्षा पुत्र हैं।
6. **स्यात् नास्ति अवक्तव्य** - वस्तु अवक्तव्य (युगपत् कहने की अपेक्षा) होते हुए भी अन्य दृष्टिकोणों से नहीं रूप (स्यात् नास्ति अवक्तव्य) है। जैसे राम युगपत् दशरथ तथा जनक की अपेक्षा एक ही शब्द द्वारा अवक्तव्य होते हुए भी राजा जनक की अपेक्षा पुत्र नहीं है।
7. **स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य** - परस्पर विरोधी (है और नहीं रूप) दृष्टिकोणों से युगपत् (एक साथ एक ही शब्द द्वारा) अवक्तव्य (न कह सकने योग्य) होते हुए भी वस्तु क्रमशः उन परस्पर विरोधी दृष्टिकोणों से है, नहीं (अस्ति नास्ति अवक्तव्य) रूप से होती है। जैसे-राम, राजा दशरथ तथा राजा जनक की अपेक्षा युगपत् रूप से कुछ भी नहीं कहे जा सकते (अवक्तव्य हैं) किन्तु युगपत् की अपेक्षा अवक्तव्य होकर भी क्रमशः राम राजा दशरथ के पुत्र हैं, राजा जनक के पुत्र नहीं हैं।

इस प्रकार सप्तभङ्गी प्रत्येक पदार्थ के विषय में योज्य करना ही स्याद्वाद या अनेकान्त दृष्टि रूप श्रेष्ठ धर्म हैं।

एक समय में जितना विषय जाना देखा जाता है उसे मोटे रूप से भी कहने में जानने और देखने की अपेक्षा कई गुणित समय लग सकता है। जैसे एक सुन्दर बगीचे को एक दृष्टि से देखा और जिसके देखने में कुछ ही समय लगा लेकिन उस बगीचे के दृश्य के बारे में वर्णन करने में कई मिनिट मात्र नहीं कई घंटे भी लग सकते हैं। तभी उस बगीचे के एक-एक पहलू का कथन क्रमशः किया जा सकेगा। किसी वस्तु की एक बात करते समय उसकी अन्य बातें (या पहलू) छूट जाती हैं, किन्तु वे अन्य बातें उसमें रहती अवश्य हैं।

जैसे कि जब यह कहा जावे कि - राम राजा दशरथ के पुत्र थे। उस समय राम के साथ लगे हुये सीता, लक्ष्मण, लव, कुश आदि अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा पति, भ्राता, पिता आदि के सम्बन्ध कहने से छूट जाते हैं, जो कि यथार्थ हैं। यदि उन छूटे हुए सम्बन्धों को सर्वथा छोड़ दिया जावे तो राम सम्बन्धी परिचय अधूरा रह जायेगा और इसी कारण वह कहना गलत (अयथार्थ) प्रमाणित होगा।

इस अयथार्थ या अधूरेपन को हटाने के लिए जैन सिद्धान्त ने प्रत्येक वाक्य के साथ स्यात् शब्द लगाने का निर्णय दिया है। स्यात् शब्द का अर्थ '**कथंचित्**' यानी 'किसी दृष्टिकोण से' या 'किसी अपेक्षा से' है। अर्थात् जो बात कही जा रही है वह किसी एक अपेक्षा से (किसी एक इच्छित दृष्टिकोण से) कही जा रही है। जिसका अभिप्राय यह प्रकट होता है कि यह विषय अन्य दृष्टिकोणों से या अन्य अपेक्षाओं से अन्य अनेक प्रकार का भी कहा जा सकता है।

यथार्थ कथन में राम के विषय में हम ऐसा कहेंगे कि–स्यात् (राजा दशरथ की अपेक्षा) राम पुत्र हैं। स्यात् (सीता की अपेक्षा से) राम पति हैं। स्यात् (लक्ष्मण की अपेक्षा) राम भ्राता हैं। स्यात् (लवणांकुश की अपेक्षा) राम पिता हैं। स्यात् (राजा जनक की अपेक्षा) राम जमाता (दामाद) हैं। इत्यादि। तात्पर्य यह हुआ कि – राम पुत्र तो हैं किन्तु वे सर्वथा (हर तरह से) पुत्र नहीं हैं वे पति, भाई, पिता, दामाद आदि भी तो हैं। हाँ वे राजा दशरथ की अपेक्षा से पुत्र ही हैं अन्य नहीं। इस स्यात् रूप 'अपेक्षा' शब्द से अन्य दूसरे पति, भाई, पिता, दामाद आदि सम्बन्ध सुरक्षित रहे आते हैं।

दूसरा उदाहरण–स्यात् (हिमालय की अपेक्षा) भारत दक्षिण में है।

इस उपर्युक्त स्यात् पद से लाञ्छित कथन से यही ध्वनित होता है कि भारत देश सर्वथा दक्षिण में ही नहीं है अपितु अन्य दृष्टिकोणों से अन्य दिशाओं में भी है। अर्थात् स्यात् (हिन्द महासागर की अपेक्षा) भारत देश उत्तर दिशा में है। स्यात् (अफगानिस्तान की अपेक्षा) भारत देश पूर्व दिशा में है। स्यात् (बर्मा देश की अपेक्षा) भारत वर्ष पश्चिम दिशा में है।

तीसरा उदाहरण – स्यात् (त्रिकाल अविनाशी द्रव्य की अपेक्षा) जीव नित्य है। इससे ध्वनित होता है कि जीव में नित्यता की तरह किसी अन्य दृष्टिकोण (अपेक्षा) से 'अनित्यता' भी पाई जाती है। अर्थात् स्यात् (पर्याय कि अपेक्षा मनुष्य, पशु आदि नश्वर शरीरों की दृष्टि से) जीव अनित्य है। इस सत्य बात की भी रक्षा हो जाती है।

निष्कर्ष–इस तरह उपर्युक्त कथनों में '**स्यात्**' (अपेक्षा) पद लगाने से और जिसमें अन्य गौण विषयक सत्ता की स्वीकारता होने से संसार के सभी लोक विषयक विवाद समाप्त या शांत हो जाते हैं। यही स्याद्वाद मय अनेकान्त धर्म का सार है।

प्रश्न 4. कुछ लोग कहते हैं कि व्यवहार असत्यार्थ है, अतः त्याज्य (छोड़ने योग्य) है, इसका समाधान दीजिये?

उत्तर – इसका स्पष्ट रूप से समाधान तो यह है कि सांसारिक लौकिक व्यवहार जो पाप बन्ध कराकर उसमें तव–मम (तेरा–मेरा) ऐसा मिथ्यापन उपचार कर कर्म बन्ध में कारण है ऐसा अभूतार्थ व्यवहार अवश्य छोड़ने योग्य है। ऐसा व्यवहार एक दिन संसार, परिग्रह त्यागकर दीक्षा धारण करने से और धर्मध्यान रूपी सामायिक आदि षट् आवश्यकों में लीन हो जाने से स्वयं ही छूट जाता है। लेकिन व्यवहार नय जो अनेकान्त मय वस्तु के स्वरूप में जानने में कारण हैं या जो द्वादशाङ्ग का विषय है, ऐसा व्यवहार से शुद्धोपयोग या शुक्लध्यान का भी विषय बन सकता है

एवं जो केवली की दिव्यध्वनि द्वारा कथित है, वह मुख्य-गौण के अलावा छोड़ने की वस्तु नहीं है। क्योंकि व्यवहार नय जो सप्त नयों में गृहीत या गर्भित है, उसके बिना अनेकान्त धर्म को नहीं समझा जा सकता है। अतः उसे कैसे छोड़ा जा सकता है ? क्योंकि ऐसा व्यवहार नय छोड़ने योग्य होता या अकथनीय होता तो अंग, पूर्व के ज्ञानी आचार्य एवं कुन्दकुन्दाचार्य भी निश्चय के साथ व्यवहार को भी अपने श्रुत या जिनागम में वर्णित क्यों करते ? अतः व्यवहार नय कभी भूलकर भी न छोड़ें बल्कि उसके सहारे से वस्तु स्वरूप या तत्त्व को गहराई से समझें।

जो तव-मम (तेरा मेरा) रूप सांसारिक व्यवहार है, वह मुनि द्वारा तो पहले ही छोड़ दिया जाता है, और जब योगी (मुनि) लोग आत्मा में लीन होते हैं, तब उनका समीचीन या धार्मिक क्रिया रूप जो समीचीन व्यवहार है, वह भी अपनी सामायिक या ध्यान रूपी निश्चय अवस्था में लीन होते समय स्वयं ही छूट जाता है। अतः प्रथम असमीचीन व्यवहार का छोड़ना ही ज्ञानीपना है।

प्रश्न 5. अध्यात्म का रस लेने वाले कुछ लोग पर्याय दृष्टि छोड़ो ऐसा कहते हैं, इसका तात्पर्य क्या पर्याय का कथन ही नहीं करना है ? या पर्यायार्थिक नय को ही नहीं मानना है ? अथवा पर्याय में राग द्वेष का परिहार करना है ? इसका योग्य उत्तर दीजिये।

उत्तर - जो लोग पर्याय दृष्टि छोड़ो इस कथन से पर्याय या पर्यायार्थिक नय का कथन ही नहीं करने योग्य या मिथ्या मानते हैं, वे बड़े अज्ञानी हैं, क्योंकि द्रव्य का लक्षण ही **'गुण पर्ययवत् द्रव्यं'** (त.सू.अ. 5, सू.38) ऐसा कहा है अर्थात् द्रव्य, गुण पर्यायवाला होता है। अगर पर्याय को नहीं मानेंगे तो द्रव्य का लक्षण ही खंडित हो जाएगा। और पर्यायार्थिक नय को नहीं मानेंगे तो जीव की वर्तमान अवस्था कौन सी है, या नर, नारकादि अवस्थाओं का कथन या ज्ञान नहीं हो सकेगा। फिर चतुर्गति के कथन करने वाले या अशुद्ध जीव की आस्रव, बंधादि अवस्थाओं का कथन करने वाले षट्खण्डागम, कषायपाहुड, गोम्मटसार एवं त्रिलोकसार आदि आगम ग्रन्थ अनावश्यक या मिथ्या ठहरेंगे, तो ऐसा होता नहीं है। अतः पर्याय दृष्टि छोड़ो अर्थात् पर्याय में राग द्वेष या पुद्गलादि द्रव्यों के परिवर्तन में राग-द्वेष छोड़ो, यह अर्थ लिया जाए तो उत्तम है। और शक्ति अपेक्षा से बीज में वृक्ष या दूध में घृत को लक्ष्य बनाने के सदृश इस शुद्ध द्रव्य की ओर लक्ष्य रखते हुए अपने वर्तमान अशुद्ध पर्याय रूप द्रव्य को शुद्ध बनाने का प्रयास या पुरुषार्थ करो यह कथन भी कह सकते हैं।

पर्याय दृष्टि से भी द्रव्य या वस्तु के एक धर्म या अवस्था की पहचान होती है। यह दृष्टि केवली के भी रही होगी तभी तो इसका (पर्याय का) कथन द्वादशाङ्ग जिनवाणी में आया है। शुक्लध्यान में भी (पृथक्त्ववितर्कवीचार में) बतलाते हैं कि द्रव्य से द्रव्यांतर, पर्याय से पर्यायांतर इत्यादि रूप कार्य (चिन्तन) चलता है। अतः इस पर्याय का विषय शुक्लध्यान में भी है। फिर कैसे इस पर्याय के चिन्तन को छुड़ाया जा सकता है। ऐसे कथन को छोड़ने में या पर्यायार्थिक नय को छोड़ने में एकान्त दृष्टि होने से सम्यक्त्व भी छूट जाएगा और मिथ्यात्व शत्रु

आ धमकेगा अत: पर्याय में राग द्वेष का त्याग करना ठीक है।

द्रव्यसंग्रह शास्त्र में भी कहा है कि राग द्वेष का परिहार करते हुए साधु जिस किसी भी पर्याय आदिक का ध्यान करते हुए निश्चय ध्यान की उपलब्धि करते हैं।

जं किंचिवि चिंतंतो, णिरीहवित्ती हवे जदा साहू।

लद्धूणय एयत्तं, तदाहु तं तस्स णिच्छयं झाणं ॥55॥

जब साधु एकाग्रता को प्राप्त कर जिस किसी भी पदार्थ या पर्याय का चिन्तन करता हुआ निस्पृह वृत्ति वाला होता है, उस समय उसका वह निश्चय ध्यान कहा जाता है।

प्रश्न 6. कोई व्रत, संयम के उपेक्षक निश्चयाभासी लोग कहते हैं कि श्रावक अवस्था में ही पुण्य छोड़ो पुण्य हेय, पुण्य संसार का ही कारण है, पुण्य सोने की बेड़ी है, इत्यादि, इस रूप प्रचार भी करते हैं ऐसा उनका मन्तव्य ठीक है क्या अथवा श्रावक अवस्था में ऐसा कहना बड़ा अज्ञान नहीं है क्या?

उत्तर - अपेक्षा दृष्टि से रहित उनका ऐसा कथन करना कदापि उचित नहीं है, ऐसे कथनों से शास्त्र अनभिज्ञता ज्ञात होती है। क्योंकि तत्त्वार्थसूत्र में कहा गया है कि **''शुभ:पुण्यस्याशुभ:-पापस्य''** (6/3) शुभयोग (मन-वचन-काय की प्रशस्त क्रिया) पुण्य प्रकृतियों के बन्ध का कारण है और अशुभयोग (मन-वचन-काय की अप्रशस्त क्रिया) पाप प्रकृतियों के बन्ध का कारण है। पुण्य प्रकृतियों का फल उत्तम गति, उत्तम संहनन, जैन कुल और व्रत, संयम के योग्य विशुद्धि आदि की प्राप्ति है। इसी तरह एक भव अवतारी द्वादशाङ्ग के पाठी अहमिन्द्र व लौकान्तिक के पद, पञ्च कल्याणक करने वाले एक भव अवतारी सौधर्म इन्द्रादिक के पद, तथा समवसरण के श्रोता चक्रवर्ती आदिक के पद विशिष्ट पुण्य के ही तो फल हैं, यहाँ तक कि अरहंत अवस्था व समवसरण विभूति भी अतिशय पुण्य का फल जानने योग्य है, जैसे कि आगम में **''पुण्ण फला अरहंता''** ऐसा कहा ही है।

इसके अलावा पाप कर्म का फल नरक निगोद आदि तथा नीचगति, हुण्डक संस्थान, नीचगोत्र, जघन्य संहनन, दुष्कुल, और आर्त्त-रौद्र ध्यानों में प्रवृत्ति से सब पाप कर्म के फल जानने योग्य हैं। उपर्युक्त कथन को ध्यान में न रख जो लोग पुण्य को छोड़ो ऐसा कहते हैं उनका अभिप्राय पुण्य कार्य जो व्रत, दान व पूजादिक धार्मिक कार्य हैं, जिन्हें पुण्य कर्म बन्ध का कारण माना गया है तथा कारण में कार्य का उपचार कर उन व्रतादिक को ही **'अन्नमेव प्राणं'** के समान पुण्य शब्द से कह दिया गया है, उन्हें छोड़ देने का समझ में आता है। लेकिन पुण्य छोड़ देने से पाप में ही जाना पड़ेगा क्योंकि पुण्य-पाप इन कर्मों के बिना तीसरे प्रकार का कोई कर्म तो दिखता नहीं और ऐसे पुण्य अर्थात् धर्म के छोड़ देने की बात कह देने से लगता है कि कहीं उन्हें कोई अशुभ आयु गति आदिक का बन्ध तो नहीं पड़ गया है, जिस कारण उन्हें ऐसे धर्म (पुण्य) को छोड़ने के परिणाम उत्पन्न हो रहे हैं।

पुण्य कर्म का क्षय कौन करता है, या पुण्य की बेड़ी को कौन कब काटता है? तो

इसका उत्तर यह है कि-अरहंत अवस्था प्राप्त करने के लिए प्रथम घाति कर्म का ही क्षय (नाश) किया जाता है, जिसमें एक अपेक्षा से प्रायः सब पाप प्रकृतियां ही हैं। और घाति कर्म के नाश हो जाने पर केवली भगवान ही फिर पुण्य प्रकृतियों का क्षय करते ही हैं। अथवा वे केवली अरहंत नियम से उसी भव से मोक्ष पाते ही हैं और, मोक्ष जाने के पहले अंतिम दो शुक्ल ध्यानों के द्वारा अघाति कर्म (जिसमें पुण्य कर्म भी होते हैं) नियम से क्षय को प्राप्त होंगे ही। लेकिन इतना विशेष है कि उन अरहंत ने जब गृहस्थ जीवन से मुनि दीक्षा को धारण किया था तब पुण्य को न छोड़कर पुण्य के फल को अर्थात् पञ्चेद्रिय के विषयों (परिग्रह आदिक को) अवश्य छोड़ दिया था। (जिन विषयों या परिग्रहों को आप जूठन या विष्टा कुछ भी बोल सकते हैं क्योंकि वे विषयादिक अनन्तों बार मिलकर नरक निगोदादिक के कारण बने हैं।) अतः हम पहले पुण्य को मोक्ष का सहायक साधक मानकर, अनन्त काल से जो प्राप्त होते आए हैं, ऐसे जूठन के समान पापों और विषयों को पहले छोड़ें यही ज्ञानीपन है, फिर पुण्य अपने आप छूट जाएगा। इसकी चिन्ता करना अनिवार्य नहीं; पुण्य करो ऐसा धर्मी लोगों द्वारा कहे जाने पर धर्म करो ऐसा अर्थ समझना चाहिए क्योंकि धर्म कार्य करने से ही पुण्य होता है। ऐसा पुण्य '**पुनात्यामानं पूयतेऽनेनति वा पुण्यम्**' (स.सि. 6/3) जो आत्मा को पवित्र करता है या जिससे आत्मा पवित्र होती है पुण्य कहलाता है। सम्यक्त्व के साथ किया गया पुण्यानुबन्धी पुण्य हमें मोक्ष प्राप्ति के योग्य सामग्री दिलाता है और इतना ही नहीं पुण्य करते समय एक साथ चार कार्य होते हैं, वे कौन-कौन से ऐसा पूछो तो जिस समय पुण्य कर्म का आस्रव होता है उसी समय पुण्य का बन्ध भी होता है, इसी तरह उस समय पाप कर्म नहीं आता अतः पाप कर्म का संवर भी होता है। तथा पूर्व बध्य कर्मों की निर्जरा भी होती है, इसलिए पुण्य कर्म करने के साथ-साथ पाप कर्मों का संवर एवं निर्जरा का लाभ भी प्राप्त होता है। अतः प्रथम पुण्य को नहीं पाप को ही छोड़ा जाता है। जयधवला पुस्तक 13 में कहा है कि -''**सम्मादिट्ठि पसत्थ कम्माणं अणुभागं कदापि ण हणदि।**'' सम्यग्दृष्टि प्रशस्त (पुण्य) प्रकृतियों के अनुभाग की निर्जरा कभी भी नहीं करता। अर्थात् पहले पाप कर्मों की ही निर्जरा करता है।

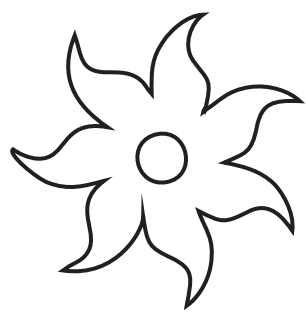

अध्याय 21.
नैतिकता और शिष्टाचार

शिष्ट अर्थात् अच्छे श्रेष्ठ लोगों का न्याय-नीति से चलना ही उनका नैतिकता और शिष्टाचार कहलाता है। जिसके लिए सर्वप्रथम हमारे पूज्य जिनालय, जिनेन्द्र देव, आगम (शास्त्र), और समीचीन गुरुओं के प्रति या उनके समक्ष विनीत बन, कैसे जाना ? कैसे क्या-क्या बोलना ? और क्या-क्या भूलना अर्थात् धर्म क्षेत्र में किससे दूर हटना ? जिससे उनकी अर्थात् धर्म की आसादना न हो। इसी तरह धर्मसभा में हमारी चेष्टा कैसी हो वहाँ के वातावरण को हम कैसे व्यवस्थित सुन्दर बनाए रखें ? तथा सामान्य रूप से लोक में या सामाजिक तौर पर हमारा व्यवहार कैसा हो? और जिससे फैली हुई समाज की कुरीतियों का उन्मूलन हो सके एवं जैनियों या ज्ञानियों के कर्त्तव्य या बोध में शोध चल सके। इस बात को ध्यान में रखते हुए अपने भाग्योदय से ही मानो अपने जीवन के परिमार्जन हेतु गुरुकुलों की पद्धति से 'नैतिकता और शिष्टाचार' के इस अंतिम इक्कीसवें अध्याय में चिन्तन और मंथन हुआ है।

प्रश्न 1. जिनमंदिर (जिनालय) सम्बन्धी नैतिकता और शिष्टाचार क्या हैं ?

उत्तर- जिनमंदिर सम्बन्धी नैतिकता और शिष्टाचार -

1. जिनालय के बाहर हाथ, पैर, मुखादिक अंगों को साफ कर शुद्धता के साथ जिनालय में निःसहि, निःसहि, निःसहि कहते हुए प्रवेश करना चाहिए एवं जिनालय में अःसहि, अःसहि, अःसहि कहते हुए बाहर आना चाहिए।
2. जिनालय में चमड़े, नेलपालिस और लिपस्टिक आदि अशुद्ध वस्तुओं के साथ नहीं जाना चाहिए।
3. जिनालय के अंदर भगवान के ठीक सामने न खड़े होकर बाजू में खड़े होना चाहिए, जिससे किसी भी व्यक्ति को दर्शन में बाधा न पहुँचे।
4. जिनालय में पूजा के रूप में मर्यादा से बाहर का अशुद्ध द्रव्य नहीं चढ़ाना चाहिए एवं नारियल नहीं कट करना चाहिए न फोड़ना चाहिए, क्योंकि अशुद्ध द्रव्य चढ़ाने से हिंसा का एवं नारियल कट करने से बलि प्रथा के समर्थन का दोष आता है।
5. जिनालय के अंदर दीवाल से टिककर नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि यह आलस्य का प्रतीक है एवं ऐसे बैठने से प्रमाद (निद्रा) भी आ सकता है।
6. जिनालय में घरेलू, खान-पान या व्यापारादिक की चर्चा नहीं करना चाहिए, क्योंकि विकथा से पाप बन्ध होता है।

7. जिनालय में अप्रासंगिक हँसना नहीं चाहिए। क्योंकि यह असभ्यता का प्रतीक है।
8. पूजा स्तोत्रपाठ एवं जप करते हुए एकाग्रता रखना चाहिए, इधर-उधर नहीं देखना चाहिए।
9. जिनालय में भगवान के सामने शयन नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से भगवान की अविनय होती है।
10. वीतराग भगवान के जिनालय में स्वयं का एवं दूसरों का शृंगार नहीं करना चाहिए क्योंकि उसे शास्त्रों में आसादना दोष कहा है।
11. जिनालय में किसी से झगड़ा एवं अपशब्द का प्रयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से महा पाप का बंध होता है।
12. जिनालय सम्बन्धित कोई वस्तु घरेलू काम में नहीं लाना चाहिए और अपने द्वारा चढ़ाया गया पूजा द्रव्यादिक पुनः उपयोग में नहीं लेना चाहिए।
13. मंदिर सम्बन्धी अपने द्वारा बोली गई बोली की धन राशि तुरन्त या ज्यादा से ज्यादा एक माह में व्यवस्थापकों को सौंप देना चाहिए।
14. जिनालय में भगवान और दिगम्बर समीचीन मुनि को साष्टांग या पञ्चांग नमस्कार एवं आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक एवं क्षुल्लिका को पञ्चांग नमस्कार करना चाहिए।
15. ऊपर कहे गए लिंगों से (भेषों से) रहित कुलिंगियों एवं शृंगार, रंगीन वस्त्रादिक से सहित संसारी देवी देवताओं को साष्टांग, पञ्चांग नमस्कार और पूजा अर्घ्य समर्पण, आरती शृंगारादि कार्य नहीं करने चाहिए क्योंकि मिथ्यात्व का दोष आता है। जिनालय संयमी, तपस्वियों की उपासना का स्थान है न कि असंयमियों का।
16. असंयमी सरागियों या गृहस्थों से आइये-आइये एवं जयजिनेन्द्र बोलने रूप लौकिक व्यवहार जिनालय के बाहर करना चाहिए भगवान और वीतरागी गुरु के सामने नहीं।
17. कोई पिच्छिका के साथ अगर, स्वयं के पास कार, टेलीफोन, धन, पैसा, खड़ाऊ, पगड़ी इत्यादिक रखते हो एक बार से अधिक बार भोजन, साबुन से स्नान, बालों की कटिंग, सेविंग, सेटिंग आदि करते हों तथा तन्त्र-मन्त्र, ज्योतिष, शादी-विवाह हेतु कुण्डली तैयार करना इत्यादिक कार्य करते हों तो ऐसे कोई आगम से विपरीत भेष धारी अगर जिनालय के पास या अन्य जगह मिल जाएं तो उन्हें पत्थर की नाव के सदृश समझकर दूर से ही छोड़ देना चाहिए। वीतरागता के उपासक अगर उनकी नमस्कार विनय इत्यादिक करते हैं तो साधु अवस्था के योग्य कार्यों के समर्थन के साथ उन्हें मिथ्यात्व (गुरु मूढ़ता) का दोष आता है।

प्रश्न 2. वीतरागी देव (जिनेन्द्र भगवान) के सामने हमें किस प्रकार के शिष्टाचार का पालन करना

चाहिए?

उत्तर - जिनेन्द्र भगवान के सामने पालन करने योग्य शिष्टाचार :-

1. शारीरिक एवं वस्त्रों की शुद्धता के बिना एवं अशुद्ध वस्तुओं के साथ जिनेन्द्र भगवान के समीप (गर्भगृह में) नहीं पहुँचना चाहिए।
2. स्त्री वर्ग को भगवान का स्पर्श नहीं करना चाहिए।
3. नाक,कान आदिक सम्बन्धी किसी तरह के मल आदिक का क्षेपण जिनेन्द्र भगवान के सामने एवं मंदिर में नहीं करना चाहिए।
4. भगवान के गंधोदक को लगाते समय उस गंधोदक की एक भी बूंद नीचे जमीन पर नहीं गिराना चाहिए एवं उत्तमाङ्ग (सिर ललाट) के अलावा अन्य अंगों में गंधोदक को नहीं लगाना चाहिए।
5. भगवान के सामने या जिनालय में वैद्यक, तंत्र, मंत्र, ज्योतिष आदि कार्यों का प्रयोग या शादी-विवाह की लौकिक वार्ता नहीं करना चाहिए।
6. जिसमें धन, पैसे की चर्चा एवं हल्ला (जोर से आवाज) का प्रसंग उपस्थित होता है ऐसी मीटिंग, सभा भगवान के सामने नहीं करना चाहिए।
7. भगवान के सामने या जिनालय के तरफ पैर करके शयन नहीं करना चाहिए।
8. भगवान के सामने या जिनालय में पादत्राण (जूता, चप्पल) मोजा पहनकर नहीं जाना चाहिए।
9. पशुओं के बाल से निर्मित वस्त्रों एवं रेशमी वस्त्रों के साथ भगवान के निकट में नहीं जाना चाहिए।
10. भगवान के सामने केशों को नहीं संवारना चाहिए एवं तेल, कुमकुम आदिक से शृंगार नहीं करना चाहिए।
11. अनाज या कोई भी खाद्य पदार्थ भगवान के सामने या जिनालय में सूखने नहीं डालना चाहिए।
12. मांस, शराब आदिक अशुद्ध (अभक्ष्य) वस्तुओं के सेवन करने वालों को जिनेन्द्र के समीप या मंदिर में प्रवेश नहीं करना चाहिए। ऐसे लोग बाहर से दर्शन कर सकते हैं।
13. भगवान के सामने या मंदिर में प्रसाद नहीं बांटना चाहिए एवं प्रसाद को नहीं खाना चाहिए।
14. भगवान के सामने या जिनालय में होली नहीं खेलना चाहिए। और फटाखे नहीं फोड़ना चाहिए। ऐसे कार्यों को करने का पूर्ण रूप से त्याग करने पर ही हम हिंसा और रूढ़िवाद से दूर हो सकते हैं।

15. जिनालय में राज्यादिक के दंड के भय से नहीं छुपना एवं अस्त्र, शस्त्र भी नहीं रखना चाहिये ।
16. भगवान के समीप या जिनालय में पशुओं को बांधना (पालना) नहीं चाहिए।
17. भगवान के सामने सांसारिक उधार, लेन,देन या घूसखोरी नहीं करना चाहिए।
18. बिना हाथ धोये शास्त्र एवं गंधोदक को नहीं छूना चाहिए।
19. भगवान या वीतरागी देव, शास्त्र, गुरु से ऊपर स्थान पर नहीं बैठना चाहिए।
20. भगवान के सामने या जिनालय में मन में विकार उत्पन्न करने वाले चित्र नहीं लगाना चाहिए।
21. भगवान के सामने पीठ करके नहीं बैठना चाहिए।
22. भगवान की प्रतिमा को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाते समय अपनी नाभि से नीचे नहीं करना चाहिए।
23. भगवान की मूर्ति के आने के समय बैठे नहीं रहना चाहिए अर्थात् विनय से खड़े होकर जयकार का घोष करना चाहिए।

प्रश्न 3. शास्त्र के सामने (सम्बन्ध में) न करने योग्य कार्य या शास्त्र की विनय सम्बन्धी शिष्टाचार क्या है ?

उत्तर - शास्त्र की विनय सम्बन्धी शिष्टाचार -

1. शास्त्र सभा में शास्त्र लाये जाते समय बैठे नहीं रहना चाहिए अर्थात् खड़े होकर प्रणाम की मुद्रा में जयघोष करना चाहिए। (जिनवाणी माता की जय बोलना चाहिए) ।
2. शास्त्र को बिना हाथ पैर मुख साफ किए अर्थात् अशुद्ध अवस्था में नहीं छूना चाहिए।
3. चमड़े के सामान एवं रेशमी आदि अशुद्ध वस्त्रों के साथ शास्त्र स्वाध्याय नहीं करना चाहिए।
4. शास्त्र स्वाध्याय का प्रारम्भ णमोकार मन्त्र या मंगलाचरण बिना नहीं करना चाहिए। (अर्थात् स्वाध्याय के प्रारम्भ एवं अंत में णमोकार मन्त्र या शास्त्र भक्ति अवश्य पढ़ें) ।
5. शास्त्र को अपनी नाभि से नीचे करके गमन नहीं करना चाहिए। अर्थात् चलते समय शास्त्र को नाभि से ऊपर रखना चाहिए।
6. शास्त्र को पैर पर रखकर नहीं पढ़ना चाहिए।
7. शास्त्र के पन्ने हाथ में थूक लगाकर नहीं पलटना चाहिए।
8. शास्त्र का स्वाध्याय दीवाल से टिककर अर्थात् दीवाल से पीठ लगा के बैठकर नहीं करना चाहिए।
9. शास्त्र का स्वाध्याय बिस्तर पर लेटे-लेटे नहीं करना चाहिए। क्योंकि बिस्तर भी अशुद्ध

हो सकते हैं और अचानक निद्रा आने पर शास्त्र भी नीचे गिर सकता है।

10. शास्त्र के तरफ पैर करके शयन नहीं करना चाहिए।
11. शास्त्र के सामने या शास्त्र स्वाध्याय में और शास्त्र सम्बन्धी प्रवचन सभा में पैर फैलाकर नहीं बैठना चाहिए।
12. शास्त्र स्वाध्याय में विकथा (लौकिक या घरेलु चर्चा) नहीं करना चाहिए।
13. शास्त्र स्वाध्याय में हँसी मजाक नहीं करना चाहिए।
14. शास्त्र जमीन पर नहीं रखना चाहिए। अर्थात् शास्त्र रहल, चौरंग आदि उच्च स्थान पर रखना चाहिए।
15. भयानक पैरों की बीमारी के समय के अलावा कुर्सी, बेंच आदि से नीचे पैर लटकाकर शास्त्र का स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। अर्थात् पर्यंकासन या पद्मासनादि प्रशस्त आसनों के साथ बैठक स्वाध्याय करने से शास्त्र की विनय एवं हमारे ज्ञान में वृद्धि होती है।
16. शास्त्र की सुरक्षा हेतु, शास्त्र पर बिना कवर चढ़ाये अधिक दिन तक नहीं पढ़ना चाहिए। अर्थात् अगर शास्त्र पहले से ही अच्छे कवर से सुरक्षित नहीं है तो उसे कवर चढ़ाकर पढ़ना चाहिए क्योंकि ऐसा न करने से शास्त्र की जिल्द जल्दी फट जाती है।
17. शास्त्र के अंदर रुपया-पैसा और घरेलू सांसारिक पत्र आदिक नहीं रखना चाहिए।
18. मांस, शराब आदि अशुद्ध पदार्थ खाने वाले के हाथ में आचार्यों द्वारा रचित शास्त्र दान नहीं देना चाहिए। अर्थात् ऐसा करना शास्त्र की अविनय है। हाँ, अगर वह अशुद्ध पदार्थ त्याग करने का संकल्प कर और शास्त्र का अच्छा उपयोग कर सके तो शास्त्र दान दिया जा सकता है।
19. शास्त्र के वाचन के समय एवं शास्त्र के प्रकाशन के समय शास्त्र में मिथ्यात्व सम्बन्धी रूढ़िवादिता एवं सरागी देवी देवताओं के कथन व चित्रों को नहीं मिलाना चाहिए।
20. शास्त्र के प्रकाशन के समय शास्त्र में किसी सप्त व्यसनी का नाम एवं हिंसक पदार्थों के व्यापार का नाम नहीं देना चाहिए।

प्रश्न 4. समीचीन दिगम्बर मुनि महाराज के सामने न करने योग्य कार्य एवं शिष्टाचार कौन कौन से हैं?

उत्तर- 1. मुनि महाराज जब निकट आते हैं तब बैठे नहीं रहना चाहिए। अर्थात् जब श्रावक सामायिक, पूजादि प्रमुख कार्य नहीं कर रहा है और उस समय वह गुरु को समीप में आता देख उठकर खड़ा हो जाए एवं नमस्कार की मुद्रा में यथायोग्य विनय नमस्कार आदिक करे।

2. मुनि महाराज के लिए बिना हाथ पैर मुखादिक अंग स्वच्छ किए और जूता, चप्पल, चमड़ा इत्यादिक अशुद्ध पदार्थों के साथ स्पर्श नहीं करना चाहिए।

3. स्त्री वर्ग को मुनि महाराज का स्पर्श नहीं करना चाहिए।
4. मुनि महाराज जब ध्यान, प्रतिक्रमण आदि प्रमुख आवश्यकों में लीन हों तो उनसे कोई बात नहीं करना चाहिए एवं न उन्हें छूना चाहिए।
5. मुनि महाराज के दर्शन या उनसे नियम ग्रहण और शंका समाधान हेतु महिला वर्ग को अकेले नहीं जाना चाहिए। अर्थात् कम से कम दो व्यक्ति गुरु के पास जाएं।
6. मुनि महाराज के दर्शन या उनसे नियम ग्रहण और शंका समाधान आदि धार्मिक कार्य बिल्कुल पास में बैठकर या खड़े-खड़े एवं बिना नमस्कार किए नहीं करना चाहिए। अर्थात् गुरु से थोड़े दूर (5,6,7 हाथ दूर) नीचे बैठकर, नमस्कार के साथ दर्शन आदि धार्मिक कार्य करना चाहिए।
7. मुनि महाराज के सामने बहुत जोर से या भद्दे, वचन नहीं बोलना चाहिए।
8. मुनि महाराज की निंदा नहीं करना चाहिए, न लिखाना चाहिए और न ही सुनाना चाहिए।
9. मुनि महाराज की समीचीन बात काटते हुए शास्त्र के विपरीत नहीं बोलना चाहिए।
10. मुनि महाराज की तरफ पीठ करके बैठना या खड़े नहीं रहना चाहिए।
11. मुनि महाराज की तरफ पैर करके शयन नहीं करना चाहिए।
12. मुनि महाराज को लोगों की दृष्टि से नीचे दिखाने की कोशिश नहीं करना चाहिए अर्थात् और न बुरी भावना से देखना चाहिए।
13. मुनि महाराज के पास ग्रहण किए गए नियम व्रत को कदापि भंग नहीं करना चाहिए अर्थात् अपनी निश्चित सीमा तक पालन करना चाहिए।
14. मुनि महाराज के लिए अशुद्ध या अन्याय से उपार्जित आहार या उपकरण समर्पित नहीं करना चाहिए।
15. मुनि महाराज के सामने घरेलू, व्यापार, संतान, उत्पत्ति या राजनैतिक चर्चा नहीं करना चाहिए।
16. आरम्भ परिग्रह के साधनभूत बनवाये गये नये मकान या नयी फैक्ट्री, दुकान का उद्घाटन (प्रारम्भ) और नए खरीदे गए बर्तन का प्रयोग प्रारम्भ; आरम्भ, परिग्रह के त्यागी साधुओं द्वारा नहीं करना चाहिए।
17. मुनि महाराज और शिष्य आमने-सामने बैठकर जब कोई धार्मिक आवश्यक आदि क्रिया में लीन हो तो उनके बीच से नहीं निकलना चाहिए।
18. दिगम्बर साधुओं की, घरेलू नौकरों, व्यसनियों एवं गुरु धर्म सेवा के बदले धनादिक की आशा व लोभ रखने वाले व्यक्तियों से दानादिक के द्वारा वैयावृत्ति या सेवा नहीं करना चाहिए। अर्थात् स्वयं ही निःस्वार्थ भावना से मुनि परिचर्या करना चाहिए।

19. गुरु के सामने उच्चासन पर नहीं बैठना चाहिए।

प्रश्न 5. धर्मसभा (प्रवचन या शास्त्रसभा) सम्बन्धी नैतिकता और शिष्टाचार क्या है ?

उत्तर - धर्म सभा सम्बन्धी प्रमुख नैतिकता और शिष्टाचार इस प्रकार हैं -

1. धर्म सभा में मंगलाचरण होने के पूर्व ही पहुँचना चाहिए। और अति आवश्यक कार्य बिना धर्म सभा के बीच में से बाहर नहीं जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना शास्त्र एवं वक्ता की अविनय है।
2. धर्म सभा में सच्चे साधु या योग्य समीचीन वक्ता के आने पर उनकी खड़े होकर, हाथ जोड़कर यथायोग्य विनय करना चाहिए।
3. धर्म सभा में जो धार्मिक विषय चल रहा है, उसे ध्यान से सुनना चाहिए एवं उससे भिन्न अन्य विषय सम्बन्धी आपस में वार्ता नहीं करना चाहिए।
4. आगे स्मृति हेतु धर्म सभा (प्रवचन) सम्बन्धी आगम युक्त विषय को अपनी नोट बुक में नोट कर लेना चाहिए।
5. धर्म सभा में नीची (नम्र) दृष्टि से या वक्ता की ओर दृष्टि करके बैठना चाहिए।
6. धर्म सभा में अप्रासंगिक हंसना नहीं चाहिए और न ही इधर-उधर देखना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से वक्ता एवं श्रोताओं के लिए बाधा हो सकती है।
7. समीचीन वक्ता के द्वारा धर्म सभा में चल रहे धार्मिक विषय में कोई जिज्ञासा हो तो वक्ता की आज्ञा पूर्वक खड़े होकर मृदु वचनों में तात्कालिक विषय को न छोड़ते हुए पूछना चाहिए।
8. धर्म सभा में निर्भयता, निर्लोभता या निःस्वार्थता के साथ एवं तात्कालिक परिस्थिति में आवश्यकतानुसार भव्य जीवों के उद्धार की भावना लेकर धार्मिक विषय का आगमानुसार स्पष्ट विवेचन होना चाहिए।
9. धर्म सभा में उपर्युक्त ऐसा स्पष्ट विवेचन करने की सामर्थ्य न हो तो मौन रहना चाहिए।
10. धर्म सभा में मिथ्यात्व का कथन करने वाला अर्थात् सरागी देवी देवताओं की पूजा करने का एवं मिथ्या एकान्त का कथन करने वाला कोई व्यक्ति उपस्थित होकर मिथ्यात्व कथन करने लग जाए तो हमारे अंदर अगर उसके मिथ्या मत का खण्डन करने की सामर्थ्य एवं सुनने की भावना न हो तो मिथ्यात्व के समर्थन के भय से सभा से बाहर चले जाना चाहिए।

प्रश्न 6. लोक में अच्छा (समीचीन) व्यवहार बनाए रखने के लिए सामान्य शिष्टाचार कैसा होना चाहिए ?

उत्तर - सामान्य शिष्टाचार-

1. किसी संस्था या स्वामित्व वाले धार्मिक क्षेत्र पर, (ज्यादा देर के लिए) ठहरने के लिए अथवा वहाँ की वस्तुओं को उपयोग करने के लिए वहाँ के योग्य व्यवस्थापकों से अनुमति लेना चाहिए।
2. किसी क्षेत्र या संस्था की कोई वस्तुओं के उपयोग करने के बाद श्रावकों को उस क्षेत्र या संस्था के निश्चित की गयी या योग्य राशि का भुगतान करना चाहिए।
3. क्षेत्र या संस्थान में कचड़ा नहीं फैलाना चाहिए और अपने द्वारा किसी तरह का कचड़ा फैल गया हो तो उसे स्वच्छ करने का ध्यान रखना चाहिए।
4. बिना बुलाए या बिना अनुमति के किसी के घर में कार्यालय अथवा दुकान की निश्चित सीमा के आगे या अंदर नहीं जाना चाहिए।
5. किसी व्यक्ति की कोई वस्तु जो डिब्बे, आलमारी या कागज आदि के अंदर बन्द है बिना अनुमति के खोलकर नहीं देखना चाहिए। क्योंकि ऐसा करना चोरी के दोष का कारण है।
6. दीर्घशंका (मलक्षेपण) को जाते समय अपने हाथ में छना / परिशुद्ध जल लेकर दूर किसी ओट में बैठना एवं बाद में जल से शुचिता करके हाथ को कम से कम तीन बार मिट्टी इत्यादिक के चूर्ण से शुद्ध करना चाहिए। लघु शंका के जाने के उपरांत भी जरूर जल से हाथ पैरादिक अंगों को शुद्ध करना चाहिए तदुपरांत ही शास्त्र इत्यादिक पवित्र साधनों का स्पर्श करना चाहिए।
7. किसी व्यक्ति की रखी हुई, गिरी हुयी, भूली हुयी, छोटी या बड़ी, सस्ती या कीमती वस्तु को वस्तु के स्वामी की अनुमति के बिना नहीं उठाना चाहिए और न किसी को देना चाहिए तथा न उस वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से चोरी का दोषारोपण, या चोरी की आशंका हो सकती है।
8. अपने या पर के गृह से बाहर जाते समय माता-पितादि से या गृह के स्वामी आदि से कि मैं (इतने काल तक के लिए निश्चित जगह) जा रहा हूँ, ऐसा बोलना चाहिए।
9. रास्ते पर चलते समय योग्य रास्ते से बायीं तरफ से (अपने बायें हाथ की तरफ से) न अधिक तेज और न अधिक धीमी चाल से तथा न बार-बार मुड़कर देखते हुए दया भावना लेकर चलना चाहिए।
10. बीच रास्ते में खड़े नहीं रहना चाहिए और न ही बैठना चाहिए, न ही वाहन खड़े करना चाहिए तथा न ही मल-मूत्रादिक का क्षेपण करना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से स्त्री पुरुषों या तिर्यञ्चादि को बाधा उत्पन्न हो सकती है।
11. रात्रि में प्रतिदिन 9-10 बजे के बाद देर से गृह आदि में नहीं आना चाहिए क्योंकि विशेष

(जोर से) शब्द होने से गृह के एवं आजू-बाजू के लोगों को बाधा उत्पन्न होती है।

12. गंदे चित्र वाली फिल्म शिष्ट लोगों को नहीं देखना चाहिए क्योंकि ऐसी फिल्मों के देखने से बच्चों के माता-पिता एवं बच्चों इत्यादिक का चारित्र बिगड़ सकता है एवं बच्चों का माता-पिता के प्रति आदर विनय भाव निकल जाता है।
13. अपने खास रिश्तेदारों को छोड़कर अन्य किसी अकेली स्त्री से अकेले पुरुष को एवं अकेले पुरुष से अकेली स्त्री को एकांत में नहीं बोलना चाहिए क्योंकि शील खतरे में न पड़ जाये ऐसा ध्यान रखना आवश्यक है।
14. किसी अन्य योग्य व्यक्ति के घर में विशेष आग्रह के उपरान्त भोजन ग्रहण करना चाहिए। अव्रती श्रावकों को किसी के गृह में ज्यादा दिन रुकने पर उस गृह में या गृह के मुख्य सदस्य को धन राशि या योग्य भोजन सामग्री देना चाहिए। कुछ तथा वहाँ उस गृहस्थ के द्वारा अपनी शक्ति के अनुसार शुद्ध थोड़े या ज्यादा अथवा सरस या नीरस आहार के कराए जाने पर भी अंत समय उसे धन्यवाद ही देना चाहिए। जिससे आगे वात्सल्य बना रहे क्योंकि सभ्यता के लिए यह भी एक अच्छा शिष्टाचार है।
15. किसी के चौके (रसोईघर)में भी उस चौके के स्वामी की अनुमति के बिना अंदर नहीं जाना चाहिए, एवं न ही कोई वस्तु उठाना चाहिए और न साधु इत्यादिक को देना चाहिए।
16. शास्त्र के ऊपर लौकिक पुस्तकें या पत्र-पत्रिकायें नहीं रखना चाहिए।
17. किसी व्यक्ति (संस्था) की कोई वस्तु, वस्तु के स्वामी द्वारा निश्चित किए गए समय के भीतर ही उसके स्वामी को वापस लौटाना चाहिए अगर प्रमाद से थोड़ी भी देर हुयी तो अच्छी तरह वस्तु के स्वामी से क्षमायाचना करना चाहिए। जिससे आगे लेन-देन की परम्परा निर्बाध रूप से चालू रहे।
18. अन्य जाति विवाह, विधवा विवाह, रात्रिभोज, भोज में जमीकंद का प्रयोग, मृत्युभोज, दहेजप्रथा, गर्भपात आदिक से हो रही जैनाचार व अहिंसा की हानि को दूरकर धर्म की प्रभावना करना चाहिए।
19. अपने से बड़ों के प्रति (माता-पिता, भाई, बंधु आदि से) चर्चा आदि के समय नम्र (नीचे की ओर) दृष्टि रखना चाहिए। क्योंकि यह उनकी विनय है और अच्छा शिष्टाचार है।
20. संतानों की उत्पत्ति बन्द करने हेतु परिवार नियोजन कराना धर्म का मार्ग नहीं, ब्रह्मचर्य व्रत लेना यह सद्-धर्म का मार्ग है।
21. कभी भी अपने से बड़े एवं समान उम्र वाले या त्यागी व्रती लोगों से बात करते समय उनको एक वचन से नहीं पुकारना चाहिए क्योंकि यह उनकी अविनय या अनादर का प्रतीक है। उन्हें हमेशा आप इत्यादिक रूप बहु वचनों से पुकारना चाहिए यह अच्छी

सभ्यता का प्रतीक है।

22. सदाचारी को अपने हाथों के नख नहीं बढ़ाना चाहिए क्योंकि वे स्व-पर के घातक बन सकते हैं एवं उनमें संग्रहीत होने वाला मैल कई रोगों की उत्पत्ति का कारण है।

23. महापुरुषों की जन्मभूमि भारत देश के शिष्ट वासियों को मर्यादा पालन हेतु पुरुषों को महिलाओं जैसी एवं महिलाओं को पुरुषों जैसी वेशभूषा धारण नहीं करना चाहिए। **विशेष**-यहाँ जो धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र सम्बन्धी विशेष अनुभव से शिष्टाचार (नैतिक शास्त्र) लिखे गए हैं, उन्हें जो व्यक्ति जितनी अच्छी तरह से पालन करते हैं, वे पाप से बचते हुए धर्म एवं समाज के क्षेत्र में बड़ी उन्नति को प्राप्त होते हैं। पुराने गुरुकुलों में इसी तरह के शिष्टाचार एवं नैतिकता की शिक्षा दी जाती थी।

प्रश्न 7. पाप के परिहार एवं दुर्गति निवारण हेतु जैनी आत्माओं के पहचान रूप जैन भव्यात्माओं के कर्त्तव्य क्या हैं?

उत्तर - सभी जैन भव्यात्माओं को निम्नलिखित कर्तव्यों का पालन करना चाहिए।

1. अहिंसा के पालक एवं पाप से बचने के लिए अष्ट मूलगुण (मद्य, मधु, मांस एवं बड़, पीपल, ऊमर, कठूमर और पाकर फलों का) त्याग का नियम होना चाहिए।
2. पाप से बचने के लिए लोक निंदा से बचने के लिए, अहिंसा पालन के लिए और राज्य दंड से बचने के लिए सप्त व्यसन (जुआ, चोरी, शिकार, मांस, शराब, परस्त्री सेवन, और वेश्या गमन) का त्याग करना चाहिए।
3. पुरुष वर्गों की दूसरी स्त्रियां जो अपनी आयु से बड़ी हैं उन्हें माँ या बहिन के समान, जो समान उम्र की हैं, उन्हें बहिन के समान एवं जो अपने से छोटी उम्र वाली हैं,उन्हें बहिन या बेटी के समान देखना चाहिए। इसी तरह महिला वर्गों को दूसरे पुरुषों के लिए पिता, भ्राता एवं बेटा के समान देखना चाहिए।
4. पाप कर्म के क्षय के लिए एवं मोक्ष प्राप्ति के लिए नित्य मंदिर में आकर वीतराग भगवान का या वीतराग देव-शास्त्र-गुरु का दर्शन करना चाहिए।
5. स्नान करके हाथ, पैर, मुख, स्वच्छ करके एवं शुद्ध वस्त्रों के साथ मंदिर आना चाहिए।
6. जैनधर्म पालन के लिए एवं मंदिर में आने के लिए हिंसा से निर्मित चमड़े की एवं नेल पालिस, लिपिस्टिक आदि वस्तुओं का त्याग करना चाहिए।
7. मंदिर में भगवान के समक्ष ठहरने तक के लिये सांसारिक दूरभाष के सम्बन्ध को छोड़ देना चाहिए।
8. भगवान एवं मुनि महाराज को नमस्कार करते समय नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु बोलना चाहिए और ऐलक-क्षुल्लक जी को नमस्कार करते समय इच्छामि बोलना

चाहिए। इसी तरह आर्यिका जी को वंदामि एवं क्षुल्लिका जी को इच्छामि बोलना चाहिए। जैन पाठशाला में पढ़ने वाले विद्यार्थियों को गृहस्थ गुरु जी से एवं विद्यार्थी व श्रावकों को आपस में जयजिनेन्द्र बोलना चाहिए।

9. शास्त्र (जिनवाणी) की विनय हेतु एवं अपने ज्ञान की शीघ्र वृद्धि हेतु धार्मिक पुस्तक (शास्त्र) को नीचे जमीन पर नहीं रखना चाहिए, लांघना नहीं चाहिए, और अशुद्ध अवस्था में देव-शास्त्र-गुरु एवं जप माला नहीं छूना चाहिए।
10. महिलाओं को भगवान एवं गुरु का दर्शन करते समय पाँच, सात हाथ दूर से ही दर्शन करना चाहिए।
11. श्रावकों को नित्य प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल इन तीनों कालों में मंदिर आना चाहिए इन तीनों कालों में; प्रातः काल में मंदिर आना श्रेष्ठ है।
12. सूर्यास्त हो जाने के बाद वातावरण में अनेक सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति होना चालू हो जाती है जो जीव भोजन को अशुद्ध बना देते हैं और ऐसे अशुद्ध भोजन को करने से बहुत हिंसा का दोष आता है और आज के यांत्रिक विज्ञान के अनुसार रात्रिभोजन करने से शरीर अस्वस्थ हो जाता है, इसलिए रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिए।
13. रात्रि में 9-10 बजे के पहले निद्रा लेना उचित नहीं है क्योंकि 6बजे से 9 बजे तक रौद्र पहर चलता है रुद्रं भावं रौद्रं अर्थात् क्रूरता रूप भाव रौद्र कहलाता है। ऐसे क्रूरता रूप भाव 6 बजे से 9 बजे तक की निद्रा में संभव हैं अतः 9 बजे से 12 बजे तक चलने वाले राक्षस पहर का भी थोड़ा भाग निकल जाने पर अर्थात् 10 बजे या 10:30 बजे शयन करना चाहिये और ब्रह्म मुहूर्त्त में करीब 4 बजे से अर्थात् प्रातः 6 बजे के पहले मनोहर पहर में शयन कर अवश्य उठ जाना चाहिये।
14. पूजन के समय गंधोदक (गंध सहित जल) के अलावा कोई योग्य खाने पीने के पदार्थों को भगवान से या पञ्च परमेष्ठी से दो-चार हाथ दूर चढ़ाना चाहिए।
15. सच्चे देव-शास्त्र-गुरु के लिए पूजन या दान में समर्पित कर दिए गए द्रव्य (निर्माल्य) को पुनः ग्रहण नहीं करना चाहिए।
16. नित्य पञ्च परमेष्ठी के नाम का (णमोकार मन्त्र का) दुःखों से दूर होने के लिए एवं पुण्यार्जन तथा कर्म निर्जरा हेतु नियम से जप करना चाहिए।

जैनागम संस्कार में प्रयुक्त सन्दर्भ ग्रन्थ-सूचि

संकेताक्षर	सन्दर्भग्रन्थ	ग्रन्थकार
स्वा.का.अ.	स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा	आचार्य स्वामि कार्तिकेय
प्र.सा.	प्रवचनसार	आचार्य कुंदकुंद देव
नि.सा.	नियमसार	आचार्य कुंदकुंद देव
मू.चा.	मूलाचार	आचार्य वट्टकेर स्वामि
ति.प.	तिलोयपण्णत्ति	आचार्य यतिवृषभ
ध.पु.	धवला ग्रंथ	आचार्य वीरसेन स्वामि
प.प.वि.	पद्मनन्दि पञ्चविंशतिका	आचार्य पद्मनन्दि
स.भ.	समाधि भक्ति	आचार्य पूज्यपाद
य.ति.च.	यशस्तिलकचम्पू काव्य	आचार्य सोमदेव सूरि
मो.पा.	मोक्ष पाहुड	आचार्य कुंदकुंद देव
स्व.स्तो.	स्वयंभू स्तोत्र	आचार्य समन्तभद्र स्वामी
र.सा.	रयणसार	आचार्य कुंदकुंद देव
प्र.सा.	प्रबोधसार	म.पं.यशःकीर्ति
र.क.श्रा.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार	आचार्य समन्तभद्र
ज.ध.	जयधवला ग्रंथ	आचार्य वीरसेन स्वामी
द्र.स.	द्रव्यसंग्रह	आचार्य नेमिचंद्र
स.सि.	सर्वार्थसिद्धि	आचार्य पूज्यपाद स्वामी

नं.भ.	नंदीश्वर भक्ति	आचार्य पूज्य पाद
द.पा.	दर्शन पाहुड	आचार्य कुंदकुंद देव
सा.पा.	सामायिक पाठ	आचार्य अमितगति
उ.पु.	उत्तरपुराण	आचार्य गुणभद्र
चा.पा.	चारित्र पाहुड	आचार्य कुंदकुंद देव
सू.पा.	सूत्र पाहुड	आचार्य कुंदकुंद देव
र.का.टी.	रत्नकरण्डक श्रावकाचार टीका	आचार्य प्रभाचन्द्र
म.पु.	मल्लिनाथ पुराण	आचार्य गुणभद्र
स.सा.	समयसार	आचार्य कुंदकुंद देव
वा.वे.	वारसाणुपेक्खा	आचार्य कुंदकुंद देव
जै.सि.को.	जैनेन्द्र सिद्धांत कोश	जैनेन्द्र वर्णी
क.पा.	कषायपाहुड	आचार्य वीरसेन स्वामी
भा.पा.	भाव पाहुड	आचार्य कुंदकुंद देव
छहढ़ाला	छहढ़ाला	पण्डित दौलतराम जी
स.टी.	समयसार टीका	जयसेनाचार्य
–''–	–''–	अमृतचन्द्राचार्य
का.रू.मा.	कातन्त्ररूपमाला	आचार्य भावसेन
वि.ध.रू.	विश्वधर्म की रूपरेखा	पार्श्वकीर्ति वर्णी

आचार्यश्री 108 आर्जवसागरजी महाराज का जीवन परिचय

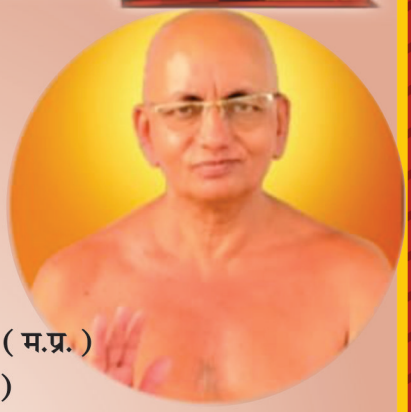

पूर्व नाम	- पारसचंद जैन
पिता जी	- श्री शिखरचंद जैन
माता जी	- श्रीमती मायाबाई जैन
जन्मतिथि	- ११.९.१९६७, भाद्र शु. अष्टमी
जन्म स्थल	- फुटेरा कलाँ, जिला- दमोह
बचपन बीता	- पथरिया, जिला- दमोह (म.प्र.) में
शिक्षण	- बी.ए. (प्रथम वर्ष) डिग्री कॉलेज, दमोह (म.प्र.)
ब्रह्मचर्य व्रत	- १९.१२.१९८४, अतिशय क्षेत्र, पनागर (म.प्र.)
सातवीं प्रतिमा	-१९८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
क्षुल्लक दीक्षा	- ८.११.८५, सिद्धक्षेत्र, अहारजी
ऐलक दीक्षा	- १०.७.१९८७, अतिशय क्षेत्र, थूवोनजी
मुनि दीक्षा	- ३१.३.१९८८, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, महावीर जयन्ती सन् १९८८
दीक्षा गुरु	- आचार्यश्री विद्यासागरजी महाराज
आचार्यपद	- २५.०१.२०१५ (माघ शुक्ल षष्ठी) को (समाधि पूर्व आचार्यश्री सीमंधरसागर जी द्वारा इंदौर में)
कृतियाँ व रचनाएँ	- धर्म-भावना शतक, जैनागम-संस्कार, तीर्थोदय-काव्य, परमार्थ-साधना, बचपन का संस्कार, सम्यक्-ध्यान शतक, आर्जव-वाणी, पर्यूषण-पीयूष, आर्जव-कविताएँ, जिनवर-स्तुति, साम्य-भावना, जैन शासन का हृदय, आगम-अनुयोग, लोक-कल्याण (षोडसकारण) विधान, सदाचार सूक्ति-काव्य, अध्यात्म समयोदय काव्य, गुरु गुण-महिमा काव्य, आत्मोद्धार शतक।
पद्यानुवाद	- गोमटेशथुदि, जिनागम-संग्रह (वारसाणुवेक्खा, इष्टोपदेश, समाधितन्त्र, द्रव्य-संग्रह), तत्त्वसार एवं प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका, भक्तामर स्तोत्र।

प्रथमानुयोग
करणानुयोग
चरणानुयोग
द्रव्यानुयोग